गद्य विधाएँ

उपन्यास, कहानी व नाटक

(Prose Genres: Novels, Story and Drama)

हिमांशी सक्सेना

गद्य विधाएँ : उपन्यास, कहानी व नाटक

गद्य विधाएँ : उपन्यास, कहानी व नाटक

(Prose Genres: Novels, Story and Drama)

हिमांशी सक्सेना

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5595-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

सामाजिक जीवन की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरुप अर्जित व्यक्तिस्वातंत्र्य के साथ जुड़ी हुई है। इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतिष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है।

नाटक, काव्य और गद्य का एक रूप है जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है उसे नाटक या दृश्य-काव्य कहते हैं। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है। श्रव्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। नाट्यशास्त्र में लोक चेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है। नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गये हैं– श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। पर दृष्टि द्वारा मुख्य रूप से इसका ग्रहण होने के कारण दृश्य काव्य मात्र को

नाटक कहने लगे हैं।

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ, जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रूप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। आशा करती हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**उपन्यास**	**1**
	उपन्यासिका	3
	प्रथम उपन्यास	3
	हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास	6
	पात्र	11
	गुनाहों का देवता	19
2.	**नाटक**	**114**
	परिचय	114
	नाटक शब्दावली	115
	नाटक के प्रमुख तत्व	117
	संस्कृत नाटकों का उद्‌भव एवं विकास	120
	मध्यकाल	121
	हिन्दी रंगमंच और भारतेन्दु हरिश्चंद्र	124
	स्वतंत्रता के पश्चात्	129
	अजातशत्रु	130
3.	**कहानी**	**140**
	परिभाषा	141

कहानी के तत्त्व 142
हिन्दी कहानी का इतिहास 142
पहली कहानी कौन 144
विकास का पहला दौर 145
दूसरा दौर 145
समालोचना 154
विधा के रूप में कहानी की संरचना 155
पाठशाला 178
कोसी का घटवार 179

1

उपन्यास

उपन्यास गद्य लेखन की एक विधा है।

अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपेन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवत: कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्राय: असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक और जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामन्य धरातल से देखने तथा चित्रित

करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी और उसने जीवन की समस्याओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यत: बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुत: आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है उतना साहित्य के अन्य किसी भी रुप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरुप अर्जित व्यक्तिस्वातंत्रय के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रुप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान् उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और संर्वदेशीय महत्त्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुत: वही स्थान है, जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा फील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत

करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है, जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

उपन्यासिका

उपन्यास के समानांतर इधर उपन्यासिका नामक नवीन गद्य विधा का सूत्रपात हुआ है

हिंदी साहित्य में उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास शब्द के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि- 'हिन्दी में नॉवेल के अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई. में हुआ।'

प्रथम उपन्यास

बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। कुछ लोग जापानी भाषा में 1007 ई. में लिखा गया "जेन्जी की कहानी" नामक उपन्यास को दुनिया का सबसे पहला उपन्यास मानते हैं। इसे मुरासाकी शिकिबु नामक एक महिला ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज में निकले एक राजकुमार की कहानी है।

यूरोप का प्रथम उपन्यास सेर्वैन्टिस का "डोन क्विक्सोट" माना जाता है, जो स्पेनी भाषा का उपन्यास है। इसे 1605 में लिखा गया था।

अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास होने के दावेदार कई हैं। बहुत से विद्वान 1678 में जोन बुन्यान द्वारा लिखे गए "द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस" को पहला अंग्रेजी उपन्यास मानते हैं।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास

जिसे बँगला और हिंदी में उपन्यास कहा जाता है गोपाल राय के अनुसार उसे 'उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई है।'

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार परीक्षा गुरु हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके लेखक लाला श्रीनिवास दास हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी' (लेखक - पंडित गौरीदत्त, सन् 1870)। श्रद्धाराम फिल्लौरी की भाग्यवती को भी हिन्दी के प्रथम उपन्यास होने का श्रेय दिया जाता है।

मलयालम

इंदुलेखा - रचनाकाल, 1889, लेखक चंदु मेनोन।

तमिल

प्रताप मुदलियार - रचनाकाल 1879, लेखक, मयूरम वेदनायगम पिल्लै।

बंगाली

दुर्गेशनंदिनी - रचनाकाल, 1865, लेखक, बंकिम चंद्र चटर्जी।

मराठी

यमुना पर्यटन - रचनाकाल, 1857, लेखक, बाबा पद्मजी।

इसे भारतीय भाषाओं में लिखा गया प्रथम उपन्यास माना जाता है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत की लगभग सभी भाषाओं में उपन्यास विधा का उद्भव लगभग एक ही समय दस-बीस वर्षों के अंतराल में हुआ।

हिन्दी उपन्यास

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1880-1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की और मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान',

आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्रचित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे। बाद में उनकी रुझान समाजवाद की और भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली में, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ;षभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फ्रांसीसी ढंग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शैली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलाने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर–एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखने वाली बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथाप्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं

है। राहुल सांकृत्यायन (1895-1963), रांगेय राघव (1922-1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की और मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरु होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात् पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाज सुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाजसुधारक के रुप में लिखा। बावू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यासलेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यास लेखक के रुप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात-प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम इंशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्राय: सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यासलेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्त्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्राय: मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासलेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यासपरंपरा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्र बिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रुप से पाई जाती है।

गोदान (उपन्यास)

गोदान, प्रेमचन्द का अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। कुछ लोग इसे उनकी सर्वोत्तम कृति भी मानते हैं। इसका प्रकाशन 1936 ई. में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा किया गया था। इसमें भारतीय ग्राम समाज एवं परिवेश का सजीव चित्रण है। गोदान ग्राम्य जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है। इसमें प्रगतिवाद, गांधीवाद और मार्क्सवाद (साम्यवाद) का पूर्ण परिप्रेक्ष्य में चित्रण हुआ है।

गोदान हिंदी के उपन्यास-साहित्य के विकास का उज्वलतम प्रकाशस्तंभ है। गोदान के नायक और नायिका होरी और धनिया के परिवार के रुप में हम भारत की एक विशेष संस्कृति को सजीव और साकार पाते हैं, ऐसी संस्कृति जो अब समाप्त हो रही है या हो जाने को है, फिर भी जिसमें भारत की मिट्टी की सोंधी सुबास भरी है। प्रेमचंद ने इसे अमर बना दिया है।

उपन्यास का सारांश

गोदान प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास है जिसमें उनकी कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची है। गोदान में भारतीय किसान का संपूर्ण जीवन - उसकी आकांक्षा और निराशा, उसकी धर्मभीरुता और भारतपरायणता के साथ स्वार्थपरता और बैठकबाजी, उसकी बेबसी और निरीहता- का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है। उसकी गर्दन जिस पैर के नीचे दबी है उसे सहलाता, क्लेश और वेदना को झुठलाता, 'मरजाद' की झूठी भावना पर गर्व करता, ऋणग्रस्तता के अभिशाप में पिसता, तिल-तिल शूलों भरे पथ पर आगे बढ़ता, भारतीय समाज का मेरुदंड यह किसान कितना शिथिल और जर्जर हो चुका है, यह गोदान में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। नगरों की कोलाहलमय चकाचौंध ने गाँवों की विभूति को कैसे ढँक लिया है, जमींदार, मिल मालिक, पत्रसंपादक, अध्यापक, पेशेवर वकील और डाक्टर, राजनीतिक नेता और राजकर्मचारी जोंक बने कैसे गाँव के इस निरीह किसान का शोषण कर रहे हैं और कैसे गाँव के ही महाजन और पुरोहित उनकी सहायता कर रहे हैं, गोदान में ये सभी तत्त्व नखदर्पण के समान प्रत्यक्ष हो गए हैं। गोदान, वास्तव में, 20वीं शताब्दी की तीसरी और चौथी दशाब्दियों के भारत का ऐसा सजीव चित्र है, जैसा हमें अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

गोदान में बहुत सी बातें कही गई हैं। जान पड़ता है प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण जीवन के व्यंग और विनोद, कसक और वेदना, विद्रोह और वैराग्य, अनुभव और आदर्श सभी को इसी एक उपन्यास में भर देना चाहा है। कुछ आलोचकों को इसी कारण उसमें अस्त-व्यस्तता मिलती है। उसका कथानक शिथिल, अनियंत्रित और स्थान-स्थान पर अति नाटकीय जान पड़ता है। ऊपर से देखने पर है भी ऐसा ही, परंतु सूक्ष्म रुप से देखने पर गोदान में लेखक का अद्‌भुत उपन्यास-कौशल दिखाई पड़ेगा क्योंकि उन्होंने जितनी बातें कहीं हैं वे सभी समुचित उठान में कहीं गई हैं। प्रेमचंद ने एक स्थान पर लिखा है - 'उपन्यास में आपकी कलम

में जितनी शक्ति हो अपना जोर दिखाइए, राजनीति पर तर्क कीजिए, किसी महफिल के वर्णन में 10-20 पृष्ठ लिख डालिए (भाषा सरस होनी चाहिए), कोई दूषण नहीं।' प्रेमचंद ने गोदान में अपनी कलम का पूरा जोर दिखाया है। सभी बातें कहने के लिये उपयुक्त प्रसंग कल्पना, समुचित तर्कजाल और सही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रवाहशील, चुस्त और दुरुस्त भाषा और वर्णनशैली में उपस्थित कर देना प्रेमचंद का अपना विशेष कौशल है और इस दृष्टि से उनकी तुलना में शायद ही किसी उपन्यास लेखक को रखा जा सकता है।

जिस समय प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक-धार्मिक रुढ़िवाद से भरा हुआ था। इस रुढ़िवाद से स्वयं प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए। जब अपने कथा-साहित्य का सफर शुरू किया अनेक प्रकार के रूढ़िवाद से ग्रस्त समाज को यथाशक्ति कला के शस्त्र द्वारा मुक्त कराने का संकल्प लिया। अपनी कहानी के बालक के माध्यम से यह घोषणा करते हुए कहा कि 'मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ।'

प्रेमचन्द और शोषण का बहुत पुराना रिश्ता माना जा सकता है। क्योंकि बचपन से ही शोषण के शिकार रहे प्रेमचन्द इससे अच्छी तरह वाकिफ हो गए थे। समाज में सदा वर्गवाद व्याप्त रहा है। समाज में रहने वाले हर व्यक्ति को किसी न किसी वर्ग से जुड़ना ही होगा।

प्रेमचन्द ने वर्गवाद के खिलाफ लिखने के लिए ही सरकारी पद से त्यागपत्र दे दिया। वह इससे सम्बन्धित बातों को उन्मुख होकर लिखना चाहते थे। उनके मुताबिक वर्तमान युग न तो धर्म का है और न ही मोक्ष का। अर्थ ही इसका प्राण बनता जा रहा है। आवश्यकता के अनुसार अर्थोपार्जन सबके लिए अनिवार्य होता जा रहा है। इसके बिना जिन्दा रहना सर्वथा असंभव है।

वह कहते हैं कि समाज में जिन्दा रहने में जितनी कठिनाइयों का सामना लोग करेंगे उतना ही वहाँ गुनाह होगा। अगर समाज में लोग खुशहाल होंगे तो समाज में अच्छाई ज्यादा होगी और समाज में गुनाह नहीं के बराबर होगा। प्रेमचन्द ने शोषितवर्ग के लोगों को उठाने का हर संभव प्रयास किया। उन्होंने आवाज लगाई ', लोगों जब तुम्हैं संसार में रहना है तो जिन्दों की तरह रहो, मुर्दों की तरह जिन्दा रहने से क्या फायदा।'

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में शोषक-समाज के विभिन्न वर्गों की करतूतों व हथकण्डों का पर्दाफाश किया है।

कथानक

उपन्यास वे ही उच्च कोटि के समझे जाते हैं जिनमें आदर्श तथा यथार्थ का पूर्ण सामंजस्य हो। 'गोदान' में समान्तर रुप से चलने वाली दोनो कथाएं हैं – एक ग्राम्य कथा और दूसरी नागरी कथा, लेकिन इन दोनो कथाओं में परस्पर सम्बद्धता तथा सन्तुलन पाया जाता है। ये दोनो कथाएं इस उपन्यास की दुर्बलता नहीं वरन, सशक्त विशेषता हैं।

यदि हमें तत्कालीन समय के भारत वर्ष को समझना है तो हमें निश्चित रुप से गोदान को पढ़ना चाहिए इसमें देश-काल की परिस्थितियों का सटीक वर्णन किया गया है। कथा नायक होरी की वेदना पाठकों के मन में गहरी संवेदना भर देती है। संयुक्त परिवार के विघटन की पीड़ा होरी को तोड़ देती है, परन्तु गोदान की इच्छा उसे जीवित रखती है और वह यह इच्छा मन में लिए ही वह इस दुनिया से कूच कर जाता है।

गोदान औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसान का महाजनी व्यवस्था में चलने वाले निरंतर शोषण तथा उससे उत्पन्न संत्रास की कथा है। गोदान का नायक होरी एक किसान है, जो किसान वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर मौजूद है। 'आजीवन दुर्धर्ष संघर्ष के बावजूद उसकी एक गाय की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती'। गोदान भारतीय कृषक जीवन के संत्रासमय संघर्ष की कहानी है।

'गोदान' होरी की कहानी है, उस होरी की जो जीवन भर मेहनत करता है, अनेक कष्ट सहता है, केवल इसलिए कि उसकी मर्यादा की रक्षा हो सके और इसीलिए वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास भी करता है, किंतु उसे इसका फल नहीं मिलता और अंत में मजबूर होना पड़ता है, फिर भी अपनी मर्यादा नहीं बचा पाता। परिणामत: वह जप-तप के अपने जीवन को ही होम कर देता है। यह होरी की कहानी नहीं, उस काल के हर भारतीय किसान की आत्मकथा है। और इसके साथ जुड़ी है शहर की प्रासंगिक कहानी। 'गोदान' में उन्होंने ग्राम और शहर की दो कथाओं का इतना यथार्थ रुप और संतुलित मिश्रण प्रस्तुत किया है। दोनों की कथाओं का संगठन इतनी कुशलता से हुआ है कि उसमें प्रवाह आद्योपांत बना रहता है। प्रेमचंद की कलम की यही विशेषता है।

इस रचना में प्रेमचन्द का गांधीवाद से मोहभंग साफ-साफ दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में जहाँ आदर्शवाद दिखाई पड़ता है, गोदान में आकर यथार्थवाद नग्न रुप में परिलक्षित होता है। कई समालोचकों ने इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास का दर्जा भी दिया है।

पात्र

गोबर झुनिया

1 होरी राम धनिया सोना मथुरा रुपा रामसेवक
2 सोभा
3 हीरा पुनिया

गोदान उपन्यास

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी दे कर अपनी स्त्री धनिया से कहा - गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली - अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़ कर कहा - तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जायगा।

'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा! अभी तो परसों गए थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो, मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का और दो लड़कियाँ सोना

और रुपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दवाई होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुँआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रुप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त हो कर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ ला कर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी और आँखें तरेर कर कहा - क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जा कर दिखाऊँ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा - ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देख कर रीझ जाएँगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा-तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जा कर सीसे में मुँह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख-देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में झुलस गई। लकड़ी सँभालता हुआ बोला - साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया - अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कंधों पर लाठी रख कर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अंत:करण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका दे कर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दु:ख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों और ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देख कर उसने मन में कहा - भगवान कहीं से बरखा कर दे और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गाएँ तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा? गोबर दूध के लिए तरस-तरस रह जाता है। इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खाएगा? साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाए। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोंई न होगी। फिर गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्सन हो जायँ तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह सुभ दिन आएगा!

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हैं-से हृदय में कैसे समातीं !

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकल कर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों और खेतों में काम करने वाले किसान उसे देख कर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था? उसके अंदर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पा कर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से

मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता- पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़ कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस-पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस उमस में भी यहाँ की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो-तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाए। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे, पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता गाएँ जायँ भाड़ में, हमें रुपए मिलते हैं, क्यों छोड़ें, पर रायसाहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गाय लिए इसी तरफ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गाएँ बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देख कर ललचा गया। अगर भोला वह आगे वाली गाय उसे दे तो क्या कहना! रुपए आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपए नहीं हैं। अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका। बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपए का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आंदोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जा कर बोला - राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग हैं? सुना अबकी मेले से नई गाएँ लाए हो?

भोला ने रूखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी - हाँ, दो बछिएँ और दो गाएँ लाया। पहले वाली गाएँ सब सूख गई थी। बँधी पर दूध न पहुँचे तो गुजर कैसे हो?

होरी ने आगे वाली गाय के पुट्टे पर हाथ रख कर कहा – दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शान जमाई – अबकी बाजार तेज रहा महतो, इसके अस्सी रुपए देने पड़े। आँखें निकल गईं। तीस-तीस रुपए तो दोनों कलोरों के दिए। तिस पर गाहक रुपए का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाए भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला – रायसाहब इसके सौ रुपए देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपए, लेकिन हमने न दिए। भगवान ने चाहा तो सौ रुपए इसी ब्यान में पीट लूँगा।

'इसमें क्या संदेह है भाई। मालिक क्या खा के लेंगे? नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली-भर रुपए तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो! हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल-के-साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार-बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते? मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला-आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की और ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपए की बात कह दी भाई! बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पाँव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़े है - बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई क्यों नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूँ महतो, पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूँगा। भगवान चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायगा।'

'बस, यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया! घर में खाने को भगवान का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का?'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़ कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजारा कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है! बोला - अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आएँ।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की - इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबाएँ। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जाएँगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपए में ली थी, तुम अस्सी रुपए ही देना देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई?'

होरी की छाती गज-भर की हो गई। अस्सी रुपए में गाय महँगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छह-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बँधेगी तो द्वार की सोभा बढ़ जायगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपए देने थे। लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल-दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या

बिगड़ता है! यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आएगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा। लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अंतर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाए रहती थीं। ईश्वर का रुद्र रुप सदैव उसके सामने रहता थाय पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपए पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा - ले जाओ महतो, तुम भी क्या याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। साइत तुम्हैं अनजान समझ कर रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपए देते थे, पर उनके यहाँ गऊओं की क्या कदर। मुझसे ले कर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ बेच देते। किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने। रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है। तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खा कर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुल-भर भी भूसा नहीं रहा। रुपए सब बाजार में निकल गए। सोचा था, महाजन से कुछ ले कर भूसा ले लेंगे, लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलाएँ, यही चिंता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान ही पार लगाएँ तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा - तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा - हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोक कर कहा - इसीलिए नहीं कहा - भैया कि सबसे अपना दु:ख क्यों रोऊँ। बाँटता कोई नहीं, हँसते सब हैं। जो गाएँ सूख गई हैं, उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिला कर जिला लूँगा। लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपए भूसे के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला - रुपए तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूँगा। चल कर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूँगा! मेरे हाथ न कट जाएँगे?

भोला ने आर्द्र कंठ से कहा - तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे। तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई न करे, तो काम कैसे चले!'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूँगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दु:खित स्वर में कहा - दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक-दो जून तुम्हारे घर खा लूँ तो तुम मुझसे दाम माँगोगे?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नही?

'भगवान कोई-न-कोई सबील निकालेंगे ही। आसाढ़ सिर पर है। कड़वी बो लूँगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई। जिस दिन इच्छा हो, आ कर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय ले कर घर की राह लेता। भोला जब नकद रुपए नहीं माँगता, तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है, लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे कदम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मांतरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गदगद कंठ से कहा - तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए?

होरी ने जवाब दिया - अभी मैं रायसाहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी-भर में लौटूँगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आँखों में आँसू भर आए। बोला - तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा - उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस-पाँच मन भूसा चला जायगा, बेचारे को संकट में पड़ कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायगा तब गाय खोल लाऊँगा। भगवान करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाए। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिर कर देखा। कबरी गाय पूँछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मंद-गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बांदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी!

गुनाहों का देवता

गुनाहों का देवता हिंदी उपन्यासकार धर्मवीर भारती के शुरुआती दौर के और सर्वाधिक पढ़े जाने वाले उपन्यासों में से एक है। यह सबसे पहले 1959 में प्रकाशित हुई थी। इसमें प्रेम के अव्यक्त और अलौकिक रुप का अन्यतम चित्रण है। सजिल्द और अजिल्द को मिलाकर इस उपन्यास के एक सौ से ज्यादा

संस्करण छप चुके हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाता है।

कहानी

इस कहानी का ठिकाना अंग्रेजों के समय का इलाहाबाद रहा है। कहानी के तीन मुख्य पात्र हैं–चन्दर , सुधा और पम्मी। पूरी कहानी मुख्यत: इन्ही पात्रों के इर्दगिर्द घूमती रहती है। चन्दर सुधा के पिता यानि विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के प्रिय छात्रों में है और प्रोफेसर भी उसे पुत्र तुल्य मानते हैं। इसी कारण चन्दर का सुधा के यहाँ बिना किसी रोक-टोक के आना-जाना लगा रहता है। धीरे-धीरे सुधा कब दिल दे बैठती है, यह दोनों को पता नहीं चलता। लेकिन यह कोई सामान्य प्रेम नहीं था। यह भक्ति पर आधारित प्रेम था। चन्दर सुधा का देवता था और सुधा ने हमेशा एक भक्त की तरह ही उसे सम्मान दिया था।

चंदर सुधा से प्रेम तो करता है, लेकिन सुधा के पापा के उस पर किए गए अहसान और व्यक्तित्व पर हावी उसके आदर्श कुछ ऐसा ताना-बाना बुनते हैं कि वह चाहते हुए भी कभी अपने मन की बात सुधा से नहीं कह पाता। सुधा की नजरों में वह देवता बने रहना चाहता है और होता भी यही है। सुधा से उसका नाता वैसा ही है, जैसा एक देवता और भक्त का होता है। प्रेम को लेकर चंदर का द्वंद्व उपन्यास के ज्यादातर हिस्से में बना रहता है। नतीजा यह होता है कि सुधा की शादी कहीं और हो जाती है और अंत में उसे दुनिया छोड़कर जाना पड़ता है।

पम्मी के साथ चंदर के अंतरंग लम्हों का गहराई से चित्रण करते हुए भी लेखक ने पूरी सावधानी बरती है। पूरे प्रसंग में थोड़ा सेक्सुअल टच तो है, पर वल्गैरिटी कहीं नहीं है, उसमें सिहरन तो है, लेकिन यह पाठकों को उत्तेजित नहीं करता। लेखक खुद इस उपन्यास के कितने नजदीक हैं, इसका अंदाजा उनके इस कथन से लगाया जा सकता है।

प्रसिद्ध पंक्तियाँ

1. इस पुस्तक की कुछ उल्लेखनीय पंक्तियाँ।
2. छह बरस से साठ बरस तक की कौन-सी ऐसी स्त्री है, जो अपने रुप की प्रशंसा पर बेहोश न हो जाए।

3. अविश्वास आदमी की प्रवृत्ति को जितना बिगाड़ता है, विश्वास उतना ही बनाता है।
4. ऐसे अवसरों पर जब मनुष्य को गंभीरतम उत्तरदायित्व सौंपा जाता है, तब स्वभावतः आदमी के चरित्र में एक विचित्र-सा निखार आ जाता है।
5. जब भावना और सौंदर्य के उपासक को बुद्धि और वास्तविकता की ठेस लगती है, तब वह सहसा कटुता और व्यंग्य से उबल उठता है।
6. मनुष्य का एक स्वभाव होता है। जब वह दूसरे पर दया करता है तो वह चाहता है कि याचक पूरी तरह विनम्र होकर उसे स्वीकार करे। अगर याचक दान लेने में कहीं भी स्वाभिमान दिखाता है तो आदमी अपनी दानवृत्ति और दयाभाव भूलकर नृशंसता से उसके स्वाभिमान को कुचलने में व्यस्त हो जाता है।
7. इस उपन्यास के नये संस्करण पर दो शब्द लिखते समय मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या लिखूँ? अधिक-से-अधिक मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता उन सभी पाठकों के प्रति व्यक्त कर सकता हूँ जिन्होंने इसकी कलात्मक अपरिपक्वता के बावजूद इसको पसन्द किया है। मेरे लिए इस उपन्यास का लिखना वैसा ही रहा है जैसा पीड़ा के क्षणों में पूरी आस्था से प्रार्थना करना, और इस समय भी मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं वह प्रार्थना मन-ही-मन दोहरा रहा हूँ, बस...

धर्मवीर भारती

अगर पुराने जमाने की नगर-देवता की और ग्राम-देवता की कल्पनाएँ आज भी मान्य होतीं तो मैं कहता कि इलाहाबाद का नगर-देवता जरूर कोई रोमैण्टिक कलाकार है। ऐसा लगता है कि इस शहर की बनावट, गठन, जिंदगी और रहन-सहन में कोई बँधे-बँधाये नियम नहीं, कहीं कोई कसाव नहीं, हर जगह एक स्वच्छन्द खुलाव, एक बिखरी हुई-सी अनियमितता। बनारस की गलियों से भी पतली गलियाँ और लखनऊ की सडकों से चौड़ी सडकें। यार्कशायर और ब्राइटन के उपनगरों का मुकाबला करने वाले सिविल लाइन्स और दलदलों की गन्दगी को मात करने वाले मुहल्ले। मौसम में भी कहीं कोई सम नहीं, कोई सन्तुलन नहीं। सुबहैं मलयजी, दोपहरें अंगारी, तो शामें रेशमी! धरती ऐसी कि सहारा के रेगिस्तान की तरह बालू भी मिले, मालवा की तरह हरे-भरे खेत भी मिलें और ऊसर और परती की भी कमी नहीं। सचमुच लगता है कि प्रयाग का

नगर-देवता स्वर्ग-कुंजों से निर्वासित कोई मनमौजी कलाकार है जिसके सृजन में हर रंग के डोरे हैं।

और चाहे जो हो, मगर इधर क्वार, कार्तिक तथा उधर वसन्त के बाद और होली के बीच के मौसम से इलाहाबाद का वातावरण नैस्टर्शियम और पैंजी के फूलों से भी ज्यादा खूबसूरत और आम के बौरों की खुशबू से भी ज्यादा महकदार होता है। सिविल लाइन्स हो या अल्फ्रेड पार्क, गंगातट हो या खुसरूबाग, लगता है कि हवा एक नटखट दोशीजा की तरह कलियों के आँचल और लहरों के मिजाज से छेड़खानी करती चलती है। और अगर आप सर्दी से बहुत नहीं डरते तो आप जरा एक ओवरकोट डालकर सुबह-सुबह घूमने निकल जाएँ तो इन खुली हुई जगहों की फिजाँ इठलाकर आपको अपने जादू में बाँध लेगी। खासतौर से पौ फटने के पहले तो आपको एक बिल्कुल नयी अनुभूति होगी। वसन्त के नये-नये मौसमी फूलों के रंग से मुकाबला करने वाली हल्की सुनहली, बाल-सूर्य की अँगुलियाँ सुबह की राजकुमारी के गुलाबी वक्ष पर बिखरे हुए भौंराले गेसुओं को धीरे-धीरे हटाती जाती हैं और क्षितिज पर सुनहली तरुणाई बिखर पड़ती है।

एक ऐसी ही खुशनुमा सुबह थी, और जिसकी कहानी मैं कहने जा रहा हूँ, वह सुबह से भी ज्यादा मासूम युवक, प्रभाती गाकर फूलों को जगाने वाले देवदूत की तरह अल्फ्रेड पार्क के लॉन पर फूलों की सरजमीं के किनारे-किनारे घूम रहा था। कत्थई स्वीटपी के रंग का पश्मीने का लम्बा कोट, जिसका एक कालर उठा हुआ था और दूसरे कालर में सरो की एक पत्ती बटन होल में लगी हुई थी, सफेद मक्खन जीन की पतली पैंट और पैरों में सफेद जरी की पेशावरी सैण्डिलें, भरा हुआ गोरा चेहरा और ऊँचे चमकते हुए माथे पर झूलती हुई एक रूखी भूरी लट। चलते-चलते उसने एक रंग-बिरंगा गुच्छा इकट्ठा कर लिया था और रह-रह कर वह उसे सूँघ लेता था।

पूरब के आसमान की गुलाबी पाँखुरियाँ बिखरने लगी थीं और सुनहले पराग की एक बौछार सुबह के ताजे फूलों पर बिछ रही थी। ''अरे सुबह हो गयी?'' उसने चौंककर कहा और पास की एक बेंच पर बैठ गया। सामने से एक माली आ रहा था। ''क्यों जी, लाइब्रेरी खुल गयी?'' ''अभी नहीं बाबूजी!'' उसने जवाब दिया। वह फिर सन्तोष से बैठ गया और फूलों की पाँखुरियाँ नोचकर नीचे फेंकने लगा। जमीन पर बिछाने वाली सोने की चादर परतों पर परतें बिछाती जा रही थी और पेड़ों की छायाओं का रंग गहराने लगा था। उसकी बेंच के नीचे

फूलों की चुनी हुई पत्तियाँ बिखरी थीं और अब उसके पास सिर्फ एक फूल बाकी रह गया था। हलके फालसई रंग के उस फूल पर गहरे बैंजनी डोरे थे।

''हलो कपूर!'' सहसा किसी ने पीछे से कन्धे पर हाथ रखकर कहा, ''यहाँ क्या झक मार रहे हो सुबह-सुबह?''

उसने मुड़कर पीछे देखा, ''आओ, ठाकुर साहब! आओ बैठो यार, लाइब्रेरी खुलने का इन्तजार कर रहा हूँ।''

''क्यों, यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी चाट डाली, अब इसे तो शरीफ लोगों के लिए छोड़ दो!''

''हाँ, हाँ, शरीफ लोगों ही के लिए छोड़ रहा हूँ, डॉक्टर शुक्ला की लड़की है न, वह इसकी मेम्बर बनना चाहती थी तो मुझे आना पड़ा, उसी का इन्तजार भी कर रहा हूँ।''

''डॉक्टर शुक्ला तो पॉलिटिक्स डिपार्टमेंट में हैं?''

''नहीं, गवर्नमेंट साइकोलॉजिकल ब्यूरो में।''

''और तुम पॉलिटिक्स में रिसर्च कर रहे हो?''

''नहीं, इकनॉमिक्स में!''

''बहुत अच्छे! तो उनकी लड़की को सदस्य बनवाने आये हो?'' कुछ अजब स्वर में ठाकुर ने कहा।

''छिह!'' कपूर ने हँसते हुए, कुछ अपने को बचाते हुए कहा, ''यार, तुम जानते हो कि मेरा उनसे कितना घरेलू सम्बन्ध है। जब से मैं प्रयाग में हूँ, उन्हीं के सहारे हूँ और आजकल तो उन्हीं के यहाँ पढ़ता-लिखता भी हूँ...।''

ठाकुर साहब हँस पड़े, ''अरे भाई, मैं डॉक्टर शुक्ला को जानता नहीं क्या? उनका-सा भला आदमी मिलना मुश्किल है। तुम सफाई व्यर्थ में दे रहे हो।''

ठाकुर साहब यूनिवर्सिटी के उन विद्यार्थियों में से थे जो बरायनाम विद्यार्थी होते हैं और कब तक वे यूनिवर्सिटी को सुशोभित करते रहेंगे, इसका कोई निश्चय नहीं। एक अच्छे-खासे रुपये वाले व्यक्ति थे और घर के ताल्लुकेदार। हँसमुख, फब्तियाँ कसने में मजा लेने वाले, मगर दिल के साफ, निगाह के सच्चे। बोले-

''एक बात तो मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी पढ़ाई का सारा श्रेय डॉ. शुक्ला को है! तुम्हारे घर वाले तो कुछ खर्चा भेजते नहीं?''

''नहीं, उनसे अलग ही होकर आया था। समझ लो कि इन्होंने किसी-न-किसी बहाने मदद की है।''

''अच्छा, आओ, तब तक लोटस-पोंड (कमल-सरोवर) तक ही घूम लें। फिर लाइब्रेरी भी खुल जाएगी!''

दोनों उठकर एक कृत्रिम कमल-सरोवर की और चल दिये जो पास ही में बना हुआ था। सीढियाँ चढकर ही उन्होंने देखा कि एक सज्जन किनारे बैठे कमलों की और एकटक देखते हुए ध्यान में तल्लीन हैं। छिपकली से दुबले-पतले, बालों की एक लट माथे पर झूमती हुई-

''कोई प्रेमी हैं, या कोई फिलासफर हैं, देखा ठाकुर?''

''नहीं यार, दोनों से निकृष्ट कोटि के जीव हैं-ये कवि हैं। मैं इन्हें जानता हूँ। ये रवीन्द्र बिसरिया हैं। एम. ए. में पढ़ता है। आओ, मिलाएँ तुम्हें!''

ठाकुर साहब ने एक बड़ा-सा घास का तिनका तोड़कर पीछे से चुपके-से जाकर उसकी गरदन गुदगुदायी। बिसरिया चौंक उठा-पीछे मुड़कर देखा और बिगड़ गया-"यह क्या बदतमीजी है, ठाकुर साहब! मैं कितने गम्भीर विचारों में डूबा था।'' और सहसा बड़े विचित्र स्वर में आँखें बन्द कर बिसरिया बोला, ''आह! कैसा मनोरम प्रभात है! मेरी आत्मा में घोर अनुभूति हो रही थी।..।''

कपूर बिसरिया की मुद्रा पर ठाकुर साहब की और देखकर मुसकराया और इशारे में बोला, ''है यार शगल की चीज। छेड़ो जरा!''

ठाकुर साहब ने तिनका फेंक दिया और बोले, ''माफ करना, भाई बिसरिया! बात यह है कि हम लोग कवि तो हैं नहीं, इसलिए समझ नहीं पाते। क्या सोच रहे थे तुम?''

बिसरिया ने आँखें खोलीं और एक गहरी साँस लेकर बोला, ''मैं सोच रहा था कि आखिर प्रेम क्या होता है, क्यों होता है? कविता क्यों लिखी जाती है? फिर कविता के संग्रह उतने क्यों नहीं बिकते जितने उपन्यास या कहानी-संग्रह?''

"बात तो गम्भीर है।'' कपूर बोला, ''जहाँ तक मैंने समझा और पढ़ा है-प्रेम एक तरह की बीमारी होती है, मानसिक बीमारी, जो मौसम बदलने के दिनों में होती है, मसलन क्वार-कार्तिक या फागुन-चैत। उसका सम्बन्ध रीढ़ की हड्डी से होता है। और कविता एक तरह का सन्निपात होता है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं, मि. सिबरिया?''

"सिबरिया नहीं, बिसरिया?'' ठाकुर साहब ने टोका।

बिसरिया ने कुछ उजलत, कुछ परेशानी और कुछ गुस्से से उनकी और देखा और बोला, ''क्षमा कीजिएगा, आप या तो फ्रायडवादी हैं या प्रगतिवादी और आपके विचार सर्वदा विदेशी हैं। मैं इस तरह के विचारों से घृणा करता हूँ...।''

कपूर कुछ जवाब देने ही वाला था कि ठाकुर साहब बोले, ''अरे भाई, बेकार उलझ गये तुम लोग, पहले परिचय तो कर लो आपस में। ये हैं श्री चन्द्रकुमार कपूर, विश्वविद्यालय में रिसर्च कर रहे हैं और आप हैं श्री रवीन्द्र बिसरिया, इस वर्ष एम. ए. में बैठ रहे हैं। बहुत अच्छे कवि हैं।''

कपूर ने हाथ मिलाया और फिर गम्भीरता से बोला, ''क्यों साहब, आपको दुनिया में और कोई काम नहीं रहा जो आप कविता करते हैं?''

बिसरिया ने ठाकुर साहब की और देखा और बोला, ''ठाकुर साहब, यह मेरा अपमान है, मैं इस तरह के सवालों का आदी नहीं हूँ।'' और उठ खड़ा हुआ।

"अरे बैठो-बैठो!'' ठाकुर साहब ने हाथ खींचकर बिठा लिया, ''देखो, कपूर का मतलब तुम समझे नहीं। उसका कहना यह है कि तुममें इतनी प्रतिभा है कि लोग तुम्हारी प्रतिभा का आदर करना नहीं जानते। इसलिए उन्होंने सहानुभूति में तुमसे कहा कि तुम और कोई काम क्यों नहीं करते। वरना कपूर साहब तुम्हारी कविता के बहुत शौकीन हैं। मुझसे बराबर तारीफ करते हैं।''

बिसरिया पिघल गया और बोला, ''क्षमा कीजिएगा। मैंने गलत समझा, अब मेरा कविता-संग्रह छप रहा है, मैं आपको अवश्य भेंट करूँगा।'' और फिर बिसरिया ठाकुर साहब की और मुड़कर बोला, ''अब लोग मेरी कविताओं की इतनी माँग करते हैं कि मैं परेशान हो गया हूँ। अभी कल 'त्रिवेणी' के सम्पादक मिले। कहने लगे अपना चित्र दे दो। मैंने कहा कि कोई चित्र नहीं है तो पीछे पड़ गये। आखिरकार मैंने आइडेण्टिटी कार्ड उठाकर दे दिया!''

"वाह!'' कपूर बोला, ''मान गये आपको हम! तो आप राष्ट्रीय कविताएँ लिखते हैं या प्रेम की?''

"जब जैसा अवसर हो!'' ठाकुर साहब ने जड़ दिया, ''वैसे तो यह वारफ्रण्ट का कवि-सम्मेलन, शराबबन्दी कॉन्फ्रेन्स का कवि-सम्मेलन, शादी-ब्याह का कवि-सम्मेलन, साहित्य-सम्मेलन का कवि-सम्मेलन सभी जगह बुलाये जाते हैं। बड़ा यश है इनका!''

बिसरिया ने प्रशंसा से मुग्ध होकर देखा, मगर फिर एक गर्व का भाव मुँह पर लाकर गम्भीर हो गया।

कपूर थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला, ''तो कुछ हम लोगों को भी सुनाइए न!''

''अभी तो मूड नहीं है।'' बिसरिया बोला।

ठाकुर साहब बिसरिया को पिछले पाँच सालों से जानते थे, वे अच्छी तरह जानते थे कि बिसरिया किस समय और कैसे कविता सुनाता है। अतः बोले, ''ऐसे नहीं कपूर, आज शाम को आओ। जरा गंगाजी चलें, कुछ बोटिंग रहे, कुछ खाना-पीना रहे तब कविता भी सुनना!''

कपूर को बोटिंग का बेहद शौक था। फौरन राजी हो गया और शाम का विस्तृत कार्यक्रम बन गया।

इतने में एक कार उधर से लाइब्रेरी की और गुजरी। कपूर ने देखा और बोला, ''अच्छा, ठाकुर साहब, मुझे तो इजाजत दीजिए। अब चलूँ लाइब्रेरी में। वो लोग आ गये। आप कहाँ चल रहे हैं?''

''मैं जरा जिमखाने की और जा रहा हूँ। अच्छा भाई, तो शाम को पक्की रही।''

''बिल्कुल पक्की!'' कपूर बोला और चल दिया।

लाइब्रेरी के पोर्टिको में कार रुकी थी और उसके अन्दर ही डॉक्टर साहब की लड़की बैठी थी।

''क्यों सुधा, अन्दर क्यों बैठी हो?''

''तुम्हें ही देख रही थी, चन्दर।'' और वह उतर आयी। दुबली-पतली, नाटी-सी, साधारण-सी लड़की, बहुत सुन्दर नहीं, केवल सुन्दर, लेकिन बातचीत में बहुत दुलारी।

''चलो, अन्दर चलो।'' चन्दर ने कहा।

वह आगे बढ़ी, फिर ठिठक गयी और बोली, ''चन्दर, एक आदमी को चार किताबें मिलती हैं?''

''हाँ! क्यों?''

''तो...तो...'' उसने बड़े भोलेपन से मुसकराते हुए कहा, ''तो तुम अपने नाम से मेम्बर बन जाओ और दो किताबें हमें दे दिया करना बस, ज्यादा का हम क्या करेंगे?''

''नहीं!'' चन्दर हँसा, ''तुम्हारा तो दिमाग खराब है। खुद क्यों नहीं बनतीं मेम्बर?''

''नहीं, हमें शरम लगती है, तुम बन जाओ मेम्बर हमारी जगह पर।''

''पगली कहीं की!'' चन्दर ने उसका कन्धा पकड़कर आगे ले चलते हुए कहा, ''वाह रे शरम! अभी कल ब्याह होगा तो कहना, हमारी जगह तुम बैठ

जाओ चन्दर! कॉलेज में पहुँच गयी लड़की, अभी शरम नहीं छूटी इसकी! चल अन्दर!''

और वह हिचकती, ठिठकती, झेंपती और मुड़-मुड़कर चन्दर की और रूठी हुई निगाहों से देखती हुई अन्दर चली गयी।

थोड़ी देर बाद सुधा चार किताबें लादे हुए निकली। कपूर ने कहा, ''लाओ, मैं ले लूँ!'' तो बाँस की पतली टहनी की तरह लहराकर बोली, ''सदस्य मैं हूँ। तुम्हें क्यों दूँ किताबें?'' और जाकर कार के अन्दर किताबें पटक दीं। फिर बोली, ''आओ, बैठो, चन्दर!''

''मैं अब घर जाऊँगा।''

''ऊँहूँ, यह देखो!'' और उसने भीतर से कागजों का एक बंडल निकाला और बोली, ''देखो, यह पापा ने तुम्हारे लिए दिया है। लखनऊ में कॉन्फ्रेन्स है न। वहीं पढ़ने के लिए यह निबन्ध लिखा है उन्होंने। शाम तक यह टाइप हो जाना चाहिए। जहाँ संख्याएँ हैं वहाँ खुद आपको बैठकर बोलना होगा। और पापा सुबह से ही कहीं गये हैं। समझे जनाब!'' उसने बिल्कुल अल्हड़ बच्चों की तरह गरदन हिलाकर शोख स्वरों में कहा।

कपूर ने बंडल ले लिया और कुछ सोचता हुआ बोला, ''लेकिन डॉक्टर साहब का हस्तलेख, इतने पृष्ठ, शाम तक कौन टाइप कर देगा?''

''इसका भी इन्तजाम है,'' और अपने ब्लाउज में से एक पत्र निकालकर चन्दर के हाथ में देती हुई बोली, ''यह कोई पापा की पुरानी ईसाई छात्रा है। टाइपिस्ट। इसके घर मैं तुम्हें पहुँचाये देती हूँ। मुकर्जी रोड पर रहती है यह। उसी के यहाँ टाइप करवा लेना और यह खत उसे दे देना।''

''लेकिन अभी मैंने चाय नहीं पी।''

''समझ गये, अब तुम सोच रहे होगे कि इसी बहाने सुधा तुम्हें चाय भी पिला देगी। सो मेरा काम नहीं है, जो मैं चाय पिलाऊँ? पापा का काम है यह! चलो, आओ!''

चन्दर जाकर भीतर बैठ गया और किताबें उठाकर देखने लगा, ''अरे, चारों कविता की किताबें उठा लायी-समझ में आएँगी तुम्हारे? क्यों, सुधा?''

''नहीं!'' चिढ़ाते हुए सुधा बोली, ''तुम कहो, तुम्हें समझा दें। इकनॉमिक्स पढ़ने वाले क्या जानें साहित्य?''

''अरे, मुकर्जी रोड पर ले चलो, ड्राइवर!'' चन्दर बोला, ''इधर कहाँ चल रहे हो?''

''नहीं, पहले घर चलो!'' सुधा बोली, ''चाय पी लो, तब जाना!''

''नहीं, मैं चाय नहीं पिऊँगा।'' चन्दर बोला।

''चाय नहीं पिऊँगा, वाह! वाह!'' सुधा की हँसी में दूधिया बचपन छलक उठा–"मुँह तो सूखकर गोभी हो रहा है, चाय नहीं पिएँगे।''

बँगला आया तो सुधा ने महराजिन से चाय बनाने के लिए कहा और चन्दर को स्टडी रूम में बिठाकर प्याले निकालने के लिए चल दी।

वैसे तो यह घर, यह परिवार चन्द्र कपूर का अपना हो चुका था, जब से वह अपनी माँ से झगड़कर प्रयाग भाग आया था, पढने के लिए, यहाँ आकर बी. ए. में भरती हुआ था और कम खर्च के खयाल से चौक में एक कमरा लेकर रहता था, तभी डॉक्टर शुक्ला उसके सीनियर टीचर थे और उसकी परिस्थितियों से अवगत थे। चन्दर की अँग्रेजी बहुत ही अच्छी थी और डॉ. शुक्ला उससे अक्सर छोटे–छोटे लेख लिखवाकर पत्रिकाओं में भिजवाते थे। उन्होंने कई पत्रों के आर्थिक स्तम्भ का काम चन्दर को दिलवा दिया था और उसके बाद चन्दर के लिए डॉ. शुक्ला का स्थान अपने संरक्षक और पिता से भी ज्यादा हो गया था। चन्दर शरमीला लड़का था, बेहद शरमीला, कभी उसने यूनिवर्सिटी के वजीफे के लिए भी कोशिश न की थी, लेकिन जब बी. ए. में वह सारी यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आया तब स्वयं इकनॉमिक्स विभाग ने उसे यूनिवर्सिटी के आर्थिक प्रकाशनों का वैतनिक सम्पादक बना दिया था। एम. ए. में भी वह सर्वप्रथम आया और उसके बाद उसने रिसर्च ले ली। उसके बाद डॉ. शुक्ला यूनिवर्सिटी से हटकर ब्यूरो में चले गये थे। अगर सच पूछा जाय तो उसके सारे कैरियर का श्रेय डॉ. शुक्ला को था जिन्होंने हमेशा उसकी हिम्मत बढ़ायी और उसको अपने लड़के से बढ़कर माना। अपनी सारी मदद के बावजूद डॉ. शुक्ला ने उससे इतना अपनापन बनाये रखा कि कैसे धीरे–धीरे चन्दर सारी गैरियत खो बैठा, यह उसे खुद नहीं मालूम। यह बँगला, इसके कमरे, इसके लॉन, इसकी किताबें, इसके निवासी, सभी कुछ जैसे उसके अपने थे और सभी का उससे जाने कितने जन्मों का सम्बन्ध था।

और यह नन्ही दुबली–पतली रंगीन चन्द्रकिरन–सी सुधा। जब आज से वर्षों पहले यह सातवीं पास करके अपनी बुआ के पास से यहाँ आयी थी, तब से लेकर आज तक कैसे वह भी चन्दर की अपनी होती गयी थी, इसे चन्दर खुद नहीं जानता था। जब वह आयी थी तब वह बहुत शरमीली थी, बहुत भोली थी, आठवीं में पढ़ने के बावजूद वह खाना खाते वक्त रोती थी, मचलती थी तो

अपनी कॉपी फाड़ डालती थी और जब तक डॉक्टर साहब उसे गोदी में बिठाकर नहीं मनाते थे, वह स्कूल नहीं जाती थी। तीन बरस की अवस्था में ही उसकी माँ चल बसी थी और दस साल तक वह अपनी बुआ के पास एक गाँव में रही थी। अब तेरह वर्ष की होने पर गाँव वालों ने उसकी शादी पर जोर देना और शादी न होने पर गाँव की औरतों ने हाथ नचाना और मुँह मटकाना शुरू किया तो डॉक्टर साहब ने उसे इलाहाबाद बुलाकर आठवीं में भर्ती करा दिया। जब वह आयी थी तो आधी जंगली थी, तरकारी में घी कम होने पर वह महराजिन का चौका जूठा कर देती थी और रात में फूल तोड़कर न लाने पर अकसर उसने माली को दाँत भी काट खाया था। चन्दर से जरूर वह बेहद डरती थी, पर न जाने क्यों चन्दर भी उससे नहीं बोलता था। लेकिन जब दो साल तक उसके ये उपद्रव जारी रहे और अक्सर डॉक्टर साहब गुस्से के मारे उसे न साथ खिलाते थे और न उससे बोलते थे, तो वह रो-रोकर और सिर पटक-पटककर अपनी जान आधी कर देती थी। तब अक्सर चन्दर ने पिता और पुत्री का समझौता कराया था, अक्सर सुधा को डाँटा था, समझाया था, और सुधा, घर-भर से अल्हड़ पुरवाई और विद्रोही झोंके की तरह तोड़-फोड़ मचाती रहने वाली सुधा, चन्दर की आँख के इशारे पर सुबह की नसीम की तरह शान्त हो जाती थी। कब और क्यों उसने चन्दर के इशारों का यह मौन अनुशासन स्वीकार कर लिया था, यह उसे खुद नहीं मालूम था, और यह सभी कुछ इतने स्वाभाविक ढंग से, इतना अपने-आप होता गया कि दोनों में से कोई भी इस प्रक्रिया से वाकिफ नहीं था, कोई भी इसके प्रति जागरूक न था, दोनों का एक-दूसरे के प्रति अधिकार और आकर्षण इतना स्वाभाविक था जैसे शरद की पवित्रता या सुबह की रोशनी।

और मजा तो यह था कि चन्दर की शक्ल देखकर छिप जाने वाली सुधा इतनी ढीठ हो गयी थी कि उसका सारा विद्रोह, सारी झुँझलाहट, मिजाज की सारी तेजी, सारा तीखापन और सारा लड़ाई-झगड़ा, सभी की तरफ से हटकर चन्दर की और केन्द्रित हो गया था। वह विद्रोहिनी अब शान्त हो गयी थी। इतनी शान्त, इतनी सुशील, इतनी विनम्र, इतनी मिष्टभाषिणी कि सभी को देखकर ताज्जुब होता था, लेकिन चन्दर को देखकर जैसे उसका बचपन फिर लौट आता था और जब तक वह चन्दर को खिझाकर, छेडकर लड़ नहीं लेती थी उसे चैन नहीं पड़ता था। अक्सर दोनों में अनबोला रहता था, लेकिन जब दो दिन तक दोनों मुँह फुलाये रहते थे और डॉक्टर साहब के लौटने पर सुधा उत्साह से उनके ब्यूरो का हाल नहीं पूछती थी और खाते वक्त दुलार नहीं दिखाती थी तो डॉक्टर साहब

फौरन पूछते थे, ''क्या... चन्दर से लड़ाई हो गयी क्या?'' फिर वह मुँह फुलाकर शिकायत करती थी और शिकायतें भी क्या-क्या होती थीं, चन्दर ने उसकी हेड मिस्ट्रेस का नाम एलीफैंटा (श्रीमती हथिनी) रखा था, या चन्दर ने उसको डिबेट के भाषण के प्वाइंट नहीं बताये, या चन्दर कहता है कि सुधा की सखियाँ कोयला बेचती हैं, और जब डॉक्टर साहब कहते हैं कि वह चन्दर को डाँट देंगे तो वह खुशी से फूल उठती और चन्दर के आने पर आँखें नचाती हुई चिढ़ाती थी, ''कहो, कैसी डाँट पड़ी?''

वैसे सुधा अपने घर की पुरखिन थी। किस मौसम में कौन-सी तरकारी पापा को माफिक पड़ती है, बाजार में चीजों का क्या भाव है, नौकर चोरी तो नहीं करता, पापा कितने सोसायटियों के मेम्बर हैं, चन्दर के इक्नॉमिक्स के कोर्स में क्या है, यह सभी उसे मालूम था। मोटर या बिजली बिगड़ जाने पर वह थोड़ी-बहुत इंजीनियरिंग भी कर लेती थी और मातृत्व का अंश तो उसमें इतना था कि हर नौकर और नौकरानी उससे अपना सुख-दुःख कह देते थे। पढ़ाई के साथ-साथ घर का सारा काम-काज करते हुए उसका स्वास्थ्य भी कुछ बिगड़ गया था और अपनी उम्र के हिसाब से कुछ अधिक शान्त, संयम, गम्भीर और बुजुर्ग थी, मगर अपने पापा और चन्दर, इन दोनों के सामने हमेशा उसका बचपन इठलाने लगता था। दोनों के सामने उसका हृदय उन्मुक्त था और स्नेह बाधाहीन।

लेकिन हाँ, एक बात थी। उसे जितना स्नेह और स्नेह-भरी फटकारें और स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता अपने पापा से मिलती थी, वह सब बड़े निःस्वार्थ भाव से वह चन्दर को दे डालती थी। खाने-पीने की जितनी परवाह उसके पापा उसकी रखते थे, न खाने पर या कम खाने पर उसे जितने दुलार से फटकारते थे, उतना ही ख्याल वह चन्दर का रखती थी और स्वास्थ्य के लिए जो उपदेश उसे पापा से मिलते थे, उसे और भी स्नेह में पागकर वह चन्दर को दे डालती थी। चन्दर कै बजे खाना खाता है, यहाँ से जाकर घर पर कितनी देर पढ़ता है, रात को सोते वक्त दूध पीता है या नहीं, इन सबका लेखा-जोखा उसे सुधा को देना पड़ता, और जब कभी उसके खाने-पीने में कोई कमी रह जाती तो उसे सुधा की डाँट खानी ही पड़ती थी। पापा के लिए सुधा अभी बच्ची थी और स्वास्थ्य के मामले में सुधा के लिए चन्दर अभी बच्चा था। और कभी-कभी तो सुधा की स्वास्थ्य-चिन्ता इतनी ज्यादा हो जाती थी कि चन्दर बेचारा जो खुद तन्दुरुस्त था, घबरा उठता था। एक बार सुधा ने कमाल कर दिया। उसकी तबीयत खराब हुई और डॉक्टर ने उसे लड़कियों का एक टॉनिक पीने के लिए

बताया। इम्तहान में जब चन्दर कुछ दुबला-सा हो गया तो सुधा अपनी बची हुई दवा ले आयी। और लगी चन्दर से जिद करने कि ''पियो इसे!'' जब चन्दर ने किसी अखबार में उसका विज्ञापन दिखाकर बताया कि लड़कियों के लिए है, तब कहीं जाकर उसकी जान बची।

इसीलिए जब आज सुधा ने चाय के लिए कहा तो उसकी रूह काँप गयी क्योंकि जब कभी सुधा चाय बनाती थी तो प्याले के मुँह तक दूध भरकर उसमें दो-तीन चम्मच चाय का पानी डाल देती थी और अगर उसने ज्यादा स्ट्रांग चाय की माँग की तो उसे खालिस दूध पीना पड़ता था। और चाय के साथ फल और मेवा और खुदा जाने क्या-क्या, और उसके बाद सुधा का इसरार, न खाने पर सुधा का गुस्सा और उसके बाद की लम्बी-चौड़ी मनुहार। इस सबसे चन्दर बहुत घबराता था। लेकिन जब सुधा उसे स्टडी रूम में बिठाकर जल्दी से चाय बना लायी तो उसे मजबूर होना पड़ा और बैठे-बैठे निहायत बेबसी से उसने देखा कि सुधा ने प्याले में दूध डाला और उसके बाद थोड़ी-सी चाय डाल दी। उसके बाद अपने प्याले में चाय डालकर और दो चम्मच दूध डालकर आप ठाठ से पीने लगी, और बेतकल्लुफी से दूधिया चाय का प्याला चन्दर के सामने खिसकाकर बोली, ''पीजिए, नाश्ता आ रहा है।''

चन्दर ने प्याले को अपने सामने रखा और उसे चारों तरफ घुमाकर देखता रहा कि किस तरफ से उसे चाय का अंश मिल सकता है। जब सभी और से प्याले में क्षीरसागर नजर आया तो उसने हारकर प्याला रख दिया।

''क्यों, पीते क्यों नहीं?'' सुधा ने अपना प्याला रख दिया।

''पीएँ क्या? कहीं चाय भी हो?''

''तो और क्या खालिस चाय पीजिएगा? दिमागी काम करने वालों को ऐसी ही चाय पीनी चाहिए।''

''तो अब मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं चाय छोड़ूँ या रिसर्च। न ऐसी चाय मुझे पसन्द, न ऐसा दिमागी काम!''

''लो, आपको विश्वास नहीं होता। मेरी क्लासफेलो है गेसू काजमी, सबसे तेज लड़की है, उसकी अम्मी उसे दूध में चाय उबालकर देती है।''

''क्या नाम है तुम्हारी सखी का?''

''गेसू!''

''बड़ा अच्छा नाम है!''

''और क्या! मेरी सबसे घनिष्ठ मित्र है और उतनी ही अच्छी है जितना अच्छा नाम!''

''जरूर-जरूर,'' मुँह बिचकाते हुए चन्दर ने कहा, ''और उतनी ही काली होगी, जितने काले गेसू।''

''धत्, शरम नहीं आती किसी लड़की के लिए ऐसा कहते हुए!''

''और हमारे दोस्तों की बुराई करती हो तब?''

''तब क्या! वे तो सब हैं ही बुरे! अच्छा तो नाश्ता, पहले फल खाओ,'' और वह प्लेट में छील-छीलकर सन्तरा रखने लगी। इतने में ज्यों ही वह झुककर एक गिरे हुए सन्तरे को नीचे से उठाने लगी कि चन्दर ने झट से उसका प्याला अपने सामने रख लिया और अपना प्याला उधर रख दिया और शान्त चित्त से पीने लगा। सन्तरे की फाँकें उसकी और बढ़ाते हुए ज्यों ही उसने एक घूँट चाय ली तो वह चौंककर बोली, ''अरे, यह क्या हुआ?''

''कुछ नहीं, हमने उसमें दूध डाल दिया। तुम्हें दिमागी काम बहुत रहता है!'' चन्दर ने ठाठ से चाय घूँटते हुए कहा। सुधा कुढ़ गयी। कुछ बोली नहीं। चाय खत्म करके चन्दर ने घड़ी देखी।

''अच्छा लाओ, क्या टाइप कराना है? अब बहुत देर हो रही है।''

''बस यहाँ तो एक मिनट बैठना बुरा लगता है आपको! हम कहते हैं कि नाश्ते और खाने के वक्त आदमी को जल्दी नहीं करनी चाहिए। बैठिए न!''

''अरे, तो तुम्हें कॉलेज की तैयारी नहीं करनी है?''

''करनी क्यों नहीं है। आज तो गेसू को मोटर पर लेते हुए तब जाना है!''

''तुम्हारी गेसू और कभी मोटर पर चढ़ी है?''

''जी, वह साबिर हुसैन काजमी की लड़की है, उसके यहाँ दो मोटरें हैं और रोज तो उसके यहाँ दावतें होती रहती हैं।''

''अच्छा, हमारी तो दावत कभी नहीं की?''

''अहा हा, गेसू के यहाँ दावत खाएँगे! इसी मुँह से! जनाब उसकी शादी भी तय हो गयी है, अगले जाड़ों तक शायद हो भी जाय।''

''छिह, बड़ी खराब लड़की हो! कहाँ रहता है ध्यान तुम्हारा?''

सुधा ने मजाक में पराजित कर बहुत विजय-भरी मुसकान से उसकी और देखा। चन्दर ने झेंपकर निगाह नीची कर ली तो सुधा पास आकर चन्दर का कन्धा पकड़कर बोली-''अरे उदास हो गये, नहीं भइया, तुम्हारा भी ब्याह तय कराएँगे, घबराते क्यों हो!'' और एक मोटी-सी इकनॉमिक्स की किताब उठाकर

बोली, ''लो, इस मुटकी से ब्याह करोगे! लो बातचीत कर लो, तब तक मैं वह निबन्ध ले आऊँ, टाइप कराने वाला।''

चन्दर ने खिसियाकर बड़ी जोर से सुधा का हाथ दबा दिया। ''हाय रे!'' सुधा ने हाथ छुड़ाकर मुँह बनाते हुए कहा, ''लो बाबा, हम जा रहे हैं, काहे बिगड़ रहे हैं आप?'' और वह चली गयी! डॉक्टर साहब का लिखा हुआ निबन्ध उठा लायी और बोली, ''लो, यह निबन्ध की पाण्डुलिपि है।'' उसके बाद चन्दर की और बड़े दुलार से देखती हुई बोली, ''शाम को आओगे?''

''न!''

''अच्छा, हम परेशान नहीं करेंगे। तुम चुपचाप पढ़ना। जब रात को पापा आ जाएँ तो उन्हें निबन्ध की प्रतिलिपि देकर चले जाना!''

''नहीं, आज शाम को मेरी दावत है ठाकुर साहब के यहाँ।''

''तो उसके बाद आ जाना। और देखो, अब फरवरी आ गयी है, मास्टर ढूँढ़ दो हमें।''

''नहीं, ये सब झूठी बात है। हम कल सुबह आएँगे।''

''अच्छा, तो सुबह जल्दी आना और देखो, मास्टर लाना मत भूलना। ड्राइवर तुम्हें मुकर्जी रोड पहुँचा देगा।''

वह कार में बैठ गया और कार स्टार्ट हो गयी कि फिर सुधा ने पुकारा। वह फिर उतरा। सुधा बोली, ''लो, यह लिफाफा तो भूल ही गये थे। पापा ने लिख दिया है। उसे दे देना।''

''अच्छा।'' कहकर फिर चन्दर चला कि फिर सुधा ने पुकारा, ''सुनो!''

''एक बार में क्यों नहीं कह देती सब!'' चन्दर ने झल्लाकर कहा।

''अरे बड़ी गम्भीर बात है। देखो, वहाँ कुछ ऐसी-वैसी बात मत कहना लड़की से, वरना उसके यहाँ दो बड़े-बड़े बुलडॉग हैं।'' कहकर उसने गाल फुलाकर, आँख फैलाकर ऐसी बुलडॉग की भंगिमा बनायी कि चन्दर हँस पड़ा। सुधा भी हँस पड़ी।

ऐसी थी सुधा, और ऐसा था चन्दर

सिविल लाइन्स के एक उजाड़ हिस्से में एक पुराने-से बँगले के सामने आकर मोटर रुकी। बँगले का नाम था 'रोजलान' लेकिन सामने के कम्पाउंड में जंगली घास उग रही थी और गुलाब के फूलों के बजाय अहाते में मुरगी के पंख बिखरे पड़े थे। रास्ते पर भी घास उग आयी थी और फाटक पर, जिसके एक

खम्भे की कॉर्निस टूट चुकी थी, बजाय लोहे के दरवाजे के दो आड़े बाँस लगे हुए थे। फाटक के एक और एक छोटा-सा लकड़ी का नामपटल लगा था, जो कभी काला रहा होगा, लेकिन जिसे धूल, बरसात और हवा ने चितकबरा बना दिया था। चन्दर मोटर से उतरकर उस बोर्ड पर लिखे हुए अधमिटे सफेद अक्षरों को पढ़ने की कोशिश करने लगा, और जाने किसका मुँह देखकर सुबह उठा था कि उसे सफलता भी मिल गयी। उस पर लिखा था, 'ए. एफ. डिक्रूज'। उसने जेब से लिफाफा निकाला और पता मिलाया। लिफाफे पर लिखा था, 'मिस पी. डिक्रूज'। यही बँगला है, उसे सन्तोष हुआ।

''हॉर्न दो!'' उसने ड्राइवर से कहा। ड्राइवर ने हॉर्न दिया। लेकिन किसी का बाहर आना तो दूर, एक मुरगा, जो अहाते में कुडकुड़ा रहा था, उसने मुड़कर बड़े सन्देह और त्रास से चन्दर की और देखा और उसके बाद पंख फड़फड़ाते हुए, चीखते हुए जान छोड़कर भागा। ''बड़ा मनहूस बँगला है, यहाँ आदमी रहते हैं या प्रेत?'' कपूर ने ऊबकर कहा और ड्राइवर से बोला, ''जाओ तुम, हम अन्दर जाकर देखते हैं!''

''अच्छा हुजूर, सुधा बीबी से क्या कह देंगे?''

''कह देना, पहुँचा दिया।''

कार मुड़ी और कपूर बाँस फाँदकर अन्दर घुसा। आगे का पोर्टिको खाली पड़ा था और नीचे की जमीन ऐसी थी जैसे कई साल से उस बँगले में कोई सवारी गाड़ी न आयी हो। वह बरामदे में गया। दरवाजे बन्द थे और उन पर धूल जमी थी। एक जगह चौखट और दरवाजे के बीच में मकड़ी ने जाला बुन रखा था। 'यह बँगला खाली है क्या?' कपूर ने सोचा। सुबह साढ़े आठ बजे ही वहाँ ऐसा सन्नाटा छाया था कि दिल घबरा जाय। आस-पास चारों और आधी फर्लांग तक कोई बँगला नहीं था। उसने सोचा बँगले के पीछे की और शायद नौकरों की झोंपड़ियाँ हों। वह दायें बाजू से मुड़ा और खुशबू का एक तेज झोंका उसे चूमता हुआ निकल गया। 'ताज्जुब है, यह सन्नाटा, यह मनहूसी और इतनी खुशबू!' कपूर ने कहा और आगे बढ़ा तो देखा कि बँगले के पिछवाड़े गुलाब का एक बहुत खूबसूरत बाग है। कच्ची रविशें और बड़े-बड़े गुलाब, हर रंग के। वह सचमुच 'रोजलान' था।

वह बाग में पहुँचा। उधर से भी बँगले के दरवाजे बन्द थे। उसने खटखटाया लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। वह बाग में घुसा कि शायद कोई माली काम कर रहा हो। बीच-बीच में ऊँचे-ऊँचे जंगली चमेली के झाड़ थे और

कहीं-कहीं लोहे की छड़ों के कटघरे। बेगमबेलिया भी फूल रही थी लेकिन चारों और एक अजब-सा सन्नाटा था और हर फूल पर किसी खामोशी के फरिश्ते की छाँह थी। फूलों में रंग था, हवा में ताजगी थी, पेड़ों में हरियाली थी, झोंकों में खुशबू थी, लेकिन फिर भी सारा बाग एक ऐसे सितारों का गुलदस्ता लग रहा था जिनकी चमक, जिनकी रोशनी और जिनकी ऊँचाई लुट चुकी हो। लगता था जैसे बाग का मालिक मौसमी रंगीनी भूल चुका हो, क्योंकि नैस्टर्शियम या स्वीटपी या फ्लाक्स, कोई भी मौसमी फूल न था, सिर्फ गुलाब थे और जंगली चमेली थी और बेगमबेलिया थी जो सालों पहले बोये गये थे। उसके बाद उन्हीं की काट-छाँट पर बाग चल रहा था। बागबानी में कोई नवीनता और मौसम का उल्लास न था।

चन्दर फूलों का बेहद शौकीन था। सुबह घूमने के लिए उसने दरिया किनारे के बजाय अल्फ्रेड पार्क चुना था क्योंकि पानी की लहरों के बजाय उसे फूलों के बाग के रंग और सौरभ की लहरों से बेहद प्यार था। और उसे दूसरा शौक था कि फूलों के पौधों के पास से गुजरते हुए हर फूल को समझने की कोशिश करना। अपनी नाजुक टहनियों पर हँसते-मुसकराते हुए ये फूल जैसे अपने रंगों की बोली में आदमी से जिंदगी का जाने कौन-सा राज कहना चाहते हैं। और ऐसा लगता है कि जैसे हर फूल के पास अपना व्यक्तिगत सन्देश है जिसे वह अपने दिल की पाँखुरियों में आहिस्ते से सहेज कर रखे हुए हैं कि कोई सुनने वाला मिले और वह अपनी दास्ताँ कह जाए। पौधे की ऊपरी फुनगी पर मुसकराता हुआ आसमान की तरफ मुँह किये हुए यह गुलाब जो रात-भर सितारों की मुसकराहट चुपचाप पीता रहा है, यह अपने मोतियों-पाँखुरियों के होठों से जाने क्यों खिलखिलाता ही जा रहा है। जाने इसे कौन-सा रहस्य मिल गया है। और वह एक नीचे वाली टहनी में आधा झुका हुआ गुलाब, झुकी हुई पलकों-सी पाँखुरियाँ और दोहरे मखमली तार-सी उसकी डंडी, यह गुलाब जाने क्यों उदास है? और यह दुबली-पतली लम्बी-सी नाजुक कली जो बहुत सावधानी से हरा आँचल लपेटे है और प्रथम ज्ञात-यौवना की तरह लाज में जो सिमटी तो सिमटी ही चली जा रही है, लेकिन जिसके यौवन की गुलाबी लपटें सात हरे परदों में से झलकी ही पड़ती हैं, झलकी ही पड़ती हैं। और फारस के शाहजादे जैसा शान से खिला हुआ पीला गुलाब! उस पीले गुलाब के पास आकर चन्दर रुक गया और झुककर देखने लगा। कातिक पूनो के चाँद से झरने वाले अमृत को पीने के लिए व्याकुल किसी सुकुमार, भावुक परी की फैली हुई अंजलि के बराबर

बड़ा-सा वह फूल जैसे रोशनी बिखेर रहा था। बेगमबेलिया के कुंज से छनकर आनेवाली तोतापंखी धूप ने जैसे उस पर धान-पान की तरह खुशनुमा हरियाली बिखेर दी थी। चन्दर ने सोचा, उसे तोड़ लें लेकिन हिम्मत न पड़ी। वह झुका कि उसे सूँघ ही लें। सूँघने के इरादे से उसने हाथ बढ़ाया ही था कि किसी ने पीछे से गरजकर कहा, ''हीयर यू आर, आई हैव काट रेड-हैण्डेड टुडे!'' (यह तुम हो, आज तुम्हें मौके पर पकड़ पाया हूँ)

और उसके बाद किसी ने अपने दोनों हाथों में जकड़ लिया और उसकी गरदन पर सवार हो गया। वह उछल पड़ा और अपने को छुड़ाने की कोशिश करने लगा। पहले तो वह कुछ समझ नहीं पाया। अजब रहस्यमय है यह बँगला। एक अव्यक्त भय और एक सिहरन में उसके हाथ-पाँव ढीले हो गये। लेकिन उसने हिम्मत करके अपना एक हाथ छुड़ा लिया और मुड़कर देखा तो एक बहुत कमजोर, बीमार-सा, पीली आँखों वाला गोरा उसे पकड़े हुए था। चन्दर के दूसरे हाथ को फिर पकड़ने की कोशिश करता हुआ वह हाँफता हुआ बोला (अँग्रेजी में), ''रोज-रोज यहाँ से फूल गायब होते थे। मैं कहता था, कहता था, कौन ले जाता है। हो...हो...,'' वह हाँफता जा रहा था, ''आज मैंने पकड़ा तुम्हें। रोज चुपके से चले जाते थे।..'' वह चन्दर को कसकर पकड़े था लेकिन उस बीमार गोरे की साँस जैसे छूटी जा रही थी। चन्दर ने उसे झटका देकर धकेल दिया और डाँटकर बोला, ''क्या मतलब है तुम्हारा! पागल है क्या! खबरदार जो हाथ बढ़ाया, अभी ढेर कर दूँगा तुझे! गोरा सुअर!'' और उसने अपनी आस्तीनें चढ़ायीं।

वह धक्के से गिर गया था, धूल झाड़ते उठ बैठा और बड़ी ही रोनी आवाज में बोला, ''कितना जुल्म है, कितना जुल्म है! मेरे फूल भी तुम चुरा ले गये और मुझे इतना हक भी नहीं कि तुम्हें धमकाऊँ! अब तुम मुझसे लड़ोगे! तुम जवान हो, मैं बूढ़ा हूँ। हाय रे मैं!'' और सचमुच वह जैसे रोने लगा हो।

चन्दर ने उसका रोना देखा और उसका सारा गुस्सा हवा हो गया और हँसी रोककर बोला, ''गलतफहमी है, जनाब! मैं बहुत दूर रहता हूँ। मैं चिठ्ठी लेकर मिस डिक्रूज से मिलने आया था।''

उसका रोना नहीं रुका, ''तुम बहाना बनाते हो, बहाना बनाते हो और अगर मैं विश्वास नहीं करता तो तुम मारने की धमकी देते हो? अगर मैं कमजोर न होता...तो तुम्हें पीसकर खा जाता और तुम्हारी खोपड़ी कुचलकर फेंक देता जैसे तुमने मेरे फूल फेंके होंगे?''

''फिर तुमने गाली दी! मैं उठाकर तुम्हें अभी नाले में फेंक दूँगा!''

''अरे बाप रे! दौड़ो, दौड़ो, मुझे मार डाला...पॉपी...टॉमी...अरे दोनों कुत्ते मर गये...।'' उसने डर के मारे चीखना शुरू किया।

''क्या है, बर्टी? क्यों चिल्ला रहे हो?'' बाथरूम के अन्दर से किसी ने चिल्लाकर कहा।

''अरे मार डाला इसने...दौड़ो-दौड़ो!''

झटके से बाथरूम का दरवाजा खुला बेदिंग-गाउन पहने हुए एक लड़की दौड़ती हुई आयी और चन्दर को देखकर रुक गयी।

''क्या है?'' उसने डाँटकर पूछा।

''कुछ नहीं, शायद पागल मालूम देता है!''

''जबान सँभालकर बोलो, वह मेरा भाई है!''

''ओह! कोई भी हो। मैं मिस डिक्रूज से मिलने आया था। मैंने आवाज दी तो कोई नहीं बोला। मैं बाग में घूमने लगा। इतने में इसने मेरी गरदन पकड़ ली। यह बीमार और कमजोर है वरना अभी गरदन दबा देता।''

गोरा उस लड़की के आते ही फिर तनकर खड़ा हो गया और दाँत पीसकर बोला, ''अरे मैं तुम्हारे दाँत तोड़ दूँगा। बदमाश कहीं का, चुपके-चुपके आया और गुलाब तोड़ने लगा। मैं चमेली के झाड़ के पीछे छिपा देख रहा था।''

''अभी मैं पुलिस बुलाती हूँ, तुम देखते रहो बर्टी इसे। मैं फोन करती हूँ।'' लड़की ने डाँटते हुए कहा।

''अरे भाई, मैं मिस डिक्रूज से मिलने आया हूँ।''

''मैं तुम्हें नहीं जानती, झूठा कहीं का। मैं मिस डिक्रूज हूँ।''

''देखिए तो यह खत!''

लड़की ने खत खोला और पढ़ा और एकदम उसने आवाज बदल दी।

''छिह बर्टी, तुम किसी दिन पागलखाने जाओगे। आपको डॉ. शुक्ला ने भेजा है। तुम तो मुझे बदनाम करा डालोगे!''

उसकी शक्ल और भी रोनी हो गयी , ''मैं नहीं जानता था, मैं जानता नहीं था।'' उसने और भी घबराकर कहा।

''माफ कीजिएगा!'' लड़की ने बड़े मीठे स्वर में साफ हिन्दुस्तानी में कहा, ''मेरे भाई का दिमाग जरा ठीक नहीं रहता, जब से इनकी पत्नी की मौत हो गयी।''

''इसका मतलब ये नहीं कि ये किसी भले आदमी की इज्जत उतार लें।'' चन्दर ने बिगड़कर कहा।

''देखिए, बुरा मत मानिए। मैं इनकी और से माफी माँगती हूँ। आइए, अन्दर चलिए।'' उसने चन्दर का हाथ पकड़ लिया। उसका हाथ बेहद ठण्डा था। वह नहाकर आ रही थी। उसके हाथ के उस तुषार स्पर्श से चन्दर सिहर उठा और उसने हाथ झटककर कहा, ''अफसोस, आपका हाथ तो बर्फ है?''

लड़की चौंक गयी। वह सद्यःस्नाता सहसा सचेत हो गयी और बोली, ''अरे शैतान तुम्हें ले जाए, बर्टी! तुम्हारे पीछे मैं बेदिंग गाउन में भाग आयी।'' और बेदिंग गाउन के दोनों कालर पकड़कर उसने अपनी खुली गरदन ढँकने का प्रयास किया और फिर अपनी पोशाक पर लज्जित होकर भागी।

अभी तक गुस्से के मारे चन्दर ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया था। लेकिन उसने देखा कि वह तेईस बरस की दुबली-पतली तरुणी है। लहराता हुआ बदन, गले तक कटे हुए बाल। एंग्लो-इंडियन होने के बावजूद गोरी नहीं है। चाय की तरह वह हल्की, पतली, भूरी और तुर्श थी। भागते वक्त ऐसी लग रही थी जैसे छलकती हुई चाय।

इतने में वह गोरा उठा और चन्दर का कन्धा छूकर बोला, ''माफ करना, भाई! उससे मेरी शिकायत मत करना। असल में ये गुलाब मेरी मृत पत्नी की यादगार हैं। जब इनका पहला पेड़ आया था तब मैं इतना ही जवान था जितने तुम, और मेरी पत्नी उतनी ही अच्छी थी जितनी पम्मी।''

''कौन पम्मी?''

''यह मेरी बहन प्रमिला डिक्रूज!''

''ओह! कब मरी आपकी पत्नी? माफ कीजिएगा मुझे भी मालूम नहीं था!''

''हाँ, मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरा दिमाग कुछ खराब है, देखिए!'' कहकर उसने झुककर अपनी खोपड़ी चन्दर के सामने कर दी और बहुत गिड़गिड़ाकर बोला, ''पता नहीं कौन मेरे फूल चुरा ले जाता है! अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद पाँच साल से मैं इन फूलों को सँभाल रहा हूँ। हाय रे मैं! जाइए, पम्मी बुला रही है।''

पिछवाड़े के सहन का बीच का दरवाजा खुल गया था और पम्मी कपड़े पहनकर बाहर झाँक रही थी। चन्दर आगे बढ़ा और गोरा मुड़कर अपने गुलाब और चमेली की झाड़ी में खो गया। चन्दर गया और कमरे में पड़े हुए एक सोफा

पर बैठ गया। पम्मी ट्वायलेट कर चुकी थी और एक हल्की फ्रान्सीसी खुशबू से महक रही थी। शैम्पू से धुले हुए रूखे बाल जो मचले पड़ रहे थे, खुशनुमा आसमानी रंग का एक पतला चिपका हुआ झीना ब्लाउज और ब्लाउज पर एक फ्लैनेल का फुलपैंट जिसके दो गेलिस कमर, छाती और कन्धे पर चिपके हुए थे। होठों पर एक हल्की लिपस्टिक की झलक मात्र थी, और गले तक बहुत हल्का पाउडर, जो बहुत नजदीक से ही मालूम होता था। लम्बे नाखूनों पर हल्की गुलाबी पैंट। वह आयी, नि:संकोच भाव से उसी सोफे पर कपूर के बगल में बैठ गयी और बड़ी मुलायम आवाज में बोली, ''मुझे बड़ा दु:ख है, मिस्टर कपूर! आपको बहुत तवालत उठानी पड़ी। चोट तो नहीं आयी?''

''नहीं, नहीं, कोई बात नहीं!'' कपूर का सारा गुस्सा हवा हो गया। कोई भी लड़की नि:संकोच भाव से, इतनी अपनायत से सहानुभूति दिखाये और माफी माँगे, तो उसके सामने कौन पानी-पानी नहीं हो जाएगा, और फिर वह भी तब जबकि उसके होठों पर न केवल बोली अच्छी लगती हो, वरन लिपस्टिक भी इतनी प्यारी हो। लेकिन चन्दर की एक आदत थी। और चाहे कुछ न हो, कम-से-कम वह यह अच्छी तरह जानता था कि नारी जाति से व्यवहार करते समय कहाँ पर कितनी ढील देनी चाहिए, कितना कसना चाहिए, कब सहानुभूति से उन्हें झुकाया जा सकता है, कब अकड़कर। इस वक्त जानता था कि इस लड़की से वह जितनी सहानुभूति चाहे, ले सकता है, अपने अपमान के हर्जाने के तौर पर। इसलिए कपूर साहब बोले, ''लेकिन मिस डिक्रूज, आपके भाई बीमार होने के बावजूद बहुत मजबूत हैं। उफ! गरदन पर जैसे अभी तक जलन हो रही है।''

''ओहो! सचमुच मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। देखूँ!'' और कालर हटाकर उसने गरदन पर अपनी बर्फीली अँगुलियाँ रख दीं, ''लाइए, लोशन मल दूँ मैं!''

''धन्यवाद, धन्यवाद, इतना कष्ट न कीजिए। आपकी अँगुलियाँ गन्दी हो जाएँगी!'' कपूर ने बड़ी शालीनता से कहा।

पम्मी के होठों पर एक हल्की-सी मुस्कराहट, आँखों में हल्की-सी लाज और वक्ष में एक हल्का-सा कम्पन दौड़ गया। यह वाक्य कपूर ने चाहे शरारत में ही कहा हो, लेकिन कहा इतने शान्त और संयत स्वरों में कि पम्मी कुछ प्रतिवाद भी न कर सकी और फिर छह बरस से साठ बरस तक की कौन ऐसी स्त्री है, जो अपने रुप की प्रशंसा पर बेहोश न हो जाए।

''अच्छा लाइए, वह स्पीच कहाँ है, जो मुझे टाइप करनी है।'' उसने विषय बदलते हुए कहा।

''यह लीजिए।'' कपूर ने दे दी।

''यह तो मुश्किल से तीन-चार घण्टे का काम है?'' और पम्मी स्पीच को उलट-पुलटकर देखने लगी।

''माफ कीजिएगा, अगर मैं कुछ व्यक्तिगत सवाल पूछूँ, क्या आप टाइपिस्ट हैं?'' कपूर ने बहुत शिष्टता से पूछा।

''जी नहीं!'' पम्मी ने उन्हीं कागजों पर नजर गड़ाते हुए कहा, ''मैंने कभी टाइपिंग और शार्टहैंड सीखी थी, और तब मैं सीनियर केम्ब्रिज पास करके यूनिवर्सिटी गयी थी। यूनिवर्सिटी मुझे छोड़नी पड़ी क्योंकि मैंने अपनी शादी कर ली।''

''अच्छा, आपके पति कहाँ हैं?''

''रावलपिंडी में, आर्मी में।''

''लेकिन फिर आप डिक्रूज क्यों लिखती हैं, और फिर मिस?''

''क्योंकि हम लोग अलग हो गये हैं।'' और स्पीच के कागज को फिर तह करती हुई बोली-

''मिस्टर कपूर, आप अविवाहित हैं?''

''जी हाँ?''

''और विवाह करने का इरादा तो नहीं रखते?''

''नहीं।''

''बहुत अच्छे। तब तो हम लोगों में निभ जाएगी। मैं शादी से बहुत नफरत करती हूँ। शादी अपने को दिया जाने वाला सबसे बड़ा धोखा है। देखिए, ये मेरे भाई हैं न, कैसे पीले और बीमार-से हैं। ये पहले बड़े तन्दुरुस्त और टेनिस में प्रान्त के अच्छे खिलाडियों में से थे। एक बिशप की दुबली-पतली भावुक लड़की से इन्होंने शादी कर ली, और उसे बेहद प्यार करते थे। सुबह-शाम, दोपहर, रात कभी उसे अलग नहीं होने देते थे। हनीमून के लिए उसे लेकर सीलोन गये थे। वह लड़की बहुत कलाप्रिय थी। बहुत अच्छा नाचती थी, बहुत अच्छा गाती थी और खुद गीत लिखती थी। यह गुलाब का बाग उसी ने बनवाया था और इन्हीं के बीच में दोनों बैठकर घंटों गुजार देते थे।

''कुछ दिनों बाद दोनों में झगड़ा हुआ। क्लब में बॉल डान्स था और उस दिन वह लड़की बहुत अच्छी लग रही थी। बहुत अच्छी। डान्स के वक्त इनका

ध्यान डान्स की तरफ कम था, अपनी पत्नी की तरफ ज्यादा। इन्होंने आवेश में उसकी अँगुलियाँ जोर से दबा दीं। वह चीख पड़ी और सभी इन लोगों की और देखकर हँस पड़े।

''वह घर आयी और बहुत बिगड़ी, बोली, 'आप नाच रहे थे या टेनिस का मैच खेल रहे थे, मेरा हाथ था या टेनिस का रैकट?' इस बात पर बर्टी भी बिगड़ गया, और उस दिन से जो इन लोगों में खटकी तो फिर कभी न बनी। धीरे-धीरे वह लड़की एक सार्जेंट को प्यार करने लगी। बर्टी को इतना सदमा हुआ कि वह बीमार पड़ गया। लेकिन बर्टी ने तलाक नहीं दिया, उस लड़की से कुछ कहा भी नहीं, और उस लड़की ने सार्जेंट से प्यार जारी रखा लेकिन बीमारी में बर्टी की बहुत सेवा की। बर्टी अच्छा हो गया। उसके बाद उसको एक बच्ची हुई और उसी में वह मर गयी। हालाँकि हम लोग सब जानते हैं कि वह बच्ची उस सार्जेंट की थी। लेकिन बर्टी को यकीन नहीं होता कि वह सार्जेंट को प्यार करती थी। वह कहता है, वह दूसरे को प्यार करती होती तो मेरी इतनी सेवा कैसे कर सकती थी भला!' उस बच्ची का नाम बर्टी ने रोज रखा। और उसे लेकर दिनभर उन्हीं गुलाब के पेड़ों के बीच में बैठा करता था जैसे अपनी पत्नी को लेकर बैठता था। दो साल बाद बच्ची को साँप ने काट लिया, वह मर गयी और तब से बर्टी का दिमाग ठीक नहीं रहता। खैर, जाने दीजिए। आइए, अपना काम शुरू करें। चलिए, अन्दर के स्टडी-रूम में चलें!''

''चलिए!'' चन्दर बोला। और पम्मी के पीछे-पीछे चल दिया। मकान बहुत बड़ा था और पुराने अँग्रेजों के ढंग पर सजा हुआ था। बाहर से जितना पुराना और गन्दा नजर आता था, अन्दर से उतना ही आलीशान और सुथरा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने की छाप थी अन्दर। यहाँ तक कि बिजली लगने के बावजूद अन्दर पुराने बड़े-बड़े हाथ से खींचे जाने वाले पंखे लगे थे। दो कमरों को पार कर वे लोग स्टडी-रूम में पहुँचे। बड़ा-सा कमरा जिसमें चारों तरफ आलमारियों में किताबें सजी हुई थीं। चार कोने में चार मेजें लगी हुई थीं जिनमें कुछ बस्ट और कुछ तस्वीरें स्टैंड के सहारे रखी हुई थीं। एक आलमारी में नीचे खाने में टाइपराइटर रखा था। पम्मी ने बिजली जला दी और टाइपराइटर खोलकर साफ करने लगी। चन्दर घूमकर किताबें देखने लगा। एक कोने में कुछ मराठी की किताबें रखी थीं। उसे बड़ा ताज्जुब हुआ-''अच्छा पम्मी, ओह, माफ कीजिएगा, मिस डिक्रूज...''

''नहीं, आप मुझे पम्मी पुकार सकते हैं। मुझे यही नाम अच्छा लगता है-हाँ, क्या पूछ रहे थे आप?''

''क्या आप मराठी भी जानती हैं?''

''नहीं, मैं तो नहीं, मेरी नानीजी जानती थीं। क्या आपको डॉक्टर शुक्ला ने हम लोगों के बारे में कुछ नहीं बताया?''

''नहीं!'' कपूर ने कहा।

''अच्छा! ताज्जुब है!'' पम्मी बोली, ''आपने ट्रेनाली डिक्रूज का नाम सुना है न?''

''हाँ हाँ, डिक्रूज जिन्होंने कौशाम्बी की खुदाई करवायी थी। वह तो बहुत बड़े पुरातत्ववेत्ता थे?'' कपूर ने कहा।

''हाँ, वही। वह मेरे सगे नाना थे। और वह अँग्रेज नहीं थे, मराठा थे और उन्होंने मेरी नानी से शादी की थी जो एक कश्मीरी ईसाई महिला थीं। उनके कारण भारत में उन्हें ईसाइयत अपनानी पड़ी। यह मेरे नाना का ही मकान है और अब हम लोगों को मिल गया है। डॉ. शुक्ला के दोस्त मिस्टर श्रीवास्तव बैरिस्टर हैं न, वे हमारे खानदान के ऐटर्नी थे। उन्होंने और डॉ. शुक्ला ने ही यह जायदाद हमें दिलवायी। लीजिए, मशीन तो ठीक हो गयी।'' उसने टाइपराइटर में कार्बन और कागज लगाकर कहा, ''लाइए निबन्ध!''

इसके बाद घंटे-भर तक टाइपराइटर रुका नहीं। कपूर ने देखा कि यह लड़की जो व्यवहार में इतनी सरल और स्पष्ट है, फैशन में इतनी नाजुक और शौकीन है, काम करने में उतनी ही मेहनती और तेज भी है। उसकी अँगुलियाँ मशीन की तरह चल रही थीं। और तेज इतनी कि एक घंटे में उसने लगभग आधी पांडुलिपि टाइप कर डाली थी। ठीक एक घण्टे के बाद उसने टाइपराइटर बन्द कर दिया, बगल में बैठे हुए कपूर की और झुककर कहा, ''अब थोड़ी देर आराम।'' और अपनी अँगुलियाँ चटखाने के बाद वह कुरसी खिसकाकर उठी और एक भरपूर अँगड़ाई ली। उसका अंग-अंग धनुष की तरह झुक गया। उसके बाद कपूर के कन्धे पर बेतकल्लुफी से हाथ रखकर बोली, ''क्यों, एक प्याला चाय मँगवायी जाय?''

''मैं तो पी चुका हूँ।''

''लेकिन मुझसे तो काम होने से रहा अब बिना चाय के।'' पम्मी एक अल्हड़ बच्ची की तरह बोली, और अन्दर चली गयी। कपूर ने टाइप किये हुए कागज उठाये और कलम निकालकर उनकी गलतियाँ सुधारने लगा। चाय पीकर

थोड़ी देर में पम्मी वापस आयी और बैठ गयी। उसने एक सिगरेट केस कपूर के सामने किया।

''धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता।''

''अच्छा, ताज्जुब है, आपकी इजाजत हो तो मैं सिगरेट पी लूँ!''

''क्या आप सिगरेट पीती हैं? छिह, पता नहीं क्यों औरतों का सिगरेट पीना मुझे बहुत ही नासपन्द है।''

''मेरी तो मजबूरी है मिस्टर कपूर, मैं यहाँ के समाज में मिलती-जुलती नहीं, अपने विवाह और अपने तलाक के बाद मुझे ऐंग्लो-इंडियन समाज से नफरत हो गयी है। मैं अपने दिल से हिन्दुस्तानी हूँ। लेकिन हिन्दुस्तानियों से घुलना-मिलना हमारे लिए सम्भव नहीं। घर में अकेले रहती हूँ। सिगरेट और चाय से तबीयत बदल जाती है। किताबों का मुझे शौक नहीं।''

''तलाक के बाद आपने पढ़ाई जारी क्यों नहीं रखी?'' कपूर ने पूछा।

''मैंने कहा न, कि किताबों का मुझे शौक नहीं बिल्कुल!'' पम्मी बोली। ''और मैं अपने को आदमियों में घुलने-मिलने के लायक नहीं पाती। तलाक के बाद साल-भर तक मैं अपने घर में बन्द रही। मैं और बर्टी। सिर्फ बर्टी से बात करने का मौका मिला। बर्टी मेरा भाई, वह भी बीमार और बूढ़ा। कहीं कोई तकल्लुफ की गुंजाइश नहीं। अब मैं हरेक से बेतकल्लुफी से बात करती हूँ तो कुछ लोग मुझ पर हँसते हैं, कुछ लोग मुझे सभ्य समाज के लायक नहीं समझते, कुछ लोग उसका गलत मतलब निकालते हैं। इसलिए मैंने अपने को अपने बँगले में ही कैद कर लिया है। अब आप ही हैं, आज पहली बार मैंने देखा आपको। मैं समझी ही नहीं कि आपसे कितना दुराव रखना चाहिए। अगर आप भलेमानस न हों तो आप इसका गलत मतलब निकाल सकते हैं।''

''अगर यही बात हो तो...'' कपूर हँसकर बोला, ''सम्भव है कि मैं भलेमानस बनने के बजाय गलत मतलब निकालना ज्यादा पसन्द करूँ।''

''तो सम्भव है मैं मजबूर होकर आपसे भी न मिलूँ!'' पम्मी गम्भीरता से बोली।

''नहीं, मिस डिक्रूज...''

''नहीं, आप पम्मी कहिए, डिक्रूज नहीं!''

''पम्मी सही, आप गलत न समझें, मैं मजाक कर रहा था।'' कपूर बोला। उसने इतनी देर में समझ लिया था कि यह साधारण ईसाई छोकरी नहीं है।

इतने में बर्टी लड़खड़ाता हुआ, हाथ में धूल सना खुरपा लिये आया और चुपचाप खड़ा हो गया और अपनी धुँधली पीली आँखों से एकटक कपूर को देखने लगा। कपूर ने एक कुरसी खिसका दी और कहा, ''आइए!'' पम्मी उठी और बर्टी के कन्धे पर एक हाथ रखकर उसे सहारा देकर कुरसी पर बिठा दिया। बर्टी बैठ गया और आँखें बन्द कर लीं। उसका बीमार कमजोर व्यक्तित्व जाने कैसा लगता था कि पम्मी और कपूर दोनों चुप हो गये। थोड़ी देर बाद बर्टी ने आँखें खोलीं और बहुत करुण स्वर में बोला, ''पम्मी, तुम नाराज हो, मैंने जान-बूझकर तुम्हारे मित्र का अपमान नहीं किया था?''

''अरे नहीं!'' पम्मी ने उठकर बर्टी का माथा सहलाते हुए कहा, ''मैं तो भूल गयी और कपूर भी भूल गये?''

''अच्छा, धन्यवाद! पम्मी, अपना हाथ इधर लाओ!'' और वह पम्मी के हाथ पर सिर रखकर पड़ रहा और बोला, ''मैं कितना अभागा हूँ! कितना अभागा! अच्छा पम्मी, कल रात को तुमने सुना था, वह आयी थी और पूछ रही थी, बर्टी तुम्हारी तबीयत अब ठीक है, मैंने झट अपनी आँखें ढँक लीं कि कहीं आँखों का पीलापन देख न ले। मैंने कहा, तबीयत अब ठीक है, मैं अच्छा हूँ तो उठी और जाने लगी। मैंने पूछा, कहाँ चली, तो बोली सार्जेंट के साथ जरा क्लब जा रही हूँ। तुमने सुना था पम्मी?''

कपूर स्तब्ध-सा उन दोनों की और देख रहा था। पम्मी ने कपूर को आँख का इशारा करते हुए कहा, ''हाँ, हमसे मिली थी वह, लेकिन बर्टी, वह सार्जेंट के साथ नहीं गयी थी!''

''हाँ, तब?'' बर्टी की आँखें चमक उठीं और उसने उल्लास-भरे स्वर में पूछा।

''वह बोली, बर्टी के ये गुलाब सार्जेंट से ज्यादा प्यारे हैं।'' पम्मी बोली।

''अच्छा!'' मुसकराहट से बर्टी का चेहरा खिल उठा, उसकी पीली-पीली आँखें और धँस गयीं और दाँत बाहर झलकने लगे, ''हूँ! क्या कहा उसने, फिर तो कहो!''

उसने कहा, ''ये गुलाब सार्जेंट से ज्यादा प्यारे हैं, फिर इन्हीं गुलाबों पर नाचती रही और सुबह होते ही इन्हीं फूलों में छिप गयी! तुम्हें सुबह किसी फूल में तो नहीं मिली?''

''उहूँ, तुम्हें तो किसी फूल में नहीं मिली?'' बर्टी ने बच्चों के-से भोले विश्वास के स्वरों में कपूर से पूछा।

चन्दर चौंक उठा। पम्मी और बर्टी की इन बातों पर उसका मन बेहद भर आया था। बर्टी की मुसकराहट पर उसकी नसें थरथरा उठी थीं।

''नहीं, मैंने तो नहीं देखा था।'' चन्दर ने कहा।

बर्टी ने फिर मायूसी से सिर झुका लिया और आँखें बन्द कर लीं और कराहती हुई आवाज में बोला, ''जिस फूल में वह छिप गयी थी, उसी को किसी ने चुरा लिया होगा!'' फिर सहसा वह तनकर खड़ा हो गया और पुचकारते हुए बोला, ''जाने कौन ये फूल चुराता है! अगर मुझे एक बार मिल जाए तो मैं उसका खून ऐसे पी लूँ!'' उसने हाथ की अँगुली काटते हुए कहा और उठकर लड़खड़ाता हुआ चला गया।

वातावरण इतना भारी हो गया था कि फिर पम्मी और कपूर ने कोई बातें नहीं कीं। पम्मी ने चुपचाप टाइप करना शुरू किया और कपूर चुपचाप बर्टी की बातें सोचता रहा। घंटा-भर बाद टाइपराइटर खामोश हुआ तो कपूर ने कहा-

''पम्मी, मैंने जितने लोग देखे हैं उनमें शायद बर्टी सबसे विचित्र है और शायद सबसे दयनीय!''

पम्मी खामोश रही। फिर उसी लापरवाही से अँगड़ाई लेते हुए बोली, ''मुझे बर्टी की बातों पर जरा भी दया नहीं आती। मैं उसको दिलासा देती हूँ क्योंकि वह मेरा भाई है और बच्चे की तरह नासमझ और लाचार है।''

कपूर चौंक गया। वह पम्मी की और आश्चर्य से चुपचाप देखता रहा। कुछ बोला नहीं।

''क्यों, तुम्हें ताज्जुब क्यों होता है?'' पम्मी ने कुछ मुसकराकर कहा, ''लेकिन मैं सच कहती हूँ''-वह बहुत गम्भीर हो गयी, ''मुझे जरा तरस नहीं आता इस पागलपन पर।'' क्षण-भर चुप रही, फिर जैसे बहुत ही तेजी से बोली, ''तुम जानते हो उसके फूल कौन चुराता है? मैं, मैं उसके फूल तोड़कर फेंक देती हूँ। मुझे शादी से नफरत है, शादी के बाद होने वाली आपसी धोखेबाजी से नफरत है, और उस धोखेबाजी के बाद इस झूठमूठ की यादगार और बेईमानी के पागलपन से नफरत है। और ये गुलाब के फूल, ये क्यों मूल्यवान हैं, इसलिए न कि इसके साथ बर्टी की जिंदगी की इतनी बड़ी ट्रेजेडी गुँथी हुई है। अगर एक फूल के खूबसूरत होने के लिए आदमी की जिंदगी में इतनी बड़ी ट्रेजेडी आना जरूरी है तो लानत है उस फूल की खूबसूरती पर! मैं उससे नफरत करती हूँ। इसीलिए मैं किताबों से नफरत करती हूँ। एक कहानी लिखने के लिए कितनी कहानियों की ट्रेजेडी बर्दाश्त करनी होती है।''

पम्मी चुप हो गयी। उसका चेहरा सुर्ख हो गया था। थोड़ी देर बाद उसका तैश उतर गया और वह अपने आवेश पर खुद शरमा गयी। उठकर वह कपूर के पास गयी और उसके कन्धों पर हाथ रखकर बोली, ''बर्टी से मत कहना, अच्छा?''

कपूर ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी और कागज समेटकर खड़ा हुआ। पम्मी ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर उसे अपनी और घुमाकर कहा, ''देखो, पिछले चार साल से मैं अकेली थी, और किसी दोस्त का इन्तजार कर रही थी, तुम आये और दोस्त बन गये। तो अब अक्सर आना, ऐं?''

''अच्छा!'' कपूर ने गम्भीरता से कहा।

''डॉ. शुक्ला से मेरा अभिवादन कहना, कभी यहाँ जरूर आएँ।''

''आप कभी चलिए, वहाँ उनकी लड़की है। आप उससे मिलकर खुश होंगी।''

पम्मी उसके साथ फाटक तक पहुँचाने चली तो देखा बर्टी एक चमेली के झाड़ में टहनियाँ हटा-हटाकर कुछ ढूँढ़ रहा था। पम्मी को देखकर पूछा उसने-''तुम्हें याद है, वह चमेली के झाड़ में तो नहीं छिपी थी?'' कपूर ने पता नहीं क्यों जल्दी पम्मी को अभिवादन किया और चल दिया। उसे बर्टी को देखकर डर लगता था।

सुधा का कॉलेज बड़ा एकान्त और खूबसूरत जगह बना हुआ था। दोनों और ऊँची-सी मेड़ और बीच में से कंकड़ की एक खूबसूरत घुमावदार सड़क। दायीं और चने और गेहूँ के खेत, बेर और शहतूत के झाड़ और बायीं और ऊँचे-ऊँचे टीले और ताड़ के लम्बे-लम्बे पेड़। शहर से काफी बाहर देहात का-सा नजारा और इतना शान्त वातावरण लगता था कि यहाँ कोई उथल-पुथल, कोई शोरगुल है ही नहीं। जगह इतनी हरी-भरी कि दर्जों के कमरों के पीछे ही महुआ चूता था और लम्बी-लम्बी घास की दुपहरिया के नीले फूलों की जंगली लतरें उलझी रहती थीं।

और इस वातावरण ने अगर किसी पर सबसे ज्यादा प्रभाव डाला था तो वह थी गेसू। उसे अच्छी तरह मालूम था कि बाँस के झाड़ के पीछे किस चीज के फूल हैं। पुराने पीपल पर गिलोय की लतर चढ़ी है और करौंदे के झाड़ के पीछे एक साही की माँद है। नागफनी की झाड़ी के पास एक बार उसने एक लोमड़ी भी देखी थी। शहर के एक मशहूर रईस साबिर हुसैन काजमी की वह सबसे बड़ी लड़की थी। उसकी माँ, जिन्हें उसके पिता अदन से ब्याह कर लाये

थे, शहर की मशहूर शायरा थीं। हालाँकि उनका दीवान छपकर मशहूर हो चुका था, मगर वह किसी भी बाहरी आदमी से कभी नहीं मिलती-जुलती थीं, उनकी सारी दुनिया अपने पति और अपने बच्चों तक सीमित थी। उन्हें शायराना नाम रखने का बहुत शौक था। अपनी दोनों लड़कियों का नाम उन्होंने गेसू और फूल रखा था और अपने छोटे बच्चे का नाम हसरत। हाँ, अपने पतिदेव साबिर साहब के हुक्के से बेहद चिढ़ती थीं और उनका नाम उन्होंने रखा था, 'आतिश-फिजाँ।'

घास, फूल, लतर और शायरी का शौक गेसू ने अपनी माँ से विरासत में पाया था। किस्मत से उसका कॉलेज भी ऐसा मिला जिसमें दर्जों की खिड़कियों से आम की शाखें झाँका करती थीं इसलिए हमेशा जब कभी मौका मिलता था, क्लास से भाग कर गेसू घास पर लेटकर सपने देखने की आदी हो गयी थी। क्लास के इस महाभिनिष्क्रमण और उसके बाद लतरों की छाँह में जाकर ध्यान-योग की साधना में उसकी एकमात्र साथिन थी सुधा। आम की घनी छाँह में हरी-हरी दूब में दोनों सिर के नीचे हाथ रखकर लेट रहतीं और दुनिया-भर की बातें करतीं। बातों में छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी किस तरह की बातें करती थीं, यह वही समझ सकता है जिसने कभी दो अभिन्न सहेलियों की एकान्त वार्ता सुनी हो। गालिब की शायरी से लेकर, उनके छोटे भाई हसरत ने एक कुत्ते का पिल्ला पाला है, यह गेसू सुनाया करती थी और शरत के उपन्यासों से लेकर यह कि उसकी मालिन ने गिलट का कड़ा बनवाया है, यह सुधा बताया करती थी। दोनों अपने-अपने मन की बातें एक-दूसरे को बता डालती थीं और जितना भावुक, प्यारा, अनजान और सुकुमार दोनों का मन था, उतनी ही भावुक और सुकुमार दोनों की बातें। हाँ भावुक, सुकुमार दोनों ही थीं, लेकिन दोनों में एक अन्तर था। गेसू शायर होते हुए भी इस दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पनालोक की थी। गेसू अगर झाड़ियों में से कुछ फूल चुनती तो उन्हें सूँघती, उन्हें अपनी चोटी में सजाती और उन पर चन्द शेश्र कहने के बाद भी उन्हें माला में पिरोकर अपनी कलाई में लपेट लेती। सुधा लतरों के बीच में सिर रखकर लेट जाती और निर्निमेष पलकों से फूलों को देखती रहती और आँखों से न जाने क्या पीकर उन्हें उन्हीं की डालों पर फूलता हुआ छोड़ देती। गेसू हर चीज का उचित इस्तेमाल जानती थी, किसी भी चीज को पसन्द करने या प्यार करने के बाद अब उसका क्या उपयोग है, क्रियात्मक यथार्थ जीवन में उसका क्या स्थान है, यह गेसू खूब समझती थी। लेकिन सुधा किसी भी फूल के जादू में बँध जाना चाहती थी, उसी की कल्पना में डूब जाना जानती थी,

लेकिन उसके बाद सुधा को कुछ नहीं मालूम था। गेसू की कल्पना और भावुक सूक्ष्मता शायरी में व्यक्त हो जाती थी, अतः उसकी जिंदगी में काफी व्यावहारिकता और यथार्थ था, लेकिन सुधा, जो शायरी लिख नहीं सकती थी, अपने स्वभाव और गठन में खुद ही एक मासूम शायरी बन गयी थी। वह भी पिछले दो सालों में तो सचमुच ही इतनी गम्भीर, सुकुमार और भावनामयी बन गयी थी कि लगता था कि सूर के गीतों से उसके व्यक्तित्व के रेशे बुन गये हैं।

लड़कियाँ, गेसू और सुधा के इस स्वभाव और उनकी अभिन्नता से वाकिफ थीं। और इसलिए जब आज सुधा की मोटर आकर सायबान में रुकी और उसमें से सुधा और गेसू हाथ में फाइल लिये उतरीं तो कामिनी ने हँसकर प्रभा से कहा, ''लो, चन्दा-सूरज की जोड़ी आ गयी!'' सुधा ने सुन लिया। मुसकराकर गेसू की और फिर कामिनी और प्रभा की और देखकर हँस दी। सुधा बहुत कम बोलती थी, लेकिन उसकी हँसी ने उसे खुशमिजाज साबित कर रखा था और वह सभी की प्यारी थी। प्रभा ने आकर सुधा के गले में बाँह डालकर कहा, ''गेसू बानो, थोड़ी देर के लिए सुधारानी को हमें दे दो। जरा कल के नोट्स उतारने हैं इनसे पूछकर।''

गेसू हँसकर बोली, ''उसके पापा से तय कर ले, फिर तू जिंदगी भर सुधा को पाल-पोस, मुझे क्या करना है।''

जब सुधा प्रभा के साथ चली गयी तो गेसू ने कामिनी के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, ''कम्मो रानी, अब तो तुम्हीं हमारे हिस्से में पड़ी, आओ। चलो, देखें लता में कुन्दरू हैं?''

''कुन्दरू तो नहीं, अब चने का खेत हरिया आया है।'' कम्मो बोली।

गृह-विज्ञान का पीरियड था और मिस उमालकर पढ़ा रही थीं। बीच की कतार की एक बेंच पर कामिनी, प्रभा, गेसू और सुधा बैठी थीं। हिस्सा बाँट अभी तक कायम था, अतः कामिनी के बगल में गेसू, गेसू के बगल में प्रभा और प्रभा के बाद बेंच के कोने पर सुधा बैठी थी। मिस उमालकर रोगियों के खान-पान के बारे में समझा रही थीं। मेज के बगल में खड़ी हुई, हाथ में एक किताब लिये हुए, उसी पर निगाह लगाये वह बोलती जा रही थीं। शायद अँगरेजी की किताब में जो कुछ लिखा हुआ था, उसी का हिन्दी में उल्था करते हुए बोलती जा रही थीं, ''आलू एक नुकसानदेह तरकारी है, रोग की हालत में। वह खुश्क होता है, गरम होता है और हजम मुश्किल से होता है।..।''

सहसा गेसू ने एकदम बीच से पूछा, ''गुरुजी, गाँधी जी आलू खाते हैं या नहीं?'' सभी हँस पड़े।

मिस उमालकर ने बहुत गुस्से से गेसू की और देखा और डाँटकर कहा, ''व्हाइ टॉक ऑव गाँधी? आई वाण्ट नो पोलिटिकल डिस्क्शन इन क्लास। (गाँधी से क्या मतलब? मैं दर्जे में राजनीतिक बहस नहीं चाहती।)'' इस पर तो सभी लड़कियों की दबी हुई हँसी फूट पड़ी। मिस उमालकर झल्ला गयीं और मेज पर किताब पटकते हुए बोलीं, ''साइलेन्स (खामोश)!'' सभी चुप हो गये। उन्होंने फिर पढ़ाना शुरू किया।

''जिगर के रोगियों के लिए हरी तरकारियाँ बहुत फायदेमन्द होती हैं। लौकी, पालक और हर किस्म के हरे साग तन्दुरुस्ती के लिए बहुत फायदेमन्द होते हैं।''

सहसा प्रभा ने कुहनी मारकर गेसू से कहा, ''ले, फिर क्या है, निकाल चने का हरा साग, खा-खाकर मोटे हों मिस उमालकर के घंटे में!''

गेसू ने अपने कुरते की जेब से बहुत-सा साग निकालकर कामिनी और प्रभा को दिया।

मिस उमालकर अब शक्कर के हानि-लाभ बता रही थीं, ''लम्बे रोग के बाद रोगी को शक्कर कम देनी चाहिए। दूध या साबूदाने में ताड़ की मिश्री मिला सकते हैं। दूध तो ग्लूकोज के साथ बहुत स्वादिष्ट लगता है।''

इतने में जब तक सुधा के पास साग पहुँचा कि फौरन मिस उमालकर ने देख लिया। वह समझ गयीं, यह शरारत गेसू की होगी, ''मिस गेसू, बीमारी की हालत में दूध काहे के साथ स्वादिष्ट लगता है?''

इतने में सुधा के मुँह से निकला, ''साग काहे के साथ खाएँ?'' और गेसू ने कहा, ''नमक के साथ!''

''हूँ? नमक के साथ?'' मिस उमालकर ने कहा, ''बीमारी में दूध नमक के साथ अच्छा लगता है। खड़ी हो! कहाँ था ध्यान तुम्हारा?''

गेसू सन्न। मिस उमालकर का चेहरा मारे गुस्से के लाल हो रहा था।

''क्या बात कर रही थीं तुम और सुधा?''

गेसू सन्न!

''अच्छा, तुम लोग क्लास के बाहर जाओ, और आज हम तुम्हारे गार्जियन को खत भेजेंगे। चलो, जाओ बाहर।''

सुधा ने कुछ मुसकराते हुए प्रभा की और देखा और प्रभा हँस दी। गेसू ने देखा कि मिस उमालकर का पारा और भी चढने वाला है तो वह चुपचाप किताब उठाकर चल दी। सुधा भी पीछे-पीछे चल दी। कामिनी ने कहा, ''खत-वत भेजती रहना, सुधा!'' और क्लास ठठाकर हँस पड़ी। मिस उमालकर गुस्से से नीली पड़ गयीं, ''क्लास अब खत्म होगी।'' और रजिस्टर उठाकर चल दीं। गेसू अभी अन्दर ही थी कि वह बाहर चली गयीं और उनके जरा दूर पहुँचते ही गेसू ने बड़ी अदा से कहा, ''बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले!'' और सारी क्लास फिर हँसी से गूँज उठी। लड़कियाँ चिड़ियों की तरह फुर्र हो गयीं और थोड़ी ही देर में सुधा और गेसू बैडमिंटन फील्ड के पास वाले छतनार पाकड़ के नीचे लेटी हुई थीं।

बड़ी खुशनुमा दोपहरी थी। खुशबू से लदे हल्के-हल्के झोंके गेसू की ओढ़नी और गरारे की सिलवटों से आँखमिचौली खेल रहे थे। आसमान में कुछ हल्के रुपहले बादल उड़ रहे थे और जमीन पर बादलों की साँवली छायाएँ दौड़ रही थीं। घास के लम्बे-चौड़े मैदान पर बादलों की छायाओं का खेल बड़ा मासूम लग रहा था। जितनी दूर तक छाँह रहती थी, उतनी दूर तक घास का रंग गहरा काही हो जाता था, और जहाँ-जहाँ बादलों से छनकर धूप बरसने लगती थी वहाँ-वहाँ घास सुनहरे धानी रंग की हो जाती थी। दूर कहीं पर पानी बरसा था और बादल हल्के होकर खरगोश के मासूम स्वच्छन्द बच्चों की तरह दौड़ रहे थे। सुधा आँखों पर फाइल की छाँह किये हुए बादलों की और एकटक देख रही थी। गेसू ने उसकी और करवट बदली और उसकी वेणी में लगे हुए रेशमी फीते को उँगली में उमेठते हुए एक लम्बी-सी साँस भरकर कहा-

बादशाहों की मुअत्तर ख्वाबगाहों में कहाँ,
वह मजा जो भीगी-भीगी घास पर सोने में है,
मुतमइन बेफिक्र लोगों की हँसी में भी कहाँ,
लुत्फ जो एक-दूसरे को देखकर रोने में है।

सुधा ने बादलों से अपनी निगाह नहीं हटायी, बस एक करुण सपनीली मुसकराहट बिखेरकर रह गयी।

क्या देख रही है, सुधा?'' गेसू ने पूछा।

''बादलों को देख रही हूँ।'' सुधा ने बेहोश आवाज में जवाब दिया। गेसू उठी और सुधा की छाती पर सिर रखकर बोली-

कैफ बरदोश, बादलों को न देख,
बेखबर, तू न कुचल जाय कहीं!

और सुधा के गाल में जोर की चुटकी काट ली। ''हाय रे!'' सुधा ने चीखकर कहा और उठ बैठी, ''वाह वाह! कितना अच्छा शेर है! किसका है?''

''पता नहीं किसका है।'' गेसू बोली, ''लेकिन बहुत सच है सुधी, आस्माँ के बादलों के दामन में अपने ख्वाब टाँक लेना और उनके सहारे जिंदगी बसर करने का खयाल है तो बड़ा नाजुक, मगर रानी बड़ा खतरनाक भी है। आदमी बड़ी ठोकरें खाता है। इससे तो अच्छा है कि आदमी को नाजुकखयाली से साबिका ही न पड़े। खाते-पीते, हँसते-बोलते आदमी की जिंदगी कट जाए।''

सुधा ने अपना आँचल ठीक किया, और लटों में से घास के तिनके निकालते हुए कहा, ''गेसू, अगर हम लोगों को भी शादी-ब्याह के झंझट में न फँसना पड़े और इसी तरह दिन कटते जाएँ तो कितना मजा आए। हँसते-बोलते, पढ़ते-लिखते, घास में लेटकर बादलों से प्यार करते हुए कितना अच्छा लगता है, लेकिन हम लड़कियों की जिंदगी भी क्या! मैं तो सोचती हूँ गेसू, कभी ब्याह ही न करूँ। हमारे पापा का ध्यान कौन रखेगा?''

गेसू थोड़ी देर तक सुधा की आँखों में आँखें डालकर शरारत-भरी निगाहों से देखती रही और मुसकराकर बोली, ''अरे, अब ऐसी भोली नहीं हो रानी तुम! ये शबाब, ये उठान और ब्याह नहीं करेंगी, जोगन बनेंगी।''

''अच्छा, चल हट बेशरम कहीं की, खुद ब्याह करने की ठान चुकी है तो दुनिया-भर को क्यों तोहमत लगाती है!''

''मैं तो ठान ही चुकी हूँ, मेरा क्या! फ्रिक तो तुम लोगों की है कि ब्याह नहीं होता तो लेटकर बादल देखती हैं।'' गेसू ने मचलते हुए कहा।

''अच्छा अच्छा,'' गेसू की ओढ़नी खींचकर सिर के नीचे रखकर सुधा ने कहा, ''क्या हाल है तेरे अख्तर मियाँ का? मँगनी कब होगी तेरी?''

''मँगनी क्या, किसी भी दिन हो जाय, बस फूफीजान के यहाँ आने-भर की कसर है। वैसे अम्मी तो फूल की बात उनसे चला रही थीं, पर उन्होंने मेरे लिए इरादा जाहिर किया। बड़े अच्छे हैं, आते हैं तो घर-भर में रोशनी छा जाती है।'' गेसू ने बहुत भोलेपन से गोद में सुधा का हाथ रखकर उसकी उँगलियाँ चिटकाते हुए कहा।

''वे तो तेरे चचाजाद भाई हैं न? तुझसे तो पहले उनसे बोल-चाल रही होगी।'' सुधा ने पूछा।

"हाँ-हाँ, खूब अच्छी तरह से। मौलवी साहब हम लोगों को साथ-साथ पढ़ाते थे और जब हम दोनों सबक भूल जाते थे तो एक-दूसरे का कान पकड़कर साथ-साथ उठते-बैठते थे।'' गेसू कुछ झेंपते हुए बोली।

सुधा हँस पड़ी, ''वाह रे! प्रेम की इतनी विचित्र शुरुआत मैंने कहीं नहीं सुनी थी। तब तो तुम लोग एक-दूसरे का कान पकडने के लिए अपने-आप सबक भूल जाते होंगे?''

''नहीं जी, एक बार फिर पढकर कौन सबक भूलता है और एक बार सबक याद होने के बाद जानती हो इश्क में क्या होता है-

मकतबे इश्क में इक ढंग निराला देखा,
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ

''खैर, यह सब बात जाने दे सुधा, अब तू कब ब्याह करेगी?''

''जल्दी ही करूँगी।'' सुधा बोली।

''किससे?''

''तुझसे।'' और दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

बादल हट गये थे और पाकड़ की छाँह को चीरते हुए एक सुनहली रोशनी का तार झिलमिला उठा। हँसते वक्त गेसू के कान के टॉप चमक उठे और सुधा का ध्यान उधर खिंच गया। ''ये कब बनवाया तूने?''

''बनवाया नहीं।''

''तो उन्होंने दिये होंगे, क्यों?''

गेसू ने शरमाकर सिर हिला दिया।

सुधा ने उठकर हाथ से छूते हुए कहा, ''कितने सुन्दर कमल हैं! वाह! क्यों, गेसू! तूने सचमुच के कमल देखे हैं?''

''न।''

''मैंने देखे हैं।''

''कहाँ?''

''असल में पाँच-छह साल पहले तक तो मैं गाँव में रहती थी न! ऊँचाहार के पास एक गाँव में मेरी बुआ रहती हैं न, बचपन से मैं उन्हीं के पास रहती थी। पढ़ाई की शुरुआत मैंने वहीं की और सातवीं तक वहीं पढ़ी। तो वहाँ मेरे स्कूल के पीछे के पोखरे में बहुत-से कमल थे। रोज शाम को मैं भाग जाती थी और तालाब में घुसकर कमल तोड़ती और घर से बुआ एक लम्बा-सा सोंटा लेकर गालियाँ देती हुई आती थीं मुझे पकड़ने के लिए। जहाँ वह किनारे पर

पहुँचतीं तो मैं कहती, अभी डूब जाएँगे बुआ, अभी डूबे, तो बहुत रबड़ी-मलाई की लालच देकर वह मिन्नत करतीं-निकल आओ, तो मैं निकलती थी। तुमने तो कभी देखा नहीं होगा हमारी बुआ को?''

''न, तूने कभी दिखाया ही नहीं।''

''इधर बहुत दिनों से आयीं ही नहीं वे। आएँगी तो दिखाऊँगी तुझे। और उनकी एक लड़की है। बड़ी प्यारी, बहुत मजे की है। उसे देखकर तो तुम उसे बहुत प्यार करोगी। वो तो अब यहीं आने वाली है। अब यहीं पढ़ेगी।''

''किस दर्जे में पढ़ती है?''

''प्राइवेट विदुषी में बैठेगी इस साल। खूब गोल-मटोल और हँसमुख है।'' सुधा बोली।

इतने में घंटा बोला और गेसू ने सुधा के पैर के नीचे दबी हुई अपनी ओढ़नी खींची।

''अरे, अब आखिरी घंटे में जाकर क्या पढ़ोगी! हाजिरी कट ही गयी। अब बैठो यहीं बातचीत करें, आराम करें।'' सुधा ने अलसाये स्वर में कहा और खड़ी होकर एक मदमाती हुई अँगड़ाई ली-गेसू ने हाथ पकड़कर उसे बिठा लिया और बड़ी गम्भीरता से कहा, ''देखो, ऐसी अरसौहीं अँगड़ाई न लिया करो, इससे लोग समझ जाते हैं कि अब बचपन करवट बदल रहा है।''

''धत्'' बेहद झेंपकर और फाइल में मुँह छिपाकर सुधा बोली।

''लो, तुम मजाक समझती हो, एक शायर ने तुम्हारी अँगड़ाई के लिए कहा है-

कौन ये ले रहा है अँगड़ाई,
आसमानों को नींद आती है।''

''वाह!'' सुधा बोली, ''अच्छा गेसू, आज बहुत-से शेर सुनाओ।''

''सुनो-

इक रिदायेतीरगी है और खाबेकायनात
डूबते जाते हैं तारे, भीगती जाती है रात!''

''पहली लाइन के क्या मतलब हैं?'' सुधा ने पूछा।

''रिदायेतीरगी के माने हैं अँधेरे की चादर और खाबेकायनात के माने हैं जिंदगी का सपना-अब फिर सुनो शेर-

इक रिदायेतीरगी है और खाबेकायनात
डूबते जाते हैं तारे, भीगती जाती है रात!''

''वाह! कितना अच्छा है–अन्धकार की चादर है, जीवन का स्वप्न है, तारे डूबते जाते हैं, रात भीगती जाती है।..गेसू, उर्दू की शायरी बहुत अच्छी है।''

''तो तू खुद उर्दू क्यों नहीं पढ़ लेती?'' गेसू ने कहा।

''चाहती तो बहुत हूँ, पर निभ नहीं पाता!''

''किसी दिन शाम को आओ सुधा तो अम्मीजान से तुझे शेर सुनवाएँ। यह ले तेरी मोटर तो आ गयी।''

सुधा उठी, अपनी फाइल उठायी। गेसू ने अपनी ओढनी झाड़ी और आगे चली। पास आकर उचककर उसने प्रिंसिपल का रूम देखा। वह खाली था। उसने दाई को खबर दी और मोटर पर बैठ गयी।

गेसू बाहर खड़ी थी। ''चल तू भी न!''

''नहीं, मैं गाड़ी पर चली जाऊँगी।''

''अरे चलो, गाड़ी साढ़े चार बजे जाएगी। अभी घंटा–भर है। घर पर चाय पिएँगे, फिर मोटर पहुँचा देगी। जब तक पापा नहीं हैं, तब तक जितना चाहो कार घिसो!''

गेसू भी आ बैठी और कार चल दी।

दूसरे दिन जब चन्दर डॉ. शुक्ला के यहाँ निबन्ध की प्रतिलिपि लेकर पहुँचा तो आठ बज चुके थे। सात बजे तो चन्दर की नींद ही खुली थी और जल्दी से वह नहा–धोकर साइकिल दौड़ाता हुआ भागा था कि कहीं भाषण की प्रतिलिपि पहुँचने में देर न हो जाए।

जब वह बँगले पर पहुँचा तो धूप फैल चुकी थी। अब धूप भली नहीं मालूम देती थी, धूप की तेजी बर्दाश्त के बाहर होने लगी थी, लेकिन सुधा नीलकाँटे के ऊँचे–ऊँचे झाड़ों की छाँह में एक छोटी–सी कुरसी डाले बैठी थी। बगल में एक छोटी–सी मेज थी जिस पर कोई किताब खुली हुई रखी थी, हाथ में क्रोशिया थी और उँगलियाँ एक नाजुक तेजी से डोरे से उलझ–सुलझ रही थीं। हल्के बादामी रंग की इकलाई की लहराती हुई धोती, नारंगी और काली तिरछी धारियों का कलफ किया चुस्त ब्लाउज और एक कन्धे पर उभरा एक उसका पफ ऐसा लग रहा था जैसे कि बाँह पर कोई रंगीन तितली आकर बैठी हुई हो और उसका सिर्फ एक पंख उठा हो! अभी–अभी शायद नहाकर उठी थी क्योंकि शरद की खुशनुमा धूप की तरह हलके सुनहले बाल पीठ पर लहरा रहे थे। नीलकाँटे की टहनियाँ उनको सुनहली लहरें समझकर अठखेलियाँ कर रही थीं।

चन्दर की साइकिल जब अन्दर दिख पड़ी तो सुधा ने उधर देखा, लेकिन कुछ भी न कहकर फिर अपनी क्रोशिया बुनने में लग गयी। चन्दर सीधा पोर्टिको में गया और अपनी साइकिल रखकर भीतर चला गया डॉ. शुक्ला के पास। स्टडी-रूम में, बैठक में, सोने के कमरे में कहीं भी डॉ. शुक्ला नजर नहीं आये। हारकर वह बाहर आया तो देखा मोटर अभी गैरज में है। तो वे जा कहाँ सकते? और सुधा को तो देखिए! क्या अकड़ी हुई है आज, जैसे चन्दर को जानती ही नहीं। चन्दर सुधा के पास गया। सुधा का मुँह और भी लटक गया।

''डॉक्टर साहब कहाँ हैं?'' चन्दर ने पूछा।

''हमें क्या मालूम?'' सुधा ने क्रोशिया पर से बिना निगाह उठाये जवाब दिया।

''तो किसे मालूम होगा?'' चन्दर ने डाँटते हुए कहा, ''हर वक्त का मजाक हमें अच्छा नहीं लगता। काम की बात का उसी तरह जवाब देना चाहिए। उनके निबन्ध की लिपि देनी है या नहीं!''

''हाँ-हाँ, देनी है तो मैं क्या करूँ? नहा रहे होंगे। अभी कोई ये तो है नहीं कि तुम निबन्ध की लिपि लाये हो तो कोई नहाये-धोये न, बस सुबह से बैठा रहे कि अब निबन्ध आ रहा है, अब आ रहा है!'' सुधा ने मुँह बनाकर आँखें नचाते हुए कहा।

"तो सीधे क्यों नहीं कहती कि नहा रहे हैं।'' चन्दर ने सुधा के गुस्से पर हँसकर कहा। चन्दर की हँसी पर तो सुधा का मिजाज और भी बिगड़ गया और अपनी क्रोशिया उठाकर और किताब बगल में दबाकर, वह उठकर अन्दर चल दी। उसके उठते ही चन्दर आराम से उस कुरसी पर बैठ गया और मेज पर टाँग फैलाकर बोला- "आज मुझे बहुत गुस्सा चढ़ा है, खबरदार कोई बोलना मत!''

सुधा जाते-जाते मुड़कर खड़ी हो गयी।

''हमने कह दिया चन्दर एक बार कि हमें ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। जब देखो तुम चिढ़ाते रहते हो!'' सुधा ने गुस्से से कहा।

''नहीं! चिढ़ाएँगे नहीं तो पूजा करेंगे! तुम अपने मौके पर छोड़ देती हो!'' चन्दर ने उसी लापरवाही से कहा।

सुधा गयी नहीं। वहीं घास पर बैठ गयी और किताब खोलकर पढने लगी। जब पाँच मिनट तक वह कुछ नहीं बोली तो चन्दर ने सोचा आज बात कुछ गम्भीर है।

''सुधा!'' उसने बड़े दुलार से पुकारा। ''सुधा!''

सुधा ने कुछ नहीं कहा मगर दो बड़े-बड़े आँसू टप से नीचे किताब पर गिर गये।

''अरे क्या बात है सुधा, नहीं बताओगी?''

''कुछ नहीं।''

''बता दो, तुम्हैं हमारी कसम है।''

''कल शाम को तुम आये नहीं...'' सुधा रोनी आवाज में बोली।

''बस इस बात पर इतनी नाराज हो, पागल!''

''हाँ, इस बात पर इतनी नाराज हूँ! तुम आओ चाहे हजार बार न आओ। इस पर हम क्यों नाराज होंगे! बड़े कहीं के आये, नहीं आएँगे तो जैसे हमारा घर-बार नहीं है। अपने को जाने क्या समझ लिया है!'' सुधा ने चिढकर जवाब दिया।

''अरे तो तुम्हीं तो कह रही थी, भाई।'' चन्दर ने हँसकर कहा।

''तो बात पूरी भी सुनो। शाम को गेसू का नौकर आया था। उसके छोटे भाई हसरत की सालगिरह थी। सुबह 'कुरानखानी' होने वाली थी और उसकी माँ ने बुलाया था।''

''तो गयी क्यों नहीं?''

''गयी क्यों नहीं! किससे पूछकर जाती? आप तो इस वक्त आ रहे हैं जब सब खत्म हो गया!'' सुधा बोली।

''तो पापा से पूछ के चली जाती!'' चन्दर ने समझाकर कहा, ''और फिर गेसू के यहाँ तो यों अकसर जाती हो तुम!''

''तो? आज तो डान्स भी करने के लिए कहा था उसने। फिर बाद में तुम कहते, 'सुधा, तुम्हैं ये नहीं करना चाहिए, वो नहीं करना चाहिए। लड़कियों को ऐसे रहना चाहिए, वैसे रहना चाहिए।' और बैठ के उपदेश पिलाते और नाराज होते। बिना तुमसे पूछे हम कहीं सिनेमा, पिकनिक, जलसों में गये हैं कभी?'' और फिर आँसू टपक पड़े।

''पगली कहीं की! इतनी-सी बात पर रोना क्या? किसी के हाथ कुछ उपहार भेज दो और फिर किसी मौके पर चली जाना।''

''हाँ, चली जाना! तुम्हैं कहते क्या लगता है! गेसू ने कितना बुरा माना होगा!'' सुधा ने बिगड़ते हुए ही कहा। ''इम्तहान आ रहा है, फिर कब जाएँगे?''

''कब है इम्तहान तुम्हारा?''

''चाहे जब हो! मुझे पढ़ाने के लिए कहा किसी से?''

''अरे भूल गये! अच्छा, आज देखो कहैंगे!''

''कहैंगे-कहैंगे नहीं, आज दोपहर को आप बुला लाइए, वरना हम सब किताबों में लगाये देते हैं आग। समझे कि नहीं!''

''अच्छा-अच्छा, आज दोपहर को बुला लाएँगे। ठीक, अच्छा याद आया बिसरिया से कहूँगा तुम्हैं पढ़ाने के लिए। उसे रुपये की जरूरत भी है।'' चन्दर ने छुटकारे का कोई रास्ता न पाकर कहा।

''आज दोपहर को जरूर से।'' सुधा ने फिर आँखें नचाकर कहा। ''लो, पापा आ गये नहाकर, जाओ!''

चन्दर उठा और चल दिया। सुधा उठी और अन्दर चली गयी।

डॉ. शुक्ला हल्के-साँवले रंग के जरा स्थूलकाय-से थे। बहुत गम्भीर अध्ययन और अध्यापन और उम्र के साथ-साथ ही उनकी नम्रता और भी बढ़ती जा रही थी।

लेकिन वे लोगों से मिलते-जुलते कम थे। व्यक्तिगत दोस्ती उनकी किसी से नहीं थी। लेकिन उत्तर भारत के प्रमुख विद्वान् होने के नाते कान्फ्रेन्सों में, मौखिक परीक्षाओं में, सरकारी कमेटियों में वे बराबर बुलाये जाते थे और इसमें प्रमुख दिलचस्पी से हिस्सा लेते थे। ऐसी जगहों में चन्दर अक्सर उनका प्रमुख सहायक रहता था और इसी नाते चन्दर भी प्रान्त के बड़े-बड़े लोगों से परिचित हो गया था। जब वह एम. ए. पास हुआ था तब से फाइनेन्स विभाग में उसे कई बार ऊँचे-ऊँचे पदों का 'ऑफर' आ चुका था लेकिन डॉ. शुक्ला इसके खिलाफ थे। वे चाहते थे कि पहले वह रिसर्च पूरी कर ले। सम्भव हो तो विदेश हो आये, तब चाहे कुछ काम करे। अपने व्यक्तिगत जीवन में डॉ. शुक्ला अन्तर्विरोधों के व्यक्ति थे। पार्टियों में मुसलमानों और ईसाइयों के साथ खाने में उन्हें कोई एतराज नहीं था लेकिन कच्चा खाना वे चौके में आसन पर बैठकर, रेशमी धोती पहनकर खाते थे। सरकार को उन्होंने सलाह दी कि साधुओं और संन्यासियों को जबरदस्ती काम में लगाया जाए और मन्दिरों की जायदादें जब्त कर ली जाएँ, लेकिन सुबह घंटे-भर तक पूजा जरूर करते थे। पूजा-पाठ, खान-पान, जात-पाँत के पक्के हामी, लेकिन व्यक्तिगत जीवन में कभी यह नहीं जाना कि उनका कौन शिष्य ब्राह्मण है, कौन बनिया, कौन खत्री, कौन कायस्थ!

नहाकर वे आ रहे थे और दुर्गासप्तशती का कोई 'लोक गुनगुना रहे थे। कपूर को देखा तो रुक गये और बोले, ''हैलो, हो गया वह टाइप!''

''जी हाँ।''

''कहाँ कराया टाइप?''

''मिस डिक्रूज के यहाँ।''

''अच्छा! वह लड़की अच्छी है। अब तो बहुत बड़ी हुई होगी? अभी शादी नहीं हुई? मैंने तो सोचा वह मिले या न मिले!''

''नहीं, वह यहीं है। शादी हुई। फिर तलाक हो गया।''

''अरे! तो अकेले रहती है?''

''नहीं, अपने भाई के साथ है, बर्टी के साथ!''

''अच्छा! और बर्टी की पत्नी अच्छी तरह है?''

''वह मर गयी।''

''राम-राम, तब तो घर ही बदल गया होगा।''

''पापा, पूजा के लिए सब बिछा दिया है।'' सहसा सुधा बोली।

''अच्छा बेटी, अच्छा चन्दर, मैं पूजा कर आऊँ जल्दी से। तुम चाय पी चुके?''

''जी हाँ।''

''अच्छा तो मेरी मेज पर एक चार्ट है, जरा इसको ठीक तो कर दो तब तक। मैं अभी आया।''

चन्दर स्टडी-रूम में गया और मेज पर बैठ गया। कोट उतारकर उसने खूँटी पर टाँग दिया और नक्शा देखने लगा। पास में एक छोटी-सी चीनी की प्याली में चाइना इंक रखी थी और मेज पर पानी। उसने दो बूँद पानी डालकर चाइना इंक घिसनी शुरू की, इतने में सुधा कमरे में दाखिल, ''ऐ सुनो!'' उसने चारों और देखकर बड़े सशंकित स्वरों में कहा और फिर झुककर चन्दर के कान के पास मुँह लगाकर कहा, ''चावल की नानखटाई खाओगे?''

''ये क्या बला है?'' चन्दर ने इंक घिसते-घिसते पूछा।

''बड़ी अच्छी चीज होती है, पापा को बहुत अच्छी लगती है। आज हमने सुबह अपने हाथ से बनायी थी। ऐं, खाओगे?'' सुधा ने बड़े दुलार से पूछा।

''ले आओ।'' चन्दर ने कहा।

''ले आये हम, लो!'' और सुधा ने अपने आँचल में लिपटी हुई दो नानखटाई निकालकर मेज पर रख दी।

''अरे तश्तरी में क्यों नहीं लायी? सब धोती में घी लग गया। इतनी बड़ी हो गयी, शऊर नहीं जरा-सा।'' चन्दर ने बिगड़कर कहा।

''छिपा करके लाये हैं, फिर ये सकरी होती हैं कि नहीं? चौके के बाहर कैसे लाते! तुम्हारे लिये तो लाये हैं और तुम्हीं बिगड़ रहे हो। अन्धे को नोन दो, अन्धा कहे मेरी आँखें फोड़ीं।'' सुधा ने मुँह बनाकर कहा, ''खाना है कि नहीं?''

''हाथ में तो हमारे स्याही लगी है।'' चन्दर बोला।

''हम अपने हाथ से नहीं खिलाएँगे, हमारा हाथ जूठा हो जाएगा और राम राम! पता नहीं तुम रेस्तराँ में मुसलमान के हाथ का खाते होगे। थू-थू!''

चन्दर हँस पड़ा सुधा की इस बात पर और उसने पानी में हाथ डुबोकर बिना पूछे सुधा के आँचल में हाथ पोंछ दिये स्याही के और बेतकल्लुफी से नानखटाई उठाकर खाने लगा।

''बस, अब धोती का किनारा रंग दिया और यही पहनना है हमें दिनभर।'' सुधा ने बिगड़कर कहा।

''खुद नानखटाई छिपाकर लायी और घी लग गया तो कुछ नहीं और हमने स्याही पोंछ दी तो मुँह बिगड़ गया।'' चन्दर ने मैपिंग पेन में इंक लगाते हुए कहा।

''हाँ, अभी पापा देखें तो और बिगड़ें कि धोती में घी, स्याही सब लगाये रहती है। तुम्हें क्या?'' और उसने स्याही लगा हुआ छोर कसकर कमर में खोंस लिया।

''छिह, वही घी में तर छोर कमर में खोंस लिया। गन्दी कहीं की!'' चन्दर ने चार्ट की लाइनें ठीक करते हुए कहा।

''गन्दी हैं तो, तुमसे मतलब!'' और मुँह चिढ़ाते हुए सुधा कमरे से बाहर चली गयी।

चन्दर चुपचाप बैठा चार्ट दुरुस्त करता रहा। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिला-बलिया, आजमगढ़, बस्ती, बनारस आदि में बच्चों की मृत्यु-संख्या का ग्राफ बनाना था और एक और उनके नक्शे पर बिन्दुओं की एक सघनता से मृत्यु-संख्या का निर्देश करना था। चन्दर की एक आदत थी वह काम में लगता था तो भूत की तरह लगता था। फिर उसे दीन-दुनिया, किसी की खबर नहीं रहती थी। खाना-पीना, तन-बदन, किसी का होश नहीं रहता था। इसका एक कारण था। चन्दर उन लड़कों में से था जिनकी जिंदगी बाहर से बहुत हल्की-फुल्की होते हुए भी अन्दर से बहुत गम्भीर और अर्थमयी होती है, जिनके सामने एक स्पष्ट उद्देश्य, एक लक्ष्य होता है। बाहर से चाहे जैसे होने पर भी अपने आन्तरिक सत्य के प्रति घोर ईमानदारी यह इन लोगों की विशेषता होती है और सारी दुनिया के प्रति अगम्भीर और उच्छृंखल होने पर भी जो चीजें इनकी

लक्ष्यपरिधि में आ जाती हैं, उनके प्रति उनकी गम्भीरता, साधना और पूजा बन जाती है। इसलिए बाहर से इतना व्यक्तिवादी और सारी दुनिया के प्रति निरपेक्ष और लापरवाह दिख पड़ने पर भी वह अन्तरतम से समाज और युग और अपने आसपास के जीवन और व्यक्तियों के प्रति अपने को बेहद उत्तरदायी अनुभव करता था। वह देशभक्त भी था और शायद समाजवादी भी, पर अपने तरीके से। वह खद्दर नहीं पहनता था, कांग्रेस का सदस्य नहीं था, जेल नहीं गया था, फिर भी वह अपने देश को प्यार करता था। बेहद प्यार। उसकी देशभक्ति, उसका समाजवाद, सभी उसके अध्ययन और खोज में समा गया था। वह यह जानता था कि समाज के सभी स्तम्भों का स्थान अपना अलग होता है। अगर सभी मन्दिर के कंगूरे का फूल बनने की कोशिश करने लगें तो नींव की ईंट और सीढ़ी का पत्थर कौन बनेगा? और वह जानता था कि अर्थशास्त्र वह पत्थर है जिस पर समाज के सारे भवन का बोझ है। और उसने निश्चय किया था कि अपने देश, अपने युग के आर्थिक पहलू को वह खूब अच्छी तरह से अपने ढंग से विश्लेषण करके देखेगा और उसे आशा थी कि वह एक दिन ऐसा समाधान खोज निकालेगा कि मानव की बहुत-सी समस्याएँ हल हो जाएँगी और आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अगर आदमी खूँखार जानवर बन गया है तो एक दिन दुनिया उसकी एक आवाज पर देवता बन सकेगी। इसलिए जब वह बैठकर कानपुर की मिलों के मजदूरों के वेतन का चार्ट बनाता था, या उपयुक्त साधनों के अभाव में मर जाने वाली गरीब औरतों और बच्चों का लेखा-जोखा करता था तो उसके सामने अपना कैरियर, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी डिग्री का सपना नहीं होता था। उसके मन में उस वक्त वैसा सन्तोष होता था जो किसी पुजारी के मन में होता है, जब वह अपने देवता की अर्चना के लिए धूप, दीप, नैवेद्य सजाता है। बल्कि चन्दर थोड़ा भावुक था, एक बार तो जब चन्दर ने अपने रिसर्च के सिलसिले में यह पढ़ा कि अँगरेजों ने अपनी पूँजी लगाने और अपना व्यापार फैलाने के लिए किस तरह मुर्शिदाबाद से लेकर रोहतक तक हिन्दुस्तान के गरीब से गरीब और अमीर से अमीर बाशिन्दे को अमानुषिकता से लूटा, तब वह फूट-फूटकर रो पड़ा था लेकिन इसके बावजूद उसने राजनीति में कभी डूबकर हिस्सा नहीं लिया क्योंकि उसने देखा कि उसके जो भी मित्र राजनीति में गये, वे थोड़े दिन बाद बहुत प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा पा गये मगर आदमीयत खो बैठे।

अपने अर्थशास्त्र के बावजूद वह यह समझता था कि आदमी की जिंदगी सिर्फ आर्थिक पहलू तक सीमित नहीं और वह यह भी समझता था कि जीवन

को सुधारने के लिए सिर्फ आर्थिक ढाँचा बदल देने-भर की जरूरत नहीं है। उसके लिए आदमी का सुधार करना होगा, व्यक्ति का सुधार करना होगा। वरना एक भरे-पूरे और वैभवशाली समाज में भी आज के-से अस्वस्थ और पाशविक वृत्तियों वाले व्यक्ति रहेंगे तो दुनिया ऐसी ही लगेगी जैसे एक खूबसूरत सजा-सजाया महल जिसमें कीड़े और राक्षस रहते हों।

वह यह भी समझता था कि वह जिस तरह की दुनिया का सपना देखता, वह दुनिया आज किसी भी एक राजनीतिक क्रान्ति या किसी भी विशेष पार्टी की सहायता मात्र से नहीं बन सकती है। उसके लिए आदमी को अपने को बदलना होगा, किसी समाज को बदलने से काम नहीं चलेगा। इसलिए वह अपने व्यक्ति के संसार में निरन्तर लगा रहता था और समाज के आर्थिक पहलू को समझने की कोशिश करता रहता था। यही कारण है कि अपने जीवन में आने वाले व्यक्तियों के प्रति वह बेहद ईमानदार रहता था और अपने अध्ययन और काम के प्रति वह सचेत और जागरूक रहता था और वह अच्छी तरह समझता था कि इस तरह वह दुनिया को उस और बढ़ाने में थोड़ी-सी मदद कर रहा है। चूँकि अपने में भी वह सत्य की वही चिनगारी पाता था इसलिए कवि या दार्शनिक न होते हुए भी वह इतना भावुक, इतना दृढ़-चरित्र, इतना सशक्त और इतना गम्भीर था और काम तो अपना वह इस तरह करता था जैसे वह किसी की एकाग्र उपासना कर रहा हो। इसलिए जब वह चार्ट के नक्शे पर कलम चला रहा था तो उसे मालूम नहीं हुआ कि कितनी देर से डॉ. शुक्ला आकर उसके पीछे खड़े हो गये।

"वाह, नक्शे पर तो तुम्हारा हाथ बहुत अच्छा चलता है। बहुत अच्छा! अब उसे रहने दो। लाओ, देखें, तुम्हारा काम कैसा चल रहा है। आज तो इतवार है न?''

डॉ. शुक्ला पास की कुरसी पर बैठकर बोले, ''चन्दर! आजकल मैं एक किताब लिखने की सोच रहा हूँ। मैंने सोचा कि भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था का नये वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण किया जाए। तुम इसके बारे में क्या सोचते हो?''

"व्यर्थ है! जो व्यवस्था आज नहीं तो कल चूर-चूर होने जा रही है, उसके बारे में तूमार बाँधना और समय बरबाद करना बेकार है।'' चन्दर ने बहुत आत्मविश्वास से कहा।

"यही तो तुम लोगों में खराबी है। कुछ थोड़ी-सी खराबियाँ जाति-व्यवस्था की देख लीं और उसके खिलाफ हो गये। एक रिसर्च स्कॉलर का दृष्टिकोण ही दूसरा होना चाहिए। फिर हमारे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को तो बहुत ही सावधानी से समझने की आवश्यकता है। यह समझ लो कि मानव जाति दुर्बल नहीं है। अपने विकास-क्रम में वह उन्हीं संस्थाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं को रहने देती है, जो उसके अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक होती है। अगर वे आवश्यक न हुईं तो मानव उससे छुटकारा माँग लेता है। यह जाति-व्यवस्था जाने कितने सालों से हिन्दुस्तान में कायम है, क्या यही इस बात का प्रमाण नहीं कि यह बहुत सशक्त है, अपने में बहुत जरूरी है?''

"अरे हिन्दुस्तान की भली चलायी।'' चन्दर बोला, ''हिन्दुस्तान में तो गुलामी कितने दिनों से कायम है तो क्या वह भी जरूरी है।''

"बिल्कुल जरूरी है।'' डॉ. शुक्ला बोले, ''मुझे भी हिन्दुस्तान पर गर्व है। मैंने कभी कांग्रेस का काम किया, लेकिन मैं इसे नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जरा-सी आजादी अगर मिलती है हिन्दुस्तानियों को, तो वे उसका भरपूर दुरुपयोग करने से बाज नहीं आते और कभी भी ये लोग अच्छे शासक नहीं निकलेंगे।''

"अरे नहीं! ऐसी बात नहीं। हिन्दुस्तानियों को ऐसा बना दिया है अँगरेजों ने। वरना हिन्दुस्तान ने ही तो चन्द्रगुप्त और अशोक पैदा किये थे और रही जाति-व्यवस्था की बात तो मुझे तो स्पष्ट दिख रहा है कि जाति-व्यवस्था टूट रही है।'' कपूर बोला, ''रोटी-बेटी की कैद थी। रोटी की कैद तो करीब-करीब टूट गयी, अब बेटी की कैद भी... ब्याह-शादियाँ भी दो-एक पीढ़ी के बाद स्वच्छन्दता से होने लगेंगी।''

"अगर ऐसा होगा तो बहुत गलत होगा। इससे जातिगत पतन होता है। ब्याह-शादी को कम-से-कम मैं भावना की दृष्टि से नहीं देखता। यह एक सामाजिक तथ्य है और उसी दृष्टिकोण से हमें देखना चाहिए। शादी में सबसे बड़ी बात होती है सांस्कृतिक समानता। और जब अलग-अलग जाति में अलग-अलग रीति-रिवाज हैं तो एक जाति की लड़की दूसरी जाति में जाकर कभी भी अपने को ठीक से सन्तुलित नहीं कर सकती। और फिर एक बनिया की व्यापारिक प्रवृत्तियों की लड़की और एक ब्राह्मण का अध्ययन वृत्ति का लड़का, इनकी सन्तान न इधर विकास कर सकती है न उधर। यह तो सामाजिक व्यवस्था को व्यर्थ के लिए असन्तुलित करना हुआ।''

"हाँ, लेकिन विवाह को आप केवल समाज के दृष्टिकोण से क्यों देखते हैं? व्यक्ति के दृष्टिकोण से भी देखिए। अगर दो विभिन्न जाति के लड़के-लड़की अपना मानसिक सन्तुलन ज्यादा अच्छा कर सकते हैं तो क्यों न विवाह की इजाजत दी जाए!''

"ओह, एक व्यक्ति के सुझाव के लिए हम समाज को क्यों नुकसान पहुँचाएँ! और इसका क्या निश्चय कि विवाह के समय यदि दोनों में मानसिक सन्तुलन है तो विवाह के बाद भी रहेगा ही। मानसिक सन्तुलन और प्रेम जितना अपने मन पर आधारित होता है उतना ही बाहरी परिस्थितियों पर। क्या जाने ब्याह के वक्त की परिस्थिति का दोनों के मन पर कितना प्रभाव है और उसके बाद सन्तुलन रह पाता है या नहीं? और मैंने तो लव-मैरिजेज (प्रेम-विवाह) को असफल ही होते देखा है। बोलो है या नहीं?'' डॉ. शुक्ला ने कहा।

"हाँ, प्रेम-विवाह अकसर असफल होते हैं, लेकिन सम्भव है वह प्रेम न होता हो। जहाँ सच्चा प्रेम होगा वहाँ कभी असफल विवाह नहीं होंगे।'' चन्दर ने बहुत साहस करके कहा।

"ओह! ये सब साहित्य की बातें हैं। समाजशास्त्र की दृष्टि से या वैज्ञानिक दृष्टि से देखो! अच्छा खैर, अभी मैंने उसकी रुप-रेखा बनायी है। लिखूँगा तो तुम सुनते चलना। लाओ, वह निबन्ध कहाँ है!'' डॉ. शुक्ला बोले।

चन्दर ने उन्हें टाइप की हुई प्रतिलिपि दे दी। उलट-पुलटकर डॉ. शुक्ला ने देखा और कहा, ''ठीक है। अच्छा चन्दर, अपना काम इधर ठीक-ठीक कर लो, अगले इतवार को लखनऊ कॉन्फ्रेन्स में चलना है।''

"अच्छा! कार पर चलेंगे या ट्रेन से?''

"ट्रेन से। अच्छा।'' घड़ी देखते हुए उन्होंने कहा, ''अब जरा मैं काम से चल रहा हूँ। तुम यह चार्ट बना डालो और एक निबन्ध लिख डालना - 'पूर्वी जिलों में शिशु मृत्यु।' प्रान्त के स्वास्थ्य विभाग ने एक पुरस्कार घोषित किया है।''

डॉ. शुक्ला चले गये। चन्दर ने फिर चार्ट में हाथ लगाया।

चन्दर के जाने के जरा ही देर बाद पापा आये और खाने बैठे। सुधा ने रसोई की रेशमी धोती पहनी और पापा को पंखा झलने बैठ गयी। सुधा अपने पापा की सिरचढ़ी दुलारी बेटियों में से थी और इतनी बड़ी हो जाने पर भी वह दुलार दिखाने से बाज नहीं आती थी। फिर आज तो उसने पापा की प्रिय नानखटाई अपने हाथ से बनायी थी। आज तो दुलार दिखाने का उसका हक

था और भली-बुरी हर तरह की जिद को मान लेना करना, यह पापा की मजबूरी थी।

मुश्किल से डॉ. साहब ने अभी दो कौर खाये होंगे कि सुधा ने कहा, ''नानखटाई खाओ, पापा!''

डॉ. शुक्ला ने एक नानखटाई तोड़कर खाते हुए कहा, ''बहुत अच्छी है!'' खाते-खाते उन्होंने पूछा, ''सोमवार को कौन दिन है, सुधा!''

"सोमवार को कौन दिन है? सोमवार को 'मण्डे' है।'' सुधा ने हँसकर कहा। डॉ. शुक्ला भी अपनी भूल पर हँस पड़े। ''अरे देख तो मैं कितना भुलक्कड़ हो गया हूँ। मेरा मतलब था कि सोमवार को कौन तारीख है?''

"11 तारीख।'' सुधा बोली, ''क्यों?''

"कुछ नहीं, 10 को कॉन्फ्रेन्स है और 14 को तुम्हारी बुआ आ रही हैं।''

"बुआ आ रही हैं, और बिनती भी आएगी?''

"हाँ, उसी को तो पहुँचाने आ रही हैं। विदुषी का केन्द्र यहीं तो है।''

"आहा! अब तो बिनती तीन महीने यहीं रहेगी, पापा अब बिनती को यहीं बुला लो। मैं बहुत अकेली रहती हूँ।''

"हाँ, अब तो जून तक यहीं रहेगी। फिर जुलाई में उसकी शादी होगी।'' डॉ. शुक्ला ने कहा।

"अरे, अभी से? अभी उसकी उम्र ही क्या है!'' सुधा बोली।

"क्यों, तेरे बराबर है। अब तेरे लिए भी तेरी बुआ ने लिखा है।''

"नहीं पापा, हम ब्याह नहीं करेंगे।'' सुधा ने मचलकर कहा।

"तब?''

"बस हम पढ़ेंगे। एफ.ए. कर लेंगे, फिर बी.ए., फिर एम.ए., फिर रिसर्च, फिर बराबर पढ़ते जाएँगे, फिर एक दिन हम भी तुम्हारे बराबर हो जाएँगे। क्यों, पापा?''

"पागल नहीं तो, बातें तो सुनो इसकी! ला, दो नानखटाई और दे।'' शुक्ला हँसकर बोले।

"नहीं, पहले तो कबूल दो तब हम नानखटाई देंगे। बताओ ब्याह तो नहीं करोगे।'' सुधा ने दो नानखटाइयाँ हाथ में उठाकर कहा।

"ला, रख।''

"नहीं, पहले बता दो।''

"अच्छा-अच्छा, नहीं करेंगे।''

सुधा ने दोनों नानखटाइयाँ रखकर पंखा झलना शुरू किया। इतने में फिर नानखटाइयाँ खाते हुए डॉ. शुक्ला बोले, ''तेरी सास तुझे देखने आएगी तो यही नानखटाइयाँ तुमसे बनवा कर खिलाएँगे।''

"फिर वही बात!'' सुधा ने पंखा पटककर कहा, ''अभी तुम वादा कर चुके हो कि ब्याह नहीं करेंगे।''

"हाँ-हाँ, ब्याह नहीं करूँगा, यह तो कह दिया मैंने। लेकिन तेरा ब्याह नहीं करूँगा, यह मैंने कब कहा?''

"हाँ आँ, ये तो फिर झूठ बोल गये तुम...'' सुधा बोली।

"अच्छा, ए! चलो ओहर।'' महराजिन ने डाँटकर कहा, ''एत्ती बड़ी बिटिया हो गयी, मारे दुलारे के बररानी जात है।'' महराजिन पुरानी थी और सुधा को डाँटने का पूरा हक था उसे, और सुधा भी उसका बहुत लिहाज करती थी। वह उठी और चुपचाप जाकर अपने कमरे में लेट गयी। बारह बज रहे थे।

वह लेटी-लेटी कल रात की बात सोचने लगी। क्लास में क्या मजा आया था कल गेसू कितनी अच्छी लड़की है! इस वक्त गेसू के यहाँ खाना-पीना हो रहा होगा और फिर सब लोग मिलकर गाएँगे। कौन जाने शायद दोपहर को कव्वाली भी हो। इन लोगों के यहाँ कव्वाली इतनी अच्छी होती है। सुधा सुन नहीं पाएगी और गेसू ने भी कितना बुरा माना होगा। और यह सब चन्दर की वजह से। चन्दर हमेशा उसके आने-जाने, उठने-बैठने में कतर-ब्योंत करता रहता है। एक बार वह अपने मन से लड़कियों के साथ पिकनिक में चली गयी। वहीं चन्दर के बहुत-से दोस्त भी थे। एक दोस्त ने जाकर चन्दर से जाने क्या कह दिया कि चन्दर उस पर बहुत बिगड़ा। और सुधा कितनी रोयी थी उस दिन। यह चन्दर बहुत खराब है। सच पूछो तो अगर कभी-कभी वह सुधा का कहना मान लेता है तो उससे दुगुना सुधा पर रोब जमाता है और सुधा को रुला-रुलाकर मार डालता है। और खुद अपने-आप दुनियाभर में घूमेंगे। अपना काम होगा तो 'चलो सुधा, अभी करो, फौरन।' और सुधा का काम होगा तो-'अरे भाई, क्या करें, भूल गये।' अब आज ही देखो, सुबह आठ बजे आये और अब देखो दो बजे भी जनाब आते हैं या नहीं? और कह गये हैं दो बजे तक के लिए तो दो बजे तक सुधा को चौन नहीं पड़ेगी। न नींद आएगी, न किसी काम में तबीयत लगेगी। लेकिन अब ऐसे काम कैसे चलेगा। इम्तहान को कितने थोड़े दिन रह गये हैं। और सुधा की तबीयत सिवा पोयट्री (कविता) के और कुछ पढने में लगती ही नहीं। कब से वह चन्दर से कह रही है थोड़ा-सा इकनामिक्स पढ़ा दो, लेकिन ऐसा स्वार्थी

है कि बस चाय पी ली, नानखटाई खा ली, रुला लिया और फिर अपने मस्त साइकिल पर घूम रहे हैं।

यही सब सोचते-सोचते सुधा को नींद आ गयी।

और तीन बजे जब गेसू आयी तो भी सुधा सो रही थी। पलंग के नीचे डी.एम.सी. का गोला खुला हुआ था और तकिये के पास क्रोशिया पड़ी थी। सुधा थी बड़ी प्यारी। बड़ी खूबसूरत। और खासतौर से उसकी पलकें तो अपराजिता के फूलों को मात करती थीं। और थी इतनी गोरी गुदकारी कि कहीं पर दबा दो तो फूल खिल जाए। मूँगिया होंठों पर जाने कैसा अछूता गुलाब मुसकराता था और बाँहें तो जैसे बेले की पाँखुरियों की बनी हों। गेसू आयी। उसके हाथ में मिठाई थी जो उसकी माँ ने सुधा के लिए भेजी थी। वह पल-भर खड़ी रही और फिर उसने मेज पर मिठाई रख दी और क्रोशिया से सुधा की गर्दन गुदगुदाने लगी। सुधा ने करवट बदल ली। गेसू ने नीचे पड़ा हुआ डोरा उठाया और आहिस्ते से उसका चुटीला डोरे के एक छोर से बाँधकर दूसरा छोर मेज के पाये से बाँध दिया। और उसके बाद बोली, ''सुधा, सुधा उठो।''

सुधा चौंककर उठ गयी और आँखें मलते-मलते बोली, ''अब दो बजे हैं? लाये उन्हें या नहीं?''

"ओहो! उन्हें लाये या नहीं किसे बुलाया था रानी, दो बजे, जरा हमें भी तो मालूम हो?'' गेसू ने बाँह में चुटकी काटते हुए पूछा।

"उफ्फोह!'' सुधा बाँह झटककर बोली, ''मार डाला! बेदर्द कहीं की! ये सब अपने उन्हीं अख्तर मियाँ को दिखाया कर!'' और ज्यों ही सुधा ने सिर ढँकने के लिए पल्ला उठाया तो देखा कि चोटी डोर में बँधी हुई है। इसके पहले कि सुधा कुछ कहे, गेसू बोली, ''या सनम! जरा पढ़ाई तो देखो, मैंने तो सुना था कि नींद न आये इसलिए लड़के अपनी चोटी खूँटी में बाँध लेते हैं पर यह नहीं मालूम था कि लड़कियाँ भी अब वही करने लगी हैं।''

सुधा ने चोटी से डोर खोलते हुए कहा, ''मैं ही सताने को रह गयी हूँ। अख्तर मियाँ की चोटी बाँधकर नचाना उन्हें। अभी से बेताब क्यों हुई जाती है?''

"अरे रानी, उनके चोटी कहाँ? मियाँ हैं मियाँ?''

"2चोटी न सही, दाढ़ी सही।''

"दाढ़ी, खुदा खैर करे, मगर वो दाढ़ी रख लें तो मैं उनसे मोहब्बत तोड़ लूँ।''

सुधा हँसने लगी।

"ले, अम्मी ने तेरे लिए मिठाई भेजी है। तू आयी क्यों नहीं?''

"क्या बताऊँ?''

"बताऊँ-वताऊँ कुछ नहीं। अब कब आएगी तू?''

"गेसू, सुनो, इसी मंगल, नहीं-नहीं बृहस्पति को बुआ आ रही हैं। वो चली जाएँगी तब आऊँगी मैं।''

"अच्छा, अब मैं चलूँ। अभी कामिनी और प्रभा के यहाँ मिठाई पहुँचानी है।''

गेसू मुड़ते हुए बोली।

"अरे बैठो भी।'' सुधा ने गेसू की ओढनी पकड़कर उसे खींचकर बिठलाते हुए कहा, ''अभी आये हो, बैठे हो, दामन सँभाला है।''

"आहा। अब तो तू भी उर्दू शायरी कहने लगी।'' गेसू ने बैठते हुए कहा।

"तेरा ही मर्ज लग गया।'' सुधा ने हँसकर कहा।

"देख कहीं और भी मर्ज न लग जाए, वरना फिर तेरे लिए भी इन्तजाम करना होगा!'' गेसू ने पलंग पर लेटते हुए कहा।

"अरे ये वो गुड़ नहीं कि चींटे खाएँ।''

"देखूँगी, और देखूँगी क्या, देख रही हूँ। इधर पिछले दो साल से कितनी बदल गयी है तू। पहले कितना हँसती-बोलती थी, कितनी लड़ती-झगड़ती थी और अब कितना हँसने-बोलने पर भी गुमसुम हो गयी है तू। और वैसे हमेशा हँसती रहे चाहे लेकिन जाने किस खयाल में डूबी रहती है हमेशा।'' गेसू ने सुधा की और देखते हुए कहा।

"धत् पगली कहीं की।'' सुधा ने गेसू के एक हल्की-सी चपत मारकर कहा, ''यह सब तेरे अपने खयाली-पुलाव हैं। मैं किसी के ध्यान में डूबूँगी, ये हमारे गुरु ने नहीं सिखाया।''

"गुरु तो किसी के नहीं सिखाते सुधा रानी, बिल्कुल सच-सच, क्या कभी तुम्हारे मन में किसी के लिए मोहब्बत नहीं जागी?'' गेसू ने बहुत गम्भीरता से पूछा।

"देख गेसू, तुझसे मैंने आज तक तो कभी कुछ नहीं छिपाया, न शायद कभी छिपाऊँगी। अगर कभी कोई बात होती तो तुझसे छिपी न रहती और रहा मुहब्बत का, तो सच पूछ तो मैंने जो कुछ कहानियों में पढ़ा है कि किसी को देखकर मैं रोने लगूँ, गाने लगूँ, पागल हो जाऊँ यह सब कभी मुझे नहीं हुआ। और रहीं कविताएँ तो उनमें की बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। कीट्स की

कविताएँ पढ़कर ऐसा लगा है अक्सर कि मेरी नसों का कतरा-कतरा आँसू बनकर छलकने वाला है। लेकिन वह महज कविता का असर होता है।''

"महज कविता का असर,'' गेसू ने पूछा, ''कभी किसी खास आदमी के लिए तेरे मन में हँसी या आँसू नहीं उमड़ते! कभी अपने मन को जाँचकर तो देख, कहीं तेरी नाजुक-खयाली के परदे में किसी एक की सूरत तो नहीं छिपी है।''

"नहीं गेसू बानो, नहीं, इसमें मन को जाँचने की क्या बात है। ऐसी बात होती और मन किसी के लिए झुकता तो क्या खुद मुझे नहीं मालूम होता?'' सुधा बोली, ''लेकिन तुम ऐसा क्यों सोचती हो?''

"बात यह है, सुधी!'' गेसू ने सुधा को अपनी गोद में खींचते हुए कहा, ''देखो, तुम मुझसे इल्म में ऊँची हो, तुमने अँग्रेजी शायरी छान डाली है, लेकिन जिंदगी से जितना मुझे साबिका पड़ चुका है, अभी तुम्हें नहीं पड़ा। अक्सर कब, कहाँ और कैसे मन अपने को हार बैठता है, यह खुद हमें पता नहीं लगता। मालूम तब होता है जब जिसके कदम पर हमने सिर रखा है, वह झटके से अपने कदम घसीट ले। उस वक्त हमारी नींद टूट जाती है और तब हम जाकर देखते हैं कि अरे हमारा सिर तो किसी के कदमों पर रखा हुआ था और उनके सहारे आराम से सोते हुए हम सपना देख रहे थे कि हमारा सिर कहीं झुका ही नहीं। और मुझे जाने तेरी आँखों में इधर क्या दीख रहा है कि मैं बेचैन हो उठी हूँ। तूने कभी कुछ नहीं कहा, लेकिन मैंने देखा कि नाजुक अशआर तेरे दिल को उस जगह छू लेते हैं जिस जगह उसी को छू सकते हैं, जो अपना दिल किसी के कदमों पर चढ़ा चुका हो। और मैं यह नहीं कहती कि तूने मुझसे छिपाया है। कौन जानता है तेरे दिल ने खुद तुझसे यह राज छिपा रखा हो।'' और सुधा के गाल थपथपाते हुए गेसू बोली, ''लेकिन मेरी एक बात मानेगी तू? तू कभी इस दर्द को मोल न लेना, बहुत तकलीफ होती है।''

सुधा हँसने लगी, ''तकलीफ की क्या बात? तू तो है ही। तुझसे पूछ लूँगी उसका इलाज।''

"मुझसे पूछकर क्या कर लेगी-

दर्दे दिल क्या बाँटने की चीज है?

बाँट लें अपने पराये दर्दे दिल?

नहीं, तू बड़ी सुकुवाँर है। तू इन तकलीफों के लिए बनी नहीं मेरी चम्पा!'' और गेसू ने उसका सिर अपनी छाती में छिपा लिया।

टन से घड़ी ने साढ़े तीन बजाये।

सुधा ने अपना सिर उठाया और घड़ी की और देखकर कहा–

"ओफ्फोह, साढ़े तीन बजे गये और अभी तक गायब!''

"किसके इन्तजार में बेताब है तू?'' गेसू ने उठकर पूछा।

"बस दर्दे दिल, मुहब्बत, इन्तजार, बेताबी, तेरे दिमाग में तो यही सब भरा रहता है आज कल, वही तू सबको समझती है। इन्तजार–विन्तजार नहीं, चन्दर अभी मास्टर लेकर आएँगे। अब इम्तहान कितना नजदीक है।''

"हाँ, ये तो सच है और अभी तक मुझसे पूछ, क्या पढ़ाई हुई है। असल बात तो यह है कि कॉलेज में पढ़ाई हो तो घर में पढ़ने में मन लगे और राजा कॉलेज में पढ़ाई नहीं होती। इससे अच्छा सीधे यूनिवर्सिटी में बी.ए. करते तो अच्छा था। मेरी तो अम्मी ने कहा कि वहाँ लड़के पढ़ते हैं, वहाँ नहीं भेजूँगी, लेकिन तू क्यों नहीं गयी, सुधा?''

"मुझे भी चन्दर ने मना कर दिया था।'' सुधा बोली।

सहसा गेसू ने एक क्षण को सुधा की और देखा और कहा, ''सुधी, तुझसे एक बात पूछूँ!''

"हाँ!''

"अच्छा जाने दे!''

"पूछो न!''

"नहीं, पूछना क्या, खुद जाहिर है।''

"क्या?''

"कुछ नहीं।''

"पूछो न!''

"अच्छा, फिर कभी पूछ लेंगे! अब देर हो रही है। आधा घंटा हो गया। कोचवान बाहर खड़ा है।''

सुधा गेसू को पहुँचाने बाहर तक आयी।

"कभी हसरत को लेकर आओ।'' सुधा बोली।

"अब पहले तुम आओ।'' गेसू ने चलते–चलते कहा।

"हाँ, हम तो बिनती को लेकर आएँगे और हसरत से कह देना तभी उसके लिए तोहफा लाएँगे!''

"अच्छा, सलाम...''

और गेसू की गाड़ी मुश्किल से फाटक के बाहर गयी होगी कि साइकिल पर चन्दर आते हुए दीख पड़ा। सुधा ने बहुत गौर से देखा कि उसके साथ कौन है, मगर वह अकेला था।

सुधा सचमुच झल्ला गयी। आखिर लापरवाही की हद होती है। चन्दर को दुनिया भर के काम याद रहते हैं, एक सुधा से जाने क्या खार खाये बैठा है कि सुधा का काम कभी नहीं करेगा। इस बात पर सुधा कभी-कभी दु:खी हो जाती है और घर में किससे वह कहे काम के लिए। खुद कभी बाजार नहीं जाती। नतीजा यह होता है कि वह छोटी-से-छोटी चीज के लिए मोहताज होकर बैठ जाती है। और काम नौकरों से करवा भी ले, पर अब मास्टर तो नौकर से नहीं ढुँढ़वाया जा सकता? ऊन तो नौकर नहीं पसन्द कर सकता? किताबें तो नौकर नहीं ला सकता? और चन्दर का यह हाल है। इसी बात पर कभी-कभी उसे रुलाई आ जाती है।

चन्दर ने आकर बरामदे में साइकिल रखी और सुधा का चेहरा देखते ही वह समझ गया। ''काहे मुँह बना रखा है, पाँच बजे मास्टर साहब आएँगे तुम्हारे। अभी उन्हीं के यहाँ से आ रहे हैं। बिसरिया को जानती हो, वही आएँगे।'' और उसके बाद चन्दर सीधा स्टडी-रूम में पहुँच गया। वहाँ जाकर देखा तो आराम-कुर्सी पर बैठे-ही-बैठे डॉ. शुक्ला सो रहे हैं। अत: उसने अपना चार्ट और पेन उठाया और ड्राइंगरूम में आकर चुपचाप काम करने लगा।

बड़ा गम्भीर था वह। जब इंक घोलने के लिए उसने सुधा से पानी नहीं माँगा और खुद गिलास लाकर आँगन में पानी लेने लगा, तब सुधा समझ गयी कि आज दिमाग कुछ बिगड़ा है। वह एकदम तड़प उठी। क्या करे वह! वैसे चाहे वह चन्दर से कितना ही ढीठ क्यों न हो पर चन्दर गुस्सा रहता था तब सुधा की रूह काँप उठती थी। उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह कुछ भी कहे। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर वह इतनी परेशान हो उठती थी कि बस।

कई बार वह किसी-न-किसी बहाने से ड्राइंगरूम में आयी, कभी गुलदस्ता बदलने, कभी मेजपोश बदलने, कभी आलमारी में कुछ रखने, कभी आलमारी में से कुछ निकालने, लेकिन चन्दर अपने चार्ट में निगाह गड़ाये रहा। उसने सुधा की और देखा तक नहीं। सुधा की आँख में आँसू छलक आये और वह चुपचाप अपने कमरे में चली गयी और लेट गयी। थोड़ी देर वह पड़ी रही, पता नहीं क्यों वह फूट-फूटकर रो पड़ी। खूब रोयी, खूब रोयी और फिर मुँह धोकर आकर पढ़ने की कोशिश करने लगी। जब हर अक्षर में उसे चन्दर का

उदास चेहरा नजर आने लगा तो उसने किताब बन्द करके रख दी और ड्राइंगरूम में गयी। चन्दर ने चार्ट बनाना भी बन्द कर दिया था और कुरसी पर सिर टेके छत की और देखता हुआ जाने क्या सोच रहा था।

वह जाकर सामने बैठ गयी तो चन्दर ने चौंककर सिर उठाया और फिर चार्ट को सामने खिसका लिया। सुधा ने बड़ी हिम्मत करके कहा–

"चन्दर!''

"क्या!'' बड़े भर्राये गले से चन्दर बोला।

"इधर देखो!'' सुधा ने बहुत दुलार से कहा।

"क्या है!'' चन्दर ने उधर देखते हुए कहा, ''अरे सुधा! तुम रो क्यों रही हो?''

"हमारी बात पर नाराज हो गये तुम। हम क्या करें, हमारा स्वभाव ही ऐसा हो गया। पता नहीं क्यों तुम पर इतना गुस्सा आ जाता है।'' सुधा के गाल पर दो बड़े-बड़े मोती ढलक आये।

"अरे पगली! मालूम होता है तुम्हारा तो दिमाग बहुत जल्दी खराब हो जाएगा, हमने तुमसे कुछ कहा है?''

"कह लेते तो हमें सन्तोष हो जाता। हमने कभी कहा तुमसे कि तुम कहा मत करो। गुस्सा मत हुआ करो। मगर तुम तो फिर गुस्सा मन-ही-मन में छिपाने लगते हो। इसी पर हमें रुलाई आ जाती है।''

"नहीं सुधी, तुम्हारी बात नहीं थी और हम गुस्सा भी नहीं थे। पता नहीं क्यों मन बड़ा भारी-सा था।''

"क्या बात है, अगर बता सको तो बताओ, वरना हम कौन हैं तुमसे पूछने वाले।'' सुधा ने बड़े करुण स्वर में कहा।

"तो तुम्हारा दिमाग खराब हुआ। हमने कभी तुमसे कोई बात छिपायी? जाओ, अच्छी लड़की की तरह मुँह धो आओ।''

सुधा उठी और मुँह धोकर आकर बैठ गयी।

"अब बताओ, क्या बात थी?''

"कोई एक बात हो तो बताएँ। पता नहीं तुम्हारे घर से गये तो एक-न-एक ऐसी बात होती गयी कि मन बड़ा उदास हो गया।''

"आखिर फिर भी कोई बात तो हुई ही होगी!''

"बात यह हुई कि तुम्हारे यहाँ से मैं घर गया खाना खाने। वहाँ देखा चाचाजी आये हुए हैं, उनके साथ एक कोई साहब और हैं। खैर बड़ी खुशी हुई।

खाना-वाना खाकर जब बैठे तब मालूम हुआ कि चाचाजी मेरा ब्याह तय करने के लिए आये हैं और साथ वाले साहब मेरे होने वाले ससुर हैं। जब मैंने इनकार कर दिया तो बहुत बिगड़कर चले गये और बोले हम आज से तुम्हारे लिए मर गये और तुम हमारे लिए मर गये।''

"तुम्हारी माताजी कहाँ हैं?''

"प्रतापगढ़ में, लेकिन वो तो सौतेली हैं और वे तो चाहती ही नहीं कि मैं घर लौटूँ, लेकिन चाचाजी जरूर आज तक मुझसे कुछ मुहब्बत करते थे। आज वह भी नाराज होकर चले गये।''

सुधा कुछ देर तक सोचती रही, फिर बोली, ''तो चन्दर, तुम शादी कर क्यों नहीं लेते?''

"नहीं सुधा, शादी नहीं करनी है मुझे। मैंने देखा कि जिसकी शादी हुई, कोई भी सुखी नहीं हुआ। सभी का भविष्य बिगड़ गया। और क्यों एक तवालत पाली जाए? जाने कैसी लड़की हो, क्या हो?''

"तो उसमें क्या? पापा से कहो उस लड़की को जाकर देख लें। हम भी पापा के साथ चले जाएँगे। अच्छी हो तो कर लो न, चन्दर। फिर यहीं रहना। हमें अकेला भी नहीं लगेगा। क्यों?''

"नहीं जी, तुम तो समझती नहीं हो। जिंदगी निभानी है कि कोई गाय-भैंस खरीदना है!'' चन्दर ने हँसकर कहा, ''आदमी एक-दूसरे को समझे, बूझे, प्यार करे, तब ब्याह के भी कोई माने हैं।''

"तो उसी से कर लो जिससे प्यार करते हो!''

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"बोलो! चुप क्यों हो गये! अच्छा, तुमने किसी को प्यार किया, चन्दर!''

"क्यों?''

"बताओ न!''

"शायद नहीं!''

"बिल्कुल ठीक, हम भी यही सोच रहे थे अभी।'' सुधा बोली।

"क्यों, ये क्यों सोच रही थी?''

"इसलिए कि तुमने किया होता तो तुम हमसे थोड़े ही छिपाते, हमें जरूर बताते, और नहीं बताया तो हम समझ गये कि अभी तुमने किसी से प्यार नहीं किया।''

"लेकिन तुमने यह पूछा क्यों, सुधा! यह बात तुम्हारे मन में उठी कैसे?''

"कुछ नहीं, अभी गेसू आयी थी। वह बोली-सुधा, तुमने किसी से कभी प्यार किया है, असल में वह अख्तर को प्यार करती है। उससे उसका विवाह होने वाला है। हाँ, तो उसने पूछा कि तूने किसी से प्यार किया है, हमने कहा, नहीं। बोली, तू अपने से छिपाती है। तो हम मन-ही-मन में सोचते रहे कि तुम आओगे तो तुमसे पूछेंगे कि हमने कभी प्यार तो नहीं किया है। क्योंकि तुम्हीं एक हो जिससे हमारा मन कभी कोई बात नहीं छिपाता, अगर कोई बात छिपाई भी होती हमने, तो तुम्हें जरूर बता देती। फिर हमने सोचा, शायद कभी हमने प्यार किया हो और तुम्हें बताया हो, फिर हम भूल गये हों। अभी उसी दिन देखो, हम पापा की दवाई का नाम भूल गये और तुम्हें याद रहा। शायद हम भूल गये हों और तुम्हें मालूम हो। कभी हमने प्यार तो नहीं किया न?''

"नहीं, हमें तो कभी नहीं बताया।'' चन्दर बोला।

"तब तो हमने प्यार-वार नहीं किया। गेसू यूँ ही गप्प उड़ा रही थी।'' सुधा ने सन्तोष की साँस लेकर कहा, ''लेकिन बस! चाचाजी के नाराज होने पर तुम इतने दु:खी हो गये हो! हो जाने दो नाराज। पापा तो हैं अभी, क्या पापा मुहब्बत नहीं करते तुमसे?''

"सो क्यों नहीं करते, तुमसे ज्यादा मुझसे करते हैं, लेकिन उनकी बात से मन तो भारी हो ही गया। उसके बाद गये बिसरिया के यहाँ। बिसरिया ने कुछ बड़ी अच्छी कविताएँ सुनायीं। और भी मन भारी हो गया।'' चन्दर ने कहा।

"लो, तब तो चन्दर, तुम प्यार करते होगे! जरूर से?'' सुधा ने हाथ पटककर कहा।

"क्यों?''

"गेसू कह रही थी-शायरी पर जो उदास हो जाता है वह जरूर मुहब्बत-वुहब्बत करता है।'' सुधा ने कहा, ''अरे यह पोर्टिको में कौन है?''

चन्दर ने देखा, ''लो बिसरिया आ गया!''

चन्दर उसे बुलाने उठा तो सुधा ने कहा, ''अभी बाहर बिठलाना उन्हें, मैं तब तक कमरा ठीक कर लूँ।''

बिसरिया को बाहर बिठाकर चन्दर भीतर आया, अपना चार्ट वगैरह समेटने के लिए, तो सुधा ने कहा, ''सुनो!''

चन्दर रुक गया।

सुधा ने पास आकर कहा, ''तो अब तो उदास नहीं हो तुम। नहीं चाहते मत करो शादी, इसमें उदास क्या होना। और कविता-वविता पर मुँह बनाकर बैठे तो अच्छी बात नहीं होगी।''

"अच्छा!'' चन्दर ने कहा।

"अच्छा-वच्छा नहीं, बताओ, तुम्हैं मेरी कसम है, उदास मत हुआ करो फिर हमसे कोई काम नहीं होता।''

"अच्छा, उदास नहीं होंगे, पगली!'' चन्दर ने हल्की-सी चपत मारकर कहा और बरबस उसके मुँह से एक ठण्डी साँस निकली। उसने चार्ट उठाकर स्टडी रूम में रखा। देखा डॉक्टर साहब अभी सो ही रहे हैं। सुधा कमरा ठीक कर रही थी। वह आकर बिसरिया के पास बैठ गया।

थोड़ी देर में कमरा ठीक करके सुधा आकर कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गयी। चन्दर ने पूछा-"क्यों, सब ठीक है?''

उसने सिर हिला दिया, कुछ बोली नहीं।

"यही हैं आपकी शिष्या। सुश्री सुधा शुक्ला। इस साल बी.ए. फाइनल का इम्तहान देंगी।''

बिसरिया ने बिना आँखें उठाये ही हाथ जोड़ लिये। सुधा ने हाथ जोड़े फिर बहुत सकुचा-सी गयी। चन्दर उठा और बिसरिया को लाकर उसने अन्दर बिठा दिया। बिसरिया के सामने सुधा और उसकी बगल में चन्दर।

चुप। सभी चुप।

अन्त में चन्दर बोला-"लो, तुम्हारे मास्टर साहब आ गये। अब बताओ न, तुम्हैं क्या-क्या पढ़ना है?''

सुधा चुप। बिसरिया कभी यह पुस्तक उलटता, कभी वह। थोड़ी देर बाद वह बोला-"आपके क्या विषय हैं?''

"जी!'' बड़ी कोशिश से बोलते हुए सुधा ने कहा-"हिन्दी, इकनॉमिक्स और गृह-विज्ञान।'' और उसके माथे पर पसीना झलक आया।

"आपको हिन्दी कौन पढ़ाता है?'' बिसरिया ने किताब में ही निगाह गड़ाये हुए कहा।

सुधा ने चन्दर की ओर देखा और मुस्कराकर फिर मुँह झुका लिया।

"बोलो न तुम खुद, ये राजा गर्ल्स कॉलेज में हैं। शायद मिस पवार हिन्दी पढ़ाती हैं।'' चन्दर ने कहा-"अच्छा, अब आप पढ़ाइए, मैं अपना काम करूँ।''

चन्दर उठकर चल दिया। स्टडी रूम में मुश्किल से चन्दर दरवाजे तक पहुँचा होगा कि सुधा ने बिसरिया से कहा–

"जी, मैं पेन ले आऊँ!'' और लपकती हुई चन्दर के पास पहुँची।

"ए सुनो, चन्दर!'' चन्दर रुक गया और उसका कुरता पकड़कर छोटे बच्चों की तरह मचलते हुए सुधा बोली–"तुम चलकर बैठो तो हम पढ़ेंगे। ऐसे शरम लगती है।''

"जाओ, चलो! हर वक्त वही बचपना!'' चन्दर ने डाँटकर कहा–"चलो, पढ़ो सीधे से। इतनी बड़ी हो गयी, अभी तक वही आदतें!''

सुधा चुपचाप मुँह लटकाकर खड़ी हो गयी और फिर धीरे-धीरे पढ़ने लग गयी। चन्दर स्टडी रूम में जाकर चार्ट बनाने लगा। डॉक्टर साहब अभी तक सो रहे थे। एक मक्खी उड़कर उनके गले पर बैठ गयी और उन्होंने बायें हाथ से मक्खी मारते हुए नींद में कहा–"मैं इस मामले में सरकार की नीति का विरोध करता हूँ।''

चन्दर ने चौंककर पीछे देखा। डॉक्टर साहब जग गये थे और जमुहाई ले रहे थे।

"जी, आपने मुझसे कुछ कहा?'' चन्दर ने पूछा।

"नहीं, क्या मैंने कुछ कहा था? ओह! मैं सपना देख रहा था कै बज गये?''

"साढ़े पाँच।''

"अरे बिल्कुल शाम हो गयी!'' डॉक्टर साहब ने बाहर देखकर कहा–"अब रहने दो कपूर, आज काफी काम किया है तुमने। चाय मँगवाओ। सुधा कहाँ है?''

"पढ़ रही है। आज से उसके मास्टर साहब आने लगे हैं।''

"अच्छा-अच्छा, जाओ उन्हें भी बुला लाओ, और चाय भी मँगवा लो। उसे भी बुला लो-सुधा को।''

चन्दर जब ड्राइंग रूम में पहुँचा तो देखा सुधा किताबें समेट रही है और बिसरिया जा चुका है। उसने सुधा से कहना चाहा लेकिन सुधा का मुँह देखते ही उसने अनुमान किया कि सुधा लड़ने के मूड में है। अतः वह स्वयं ही जाकर महराजिन से कह आया कि तीन प्याला चाय पढ़ने के कमरे में भेज दो। जब वह लौटने लगा तो खुद सुधा ही उसके रास्ते में खड़ी हो गयी और धमकी के स्वर में बोली–"अगर कल से साथ नहीं बैठोगे तुम, तो हम नहीं पढ़ेंगे।''

"हम साथ नहीं बैठ सकते, चाहे तुम पढ़ो या न पढ़ो।'' चन्दर ने ठंडे स्वर में कहा और आगे बढ़ा।

"तो फिर हम नहीं पढ़ेंगे।'' सुधा ने जोर से कहा।

''क्या बात है? क्यों लड़ रहे हो तुम लोग?'' डॉ. शुक्ला अपने कमरे से बोले। चन्दर कमरे में जाकर बोला, ''कुछ नहीं, ये कह रही हैं कि...''

''पहले हम कहैंगे,'' बात काटकर सुधा बोली-''पापा, हमने इनसे कहा कि तुम पढ़ाते वक्त बैठा करो, हमें बहुत शरम लगती है, ये कहते हैं पढ़ो चाहे न पढ़ो, हम नहीं बैठेंगे।''

''अच्छा-अच्छा, जाओ चाय लाओ।''

जब सुधा चाय लाने गयी तो डॉक्टर साहब बोले-''कोई विश्वासपात्र लड़का है? अपने घर की लड़की समझकर सुधा को सौंपना पढ़ने के लिए। सुधा अब बच्ची नहीं है।''

''हाँ-हाँ, अरे यह भी कोई कहने की बात है!''

''हाँ, वैसे अभी तक सुधा तुम्हारी ही निगहबानी में रही है। तुम खुद ही अपनी जिम्मेवारी समझते हो। लड़का हिन्दी में एम.ए. है?''

''हाँ, एम.ए. कर रहा है।''

''अच्छा है, तब तो बिनती आ रही है, उसे भी पढ़ा देगा।''

सुधा चाय लेकर आ गयी थी।

''पापा, तुम लखनऊ कब जाओगे?''

''शुक्रवार को, क्यों?''

''और ये भी जाएँगे?''

''हाँ।''

''और हम अकेले रहेंगे?''

''क्यों, महराजिन यहीं सोएगी और अगले सोमवार को हम लौट आएँगे।''

डॉ. शुक्ला ने चाय का प्याला मुँह से लगाते हुए कहा।

एक गमकदे की शाम, मन उदास, तबीयत उचटी-सी, सितारों की रोशनी फीकी लग रही थी। मार्च की शुरुआत थी और फिर भी जाने क्यों शाम इतनी गरम थी, या सुधा को ही इतनी बेचैनी लग रही थी। पहले वह जाकर सामने के लॉन में बैठी लेकिन सामने के मौलसिरी के पेड़ में छोटी-छोटी गौरैयों ने मिलकर इतनी जोर से चहचहाना शुरू किया कि उसकी तबीयत घबरा उठी। वह

इस वक्त एकान्त चाहती थी और सबसे बढ़कर सन्नाटा चाहती थी जहाँ कोई न बोले, कोई बात न करे, सभी खामोशी में डूबे हुए हों।

वह उठकर टहलने लगी और जब लगा कि पैरों में ताकत ही नहीं रही तो फिर लेट गयी, हरी-हरी घास पर। मंगलवार की शाम थी और अभी तक पापा नहीं आये थे। आना तो दूर, पापा या चन्दर के हाथ के एक पुरजे के लिए तरस गयी थी। किसी ने यह भी नहीं लिखा कि वे लोग कहाँ रह गये हैं, या कब तक आएँगे। किसी को भी सुधा का खयाल नहीं। शनिवार या इतवार को तो वह हर रोज खाना खाते वक्त रोयी, चाय पीना तो उसने उसी दिन से छोड़ दिया था और सोमवार को सुबह पापा नहीं आये तो वह इतना फूट-फूटकर रोयी कि महराजिन को सिंकती हुई रोटी छोड़कर चूल्हे की आँच निकालकर सुधा को समझाने आना पड़ा। और सुधा की रुलाई देखकर तो महराजिन के हाथ-पाँव ढीले हो गये थे। उसकी सारी डाँट हवा हो गयी थी और वह सुधा का मुँह-ही-मुँह देखती थी। कल से कॉलेज भी नहीं गयी थी। और दोनों दिन इन्तजार करती रही कि कहीं दोपहर को पापा न आ जाएँ। गेसू से भी दो दिन से मुलाकात नहीं हुई थी।

लेकिन मंगल को दोपहर तक जब कोई खबर न आयी तो उसकी घबराहट बेकाबू हो गयी। इस वक्त उसने बिसरिया से कोई भी बात नहीं की। आधा घंटा पढ़ने के बाद उसने कहा कि उसके सिर में दर्द हो रहा है और उसके बाद खूब रोयी, खूब रोयी। उसके बाद उठी, चाय पी, मुँह-हाथ धोया और सामने के लॉन में टहलने लगी। और फिर लेट गयी हरी-हरी घास पर।

बड़ी ही उदास शाम थी। और क्षितिज की लाली के होठ भी स्याह पड़ गये थे। बादल साँस रोके पड़े थे और खामोश सितारे टिमटिमा रहे थे। बगुलों की धुँधली-धुँधली कतारें पर मारती हुई गुजर रही थीं। सुधा ने एक लम्बी साँस लेकर सोचा कि अगर वह चिड़िया होती तो एक क्षण में उड़कर जहाँ चाहती वहाँ की खबर ले आती। पापा इस वक्त घूमने गये होंगे। चन्दर अपने दोस्तों की टोली में बैठा रँगरेलियाँ कर रहा होगा। वहाँ भी दोस्त बना ही लिये होंगे उसने। बड़ा बातूनी है चन्दर और बड़ा मीठे स्वभाव का। आज तक किसी से सुधा ने उसकी बुराई नहीं सुनी। सभी उसको प्यार करते थे। यहाँ तक कि महराजिन, जो सुधा को हमेशा डाँटती रहती थी, चन्दर का हमेशा पक्ष लेती थी और सुधा हरेक से पूछ लेती थी कि चन्दर के बारे में उसकी क्या राय है? लेकिन सब लोग जितनी चन्दर की तारीफ करते वह उतना अच्छा उसे नहीं समझती थी।

आदमी की परख तब होती है जब दिन-रात बरते। चन्दर उसका ऊन कभी नहीं लाकर देता था, बादामी रंग का रेशम मँगाओ तो केसरिया रंग का ला देता था। इतने नक्शे बनाता रहता था, और सुधा ने हमेशा उससे कहा कि मेजपोश की कोई डिजाइन बना दो तो उसने कभी नहीं बनायी। एक बार सुधा ने बहुत अच्छी वायल कानपुर से मँगवायी और चन्दर ने कहा, ''लाओ, यह बहुत अच्छी है, इस पर हम किनारे की डिजाइन बना देंगे।'' और उसके बाद उसने उसमें तमाम पान-जैसा जाने क्या बना दिया और जब सुधा ने पूछा, ''यह क्या है?'' तो बोला, ''लंका का नक्शा है।'' जब सुधा बिगड़ी तो बोला, ''लड़कियों के हृदय में रावण से मेघनाद तक करोड़ों राक्षसों का वास होता है, इसलिए उनकी पोशाक में लंका का नक्शा ज्यादा सुशोभित होता है।'' मारे गुस्से के सुधा ने वह धोती अपनी मालिन को दे डाली थी। यह सब बातें तो किसी को मालूम नहीं। उनके सामने तो जरा-सा कपूर साहब हँस दिये, चार मजाक की बातें कर दीं, छोटे-मोटे उनके काम कर दिये, मीठी बातें कर लीं और सब समझे कपूर साहब तो बिल्कुल गुलाब के फूल हैं। लेकिन कपूर साहब एक तीखे काँटे हैं, जो दिन-रात सुधा के मन में चुभते रहते हैं, यह तो दुनिया को नहीं मालूम। दुनिया क्या जाने कि सुधा कितनी परेशानी रहती है चन्दर की आदतों से! अगर दुनिया को मालूम हो जाए तो कोई चन्दर की जरा भी तारीफ न करे, सब सुधा को ही ज्यादा अच्छा कहैं, लेकिन सुधा कभी किसी से कुछ नहीं कहती, मगर आज उसका मन हो रहा था कि किसी से चन्दर की जी भरकर बुराई कर ले तो उसका मन बहुत हल्का हो जाए।

''चलो बिटिया रानी, तई खाय लेव, फिर भीतर लेटो। अबहिन लेटे का बखत नहीं आवा!'' सहसा महराजिन ने आकर सुधा की स्वप्न- शृंखला तोड़ते हुए कहा।

''अब हम नहीं खाएँगे, भूख नहीं।'' सुधा ने अपने सुनहले सपनों में ही डूबी हुई बेहोश आवाज में जवाब दिया।

''खाय लेव बिटिया, खाय-पियै छोड़ै से कसस काम चली, आव उठौ!'' महराजिन ने बड़े दुलार से कहा। सुधा पीछा छूटने की कोई आशा न देखकर उठ गयी और चल दी खाने। कौर उठाते ही उसकी आँख में आँसू छलक आये, लेकिन अपने को रोक लिया उसने। दूसरों के सामने अपने को बहुत शान्त रखना आता था। उसे। दो कौर खाने के बाद वह महराजिन से बोली, ''आज कोई चिठ्ठी तो नहीं आयी?''

''नहीं बिटिया, आज तो दिन भर घरै में रह्यो!'' महराजिन ने पराठे उलटते हुए जवाब दिया-"काहे बिटिया, बाबूजी कुछौ नाही लिखिन तो छोटे बाबू तो लिख देते।''

''अरे महराजिन, यही तो हमारी जान का रोना है। हम चाहे रो-रोकर मर जाएँ मगर न पापा को खयाल, न पापा के शिष्य को। और चन्दर तो ऐसे खराब हैं कि हम क्या करें। ऐसे स्वार्थी हैं, अपने मतलब के कि बस! सुबह-शाम आएँ और हम या पापा न मिलें तो आफत ढा देंगे-बहुत घूमने लगी हो तुम, बहुत बाहर कदम निकल गया है तुम्हारा-और सच पूछो तो चन्दर की वजह से हमने सब जगह आना-जाना बन्द कर दिया और खुद हैं कि आज लखनऊ, कल कलकत्ता और एक चिठ्ठी भेजने तक का वक्त नहीं मिलता! अभी हम ऐसा करते तो हमारी जान नोच खाते! और पापा को देखो, उनके दुलारे उनके साथ हैं तो बस और किसी की फिक्र ही नहीं। अब तुम महराजिन, चन्दर को तो कभी कुछ चाय-वाय बना के मत देना।''

''काहे बिटिया, काहे कोसत हो। कैसा चाँद-से तो हैं छोटे बाबू, और कैसा हँस के बातें करत हैं। माई का जाने कैसे हियाव पड़ा कि उन्हें अलग कै दिहिस। बेचारा होटल में जाने कैसे रोटी खात होई। उन्हें हिंयई बुलाय लेव तो अपने हाथ की खिलाय के दुई महीना माँ मोटा कै देई। हमें तोसे ज्यादा उसकी ममता लगत है।''

''बीबीजी, बाहर एक मेम पूछत हैं-हिंया कोनो डाकदर रहत हैं? हम कहा, नाहीं, हिंया तो बाबूजी रहत हैं तो कहत हैं, नहीं यही मकान आय।'' मालिन ने सहसा आकर बहुत स्वतंत्र स्वरों में कहा।

''बैठाओ उन्हें, हम आते हैं।'' सुधा ने कहा और जल्दी-जल्दी खाना शुरू किया और जल्दी-जल्दी खत्म कर दिया।

बाहर जाकर उसने देखा तो नीलकाँटे के झाड़ से टिकी हुई एक बाइसिकिल रखी थी और एक ईसाई लड़की लॉन पर टहल रही है। होगी करीब चौबीस-पच्चीस बरस की, लेकिन बहुत अच्छी लग रही थी।

''कहिए, आप किसे पूछ रही हैं?'' सुधा ने अँग्रेजी में पूछा।

''मैं डॉक्टर शुक्ला से मिलने आयी हूँ।'' उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में कहा।

''वे तो बाहर गये हैं और कब आएँगे, कुछ पता नहीं। कोई खास काम है आपको?'' सुधा ने पूछा।

''नहीं, यूँ ही मिलने आ गयी। आप उनकी लड़की हैं?'' उसने साइकिल उठाते हुए कहा।

''जी हाँ, लेकिन अपना नाम तो बताती जाइए।''

''मेरा नाम कोई महत्त्वपूर्ण नहीं। मैं उनसे मिल लूँगी। और हाँ, आप उसे जानती हैं, मिस्टर कपूर को?''

''आहा! आप पम्मी हैं, मिस डिक्रूज!'' सुधा को एकदम खयाल आ गया-''आइए, आइए, हम आपको ऐसे नहीं जाने देंगे। चलिए, बैठिए।'' सुधा ने बड़ी बेतकल्लुफी से उसकी साइकिल पकड़ ली।

''अच्छा-अच्छा, चलो!'' कहकर पम्मी जाकर ड्राइंग रूम में बैठ गयी।

''मिस्टर कपूर रहते कहाँ हैं?'' पम्मी ने बैठने से पहले पूछा।

''रहते तो वे चौक में हैं, लेकिन आजकल तो वे भी पापा के साथ बाहर गये हैं। वे तो आपकी एक दिन बहुत तारीफ कर रहे थे, बहुत तारीफ। इतनी तारीफ किसी लड़की की करते तो हमने सुना नहीं।''

''सचमुच!'' पम्मी का चेहरा लाल हो गया। ''वह बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे हैं!''

थोड़ी देर पम्मी चुप रही, फिर बोली-"क्या बताया था उन्होंने हमारे बारे में?''

''ओह तमाम! एक दिन शाम को तो हम लोग आप ही के बारे में बातें करते रहे। आपके भाई के बारे में बताते रहे। फिर आपके काम के बारे में बताया कि आप कितना तेज टाइप करती हैं, फिर आपकी रुचियों के बारे में बताया कि आपको साहित्य से बहुत शौक नहीं है और आप शादी से बेहद नफरत करती हैं और आप ज्यादा मिलती-जुलती नहीं, बाहर आती-जाती नहीं और मिस डिक्रूज...''

''न, आप पम्मी कहिए मुझे?''

''हाँ, तो मिस पम्मी, शायद इसीलिए आप उसे इतनी अच्छी लगीं कि आप कहीं आती-जाती नहीं, वह लड़कियों का आना-जाना और आजादी बहुत नापसन्द करता है।'' सुधा बोली।

''नहीं, वह ठीक सोचता है।'' पम्मी बोली-''मैं शादी और तलाक के बाद इसी नतीजे पर पहुँची हूँ कि चौदह बरस से चौंतीस बरस तक लड़कियों को बहुत शासन में रखना चाहिए।'' पम्मी ने गम्भीरता से कहा।

एक ईसाई मेम के मुँह से यह बात सुनकर सुधा दंग रह गयी।

''क्यों?'' उसने पूछा।

''इसलिए कि इस उम्र में लड़कियाँ बहुत नादान होती हैं और जो कोई भी चार मीठी बातें करता है, तो लड़कियाँ समझती हैं कि इससे ज्यादा प्यार उन्हें कोई नहीं करता। और इस उम्र में जो कोई भी ऐरा-गैरा उनके संसर्ग में आ जाता है, उसे वे प्यार का देवता समझने लगती हैं और नतीजा यह होता है कि वे ऐसे जाल में फँस जाती हैं कि जिंदगी भर उससे छुटकारा नहीं मिलता। मेरा तो यह विचार है कि या तो लड़कियाँ चौंतीस बरस के बाद शादियाँ करें जब वे अच्छा-बुरा समझने के लायक हो जाएँ, नहीं तो मुझे तो हिन्दुओं का कायदा सबसे ज्यादा पसन्द आता है कि चौदह वर्ष के पहले ही लड़की की शादी कर दी जाए और उसके बाद उसका संसर्ग उसी आदमी से रहे जिससे उसे जिंदगी भर निबाह करना है और अपने विकास-क्रम से दोनों ही एक-दूसरे को समझते चलें। लेकिन यह तो सबसे भद्दा तरीका है कि चौदह और चौंतीस बरस के बीच में लड़की की शादी हो, या उसे आजादी दी जाए। मैंने तो स्वयं अपने ऊपर बन्धन बाँध लिये थे।....तुम्हारी तो शादी अभी नहीं हुई?''

''नहीं।''

''बहुत ठीक, तुम चौंतीस बरस के पहले शादी मत करना, अच्छा हाँ, और क्या बताया चन्दर ने मेरे बारे में?''

''और तो कुछ खास नहीं। हाँ, यह कह रहा था, आपको चाय और सिगरेट बहुत अच्छी लगती है। ओहो, देखिए मैं भूल ही गयी, लीजिए सिगरेट मँगवाती हूँ।'' और सुधा ने घंटी बजायी।

''रहने दीजिए, मैं सिगरेट छोड़ रही हूँ।''

''क्यों?''

''इसलिए कि कपूर को अच्छा नहीं लगता और अब वह मेरा दोस्त बन गया है, और दोस्ती में एक-दूसरे से निबाह ही करना पड़ता है। उसने आपसे यह नहीं बताया कि मैंने उसे दोस्त मान लिया है?'' पम्मी ने पूछा।

''जी हाँ, बताया था, अच्छा तो चाय लीजिए!''

''हाँ-हाँ, चाय मँगवा लीजिए। आपका कपूर से क्या सम्बन्ध है?'' पम्मी ने पूछा।

''कुछ नहीं। मुझसे भला क्या सम्बन्ध होगा उनका, जब देखिए तब बिगड़ते रहते हैं मुझ पर और बाहर गये हैं और आज तक कोई खत नहीं भेजा। ये कहीं सम्बन्ध हैं?''

''नहीं, मेरा मतलब आप उनसे घनिष्ठ हैं!''

''हाँ, कभी वह छिपाते तो नहीं मुझसे कुछ! क्यों?''

''तब तो ठीक है, सच्चे दिल के आदमी मालूम पड़ते हैं। आप तो यह बता सकती हैं कि उन्हें क्या-क्या चीजें पसन्द हैं?''

''हाँ...उन्हें कविता पसन्द है। बस कविता के बारे में बात न कीजिए, कविता सुना दीजिए उन्हें या कविता की किताब दे दीजिए उन्हें और उनको सुबह घूमना पसन्द है। रात को गंगाजी की सैर करना पसन्द है। सिनेमा तो बेहद पसन्द है। और, और क्या, चाय की पत्ती का हलुआ पसन्द है।''

''यह क्या होता है?''

''मेरा मतलब बिना दूध की चाय उन्हें पसन्द है।''

''अच्छा, अच्छा। देखिए आप सोचेंगी कि मैं इस तरह से मि. कपूर के बारे में पूछ रही हूँ जैसे मैं कोई जासूस होऊँ, लेकिन असल बात मैं आपको बता दूँ। मैं पिछले दो-तीन साल से अकेली रहती रही। किसी से भी नहीं मिलती-जुलती थी। उस दिन मिस्टर कपूर गये तो पता नहीं क्यों मुझ पर प्रभाव पड़ा। उनको देखकर ऐसा लगा कि यह आदमी है जिसमें दिल की सच्चाई है, जो आदमियों में बिल्कुल नहीं होती। तभी मैंने सोचा, इनसे दोस्ती कर लूँ। लेकिन चूँकि एक बार दोस्ती करके विवाह, और विवाह के बाद अलगाव, मैं भोग चुकी हूँ इसलिए इनके बारे में पूरी जाँच-पड़ताल कर लेना चाहती हूँ। लेकिन दोस्त तो अब बना ही चुकी हूँ।'' चाय आ गयी थी और पम्मी ने सुधा के प्याले में चाय ढाली।

''न, मैं तो अभी खाना खा चुकी हूँ।'' सुधा बोली।

''पम्मी ने दो-तीन चुस्कियों के बाद कहा-''आपके बारे में चन्दर ने मुझसे कहा था।''

''कहा होगा!'' सुधा मुँह बिगाड़कर बोली-''मेरी बुराई कर रहे होंगे और क्या?''

पम्मी चाय के प्याले से उठते हुए धुएँ को देखती हुई अपने ही खयाल में डूबी थी। थोड़ी देर बाद बोली, ''मेरा अनुमान गलत नहीं होता। मैंने कपूर को देखते ही समझ लिया था कि यही मेरे लिए उपयुक्त मित्र हैं। मैंने कविता पढ़नी बहुत दिनों से छोड़ दी। लेकिन किसी कवयित्री ने, शायद मिसेज ब्राउनिंग ने कहीं लिखा था, कि वह मेरी जिंदगी में रोशनी बनकर आया, उसे देखते ही मैं समझ गयी कि यह वह आदमी है जिसके हाथ में मेरे दिल के सभी राज

सुरक्षित रहेंगे। वह खेल नहीं करेगा, और प्यार भी नहीं करेगा। जिंदगी में आकर भी जिंदगी से दूर और सपनों में बँधकर भी सपनों से अलग...यह बात कपूर पर बहुत लागू होती है। माफ करना मिस सुधा, मैं आपसे इसलिए कह रही हूँ कि आप इनकी घनिष्ठ हैं और आप उन्हें बतला देंगी कि मेरा क्या खयाल है उनके बारे में। अच्छा, अब मैं चलूँगी।''

''बैठिए न!'' सुधा बोली।

''नहीं, मेरा भाई अकेला खाने के लिए इन्तजार कर रहा होगा।'' उठते हुए पम्मी ने कहा।

''आप बहुत अच्छी हैं। इस वक्त आप आयीं तो मैं थोड़ी-सी चिन्ता भूल गयी वरना मैं तीन दिन से उदास थी। बैठिए, कुछ और चन्दर के बारे में बताइए न!''

''अब नहीं। वह अपने ढंग का अकेला आदमी है, यह मैं कह सकती हूँ. ..ओह तुम्हारी आँखें बड़ी सुन्दर हैं। देखूँ।'' और छोटे बच्चे की तरह उसके मुँह को हथेलियों से ऊपर उठाकर पम्मी ने कहा, ''बहुत सुन्दर आँखें हैं। माफ करना, मैं कपूर से भी इतनी ही बेतकल्लुफ हूँ!''

सुधा झेंप गयी। उसने आँखें नीची कर लीं।

पम्मी ने अपनी साइकिल उठाते हुए कहा-"कपूर के साथ आप आइएगा। और आपने कहा था कपूर को कविता पसन्द है।''

''जी हाँ, गुडनाइट।''

जब पम्मी बँगले पर पहुँची तो उसकी साइकिल के कैरियर में अँगरेजी कविता के पाँच-छह ग्रन्थ बँधे थे।

आठ बज चुके थे। सुधा जाकर अपने बिस्तरे पर लेटकर पढने लगी। अँगरेजी कविता पढ़ रही थी। अँगरेजी लड़कियाँ कितनी आजाद और स्वच्छन्द होती होंगी! जब पम्मी, जो ईसाई है, इतनी आजाद है, उसने सोचा और पम्मी कितनी अच्छी है उसकी बेतकल्लुफी में भोलापन तो नहीं है, पर सरलता बेहद है। बड़ा साफ दिल है, कुछ छिपाना नहीं जानती। और सुधा से सिर्फ पाँच-छह साल बड़ी है, लेकिन सुधा उसके सामने बच्ची लगती है। कितना जानती है पम्मी और कितनी अच्छी समझ है उसकी। और चन्दर की तारीफ करते नहीं थकती। चन्दर के लिए उसने सिगरेट छोड़ दी। चन्दर उसका दोस्त है, इतनी पढ़ी-लिखी लड़की के लिए रोशनी का देवदूत है। सचमुच चन्दर पर सुधा को गर्व है। और उसी चन्दर से वह लड़-झगड़ लेती है, इतनी मान-मनुहार कर लेती

है और चन्दर सब बर्दाश्त कर लेता है वरना चन्दर के इतने बड़े-बड़े दोस्त हैं और चन्दर की इतनी इज्जत है। अगर चन्दर चाहे तो सुधा की रत्ती भर परवाह न करे लेकिन चन्दर सुधा की भली-बुरी बात बर्दाश्त कर लेता है। और वह कितना परेशान करती रहती है चन्दर को।

कभी अगर सचमुच चन्दर बहुत नाराज हो गया और सचमुच हमेशा के लिए बोलना छोड़ दे तब क्या होगा? या चन्दर यहाँ से कहीं चला जाए तब क्या होगा? खैर, चन्दर जाएगा तो नहीं इलाहाबाद छोड़कर, लेकिन अगर वह खुद कहीं चली गयी तब क्या होगा? वह कहाँ जाएगी! अरे पापा को मनाना तो बायें हाथ का खेल है, और ऐसा प्यार वह करेगी नहीं कि शादी करनी पड़े।

लेकिन यह सब तो ठीक है। पर चन्दर ने चिठ्ठी क्यों नहीं भेजी? क्या नाराज होकर गया है? जाते वक्त सुधा ने परेशान तो बहुत किया था। होलडॉल की पेटी का बक्सुआ खोल दिया था और उठाते ही चन्दर के हाथ से सब कपड़े बिखर गये। चन्दर कुछ बोला नहीं लेकिन जाते समय उसने सुधा को डाँटा भी नहीं और न यही समझाया कि घर का खयाल रखना, अकेले घूमना मत, महराजिन से लड़ना मत, पढ़ती रहना। इससे सुधा समझ तो गयी थी कि वह नाराज है, लेकिन कुछ कहा नहीं।

लेकिन चन्दर को खत तो भेजना चाहिए था। चाहे गुस्से का ही खत क्यों न होता? बिना खत के मन उसका कितना घबरा रहा है। और क्या चन्दर को मालूम नहीं होगा। यह कैसे हो सकता है? जब इतनी दूर बैठे हुए सुधा को मालूम हो गया कि चन्दर नाखुश है तो क्या चन्दर को नहीं मालूम होगा कि सुधा का मन उदास हो गया है। जरूर मालूम होगा। सोचते-सोचते उसे जाने कब नींद आ गयी और नींद में उसे पापा या चन्दर की चिठ्ठी मिली या नहीं, यह तो नहीं मालूम, लेकिन इतना जरूर है कि जैसे यह सारी सृष्टि एक बिन्दु से बनी और एक बिन्दु में समा गयी, उसी तरह सुधा की यह भादों की घटाओं जैसी फैली हुई बेचैनी और गीली उदासी एक चन्दर के ध्यान से उठी और उसी में समा गयी।

दूसरे दिन सुबह सुधा आँगन में बैठी हुई आलू छील रही थी और चन्दर का इन्तजार कर रही थी। उसी दिन रात को पापा आ गये थे और दूसरे दिन सुबह बुआजी और बिनती।

''सुधी!'' किसी ने इतने प्यार से पुकारा कि हवाओं में रस भर गया।

''अच्छा! आ गये चन्दर!'' सुधा आलू छोड़कर उठ बैठी, ''क्या लाये हमारे लिए लखनऊ से?''

''बहुत कुछ, सुधा!''

''के है सुधा!'' सहसा कमरे में से कोई बोला।

''चन्दर हैं।'' सुधा ने कहा, ''चन्दर, बुआ आ गयीं।'' और कमरे से बुआजी बाहर आयीं।

''प्रणाम, बुआजी!'' चन्दर बोला और पैर छूने के लिए झुका।

''हाँ, हाँ, हाँ!'' बुआजी तीन कदम पीछे हट गयीं। ''देखत्यों नैं हम पूजा की धोती पहने हैं। ई के है, सुधा!''

सुधा ने बुआ की बात का कुछ जवाब नहीं दिया–''चन्दर, चलो अपने कमरे में, यहाँ बुआ पूजा करेंगी।''

चन्दर अलग हटा। बुआ ने हाथ के पंचपात्र से वहाँ पानी छिड़का और जमीन फूँकने लगीं। ''सुधा, बिनती को भेज देव।'' बुआजी ने धूपदानी में महराजिन से कोयला लेते हुए कहा।

सुधा अपने कमरे में पहुँचकर चन्दर को खाट पर बिठाकर नीचे बैठ गयी।

''अरे, ऊपर बैठो।''

''नहीं, हम यहीं ठीक हैं।'' कहकर वह बैठ गयी और चन्दर की पैंट पर पेन्सिल से लकीरें खींचने लगीं।

''अरे यह क्या कर रही हो?'' चन्दर ने पैर उठाते हुए कहा।

''तो तुमने इतने दिन क्यों लगाये?'' सुधा ने दूसरे पाँयचे पर पेन्सिल लगाते हुए कहा।

''अरे, बड़ी आफत में फँस गये थे, सुधा। लखनऊ से हम लोग गये बरेली। वहाँ एक उत्सव में हम लोग भी गये और एक मिनिस्टर भी पहुँचे। कुछ सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, और मजदूरों ने विरोध प्रदर्शन किया। फिर तो पुलिसवालों और मजदूरों में जमकर लड़ाई हुई। वह तो कहो एक बेचारा सोशलिस्ट लड़का था कैलाश मिश्रा, उसने हम लोगों की जान बचायी, वरना पापा और हम, दोनों ही अस्पताल में होते...''

''अच्छा! पापा ने हमें कुछ बताया नहीं!'' सुधा घबराकर बोली और बड़ी देर तक बरेली, उपद्रव और कैलाश मिश्रा की बात करती रही।

''अरे ये बाहर गा कौन रहा है?'' चन्दर ने सहसा पूछा।

बाहर कोई गाता हुआ आ रहा था, ''आँचल में क्यों बाँध लिया मुझ परदेशी का प्यार....आँचल में क्यों...'' और चन्दर को देखते ही उस लड़की ने चौंककर कहा, ''अरे?'' क्षण-भर स्तब्ध, और फिर शरम से लाल होकर भागी बाहर।

''अरे, भागती क्यों है? यही तो हैं चन्दर।'' सुधा ने कहा।

लड़की बाहर रुक गयी और गरदन हिलाकर इशारे से कहा, ''मैं नहीं आऊँगी। मुझे शरम लगती है।''

''अरे चली आ, देखो हम अभी पकड़ लाते हैं, बड़ी झक्की है यह।'' कहकर सुधा उठी, वह फिर भागी। सुधा पीछे-पीछे भागी। थोड़ी देर बाद सुधा अन्दर आयी तो सुधा के हाथ में उस लड़की की चोटी और वह बेचारी बुरी तरह अस्त-व्यस्त थी। दाँत से अपने आँचल का छोर दबाये हुए थी बाल की तीन-चार लटें मुँह पर झुक रही थीं और लाज के मारे सिमटी जा रही थी और आँखें थीं कि मुस्काये या रोये, यह तय ही नहीं कर पायी थीं।

''देखो...चन्दर...देखो।'' सुधा हाँफ रही थी-''यही है बिनती मोटकी कहीं की, इतनी मोटी है कि दम निकल गया हमारा।'' सुधा बुरी तरह हाँफ रही थी।

चन्दर ने देखा-बेचारी की बुरी हालत थी। मोटी तो बहुत नहीं थी पर हाँ, गाँव की तन्दुरुस्ती थी, लाल चेहरा, जिसे शरम ने तो दूना बना दिया था। एक हाथ से अपनी चोटी पकड़े थी, दूसरे से अपने कपड़े ठीक कर रही थी और दाँत से आँचल पकड़े।

''छोड़ दो उसे, यह क्या है सुधा! बड़ी जंगली हो तुम।'' चन्दर ने डाँटकर कहा।

''जंगली मैं हूँ या यह?'' चोटी छोड़कर सुधा बोली-''यह देखो, दाँत काट लिया है इसने।'' सचमुच सुधा के कन्धे पर दाँत के निशान बने हुए थे।

चन्दर इस सम्भावना पर बेतहाशा हँसने लगा कि इतनी बड़ी लड़की दाँत काट सकती है-''क्यों जी, इतनी बड़ी हो गयी और दाँत काटती हो?'' उसकी हँसी रुक नहीं रही थी। ''सचमुच यह तो बड़े मजे की लड़की है। बिनती है इसका नाम? क्यों रे, महुआ बीनती थी क्या वहाँ, जो बुआजी ने बिनती नाम रखा है?''

वह पल्ला ठीक से ओढ़ चुकी थी। बोली, ''नमस्ते।''

चन्दर और सुधा दोनों हँस पड़े। ''अब इतनी देर बाद याद आयी।'' चन्दर और भी हँसने लगा।

''बिनती! ए बिनती!'' बुआ की आवाज आयी। बिनती ने सुधा की और देखा और चली गयी।

''और कहो सुधी,'' चन्दर बोला-''क्या हाल-चाल रहा यहाँ?''

''फिर भी एक चिठ्ठी भी तो नहीं लिखी तुमने।'' सुधा बड़ी शिकायत के स्वर में बोली, ''हमें रोज रुलाई आती थी। और तुम्हारी वो आयी थी।''

''हमारी वो?'' चन्दर ने चौंककर पूछा।

''अरे हाँ, तुम्हारी पम्मी रानी।''

''अच्छा वो आयी थीं। क्या बात हुई?''

''कुछ नहीं, तुम्हारी तसवीर देख-देखकर रो रही थीं।'' सुधा ने उँगलियाँ नचाते हुए कहा।

''मेरी तसवीर देखकर! अच्छा, और थी कहाँ मेरी तसवीर?''

''अब तुम तो बहस करने लगे, हम कोई वकील हैं! तुम कोई नयी बात बताओ।'' सुधा बोली।

''हम तो तुम्हें बहुत-बहुत बात बताएँगे। पूरी कहानी है।''

इतने में बिनती आयी। उसके हाथ में एक तश्तरी थी और एक गिलास। तश्तरी में कुछ मिठाई थी, और गिलास में शरबत। उसने लाकर तश्तरी चन्दर के सामने रख दी।

''ना भई, हम नहीं खाएँगे।'' चन्दर ने इनकार किया।

बिनती ने सुधा की और देखा।

''खा लो। लगे नखरा करने। लखनऊ से आ रहे हैं न, तकल्लुफ न करें तो मालूम कैसे हो?'' सुधा ने मुँह चिढ़ाते हुए कहा। चन्दर मुसकराकर खाने लगा।

''दीदी के कहने पर खाने लगे आप!'' बिनती ने अपने हाथ की अँगूठी की और देखते हुए कहा।

चन्दर हँस दिया, कुछ बोला नहीं। बिनती चली गयी।

''बड़ी अच्छी लड़की मालूम पड़ती है यह।'' चन्दर बोला।

''बहुत प्यारी है। और पढ़ने में हमारी तरह नहीं है, बहुत तेज है।''

''अच्छा! तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है?''

''मास्टर साहब बहुत अच्छा पढ़ाते हैं। और चन्दर, अब हम खूब बात करते हैं उनसे दुनिया-भर की और वे बस हमेशा सिर नीचे किये रहते हैं। एक दिन

पढ़ते वक्त हम गरी पास में रखकर खाते गये, उन्हें मालूम ही नहीं हुआ। उनसे एक दिन कविता सुनवा दो।'' सुधा बोली।

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया और डॉ. साहब के कमरे में जाकर किताबें उलटने लगा।

इतने में बुआजी का तेज स्वर आया–''हमैं मालूम होता कि ई मुँह–झौंसी हमके ऐसी नाच नचइहै तौ हम पैदा होतै गला घोंट देइत। हरे राम! अक्काश सिर पर उठाये है। कै घंटे से नरियात–नरियात गटई फट गयी। ई बोलतै नाहीं जैसे साँप सूँघ गवा होय।''

प्रोफेसर शुक्ला के घर में वह नया सांस्कृतिक तत्त्व था। कितनी शालीनता और शिष्टता से वह रहते थे। कभी इस तरह की भाषा भी उनके घर में सुनने को मिलेगी, इसकी चन्दर को जरा भी उम्मीद न थी। चन्दर चौंककर उधर देखने लगा। डॉ. शुक्ला समझ गये। कुछ लज्जित–से और मुसकराकर ग्लानि छिपाते हुए–से बोले, ''मेरी विधवा बहन है, कल गाँव से आयी है लड़की को पहुँचाने।''

उसके बाद कुछ पटकने का स्वर आया, शायद किसी बरतन के। इतने में सुधा आयी, गुस्से से लाल–''सुना पापा तुमने, बुआ बिनती को मार डालेंगी।''

''क्या हुआ आखिर?'' डॉ. शुक्ला ने पूछा।

''कुछ नहीं, बिनती ने पूजा का पंचपात्र उठाकर ठाकुरजी के सिंहासन के पीछे रख दिया था। उन्हें दिखाई नहीं पड़ा, तो गुस्सा बिनती पर उतार रही हैं।''

इतने में फिर उनकी आवाज आयी–''पैदा करते बखत बहुत अच्छा लाग रहा, पालत बखत टें बोल गये। मर गये रह्यो तो आपन सन्तानौ अपने साथ लै जात्यौ। हमारे मूड़ पर ई हत्या काहे डाल गयौ। ऐसी कुलच्छनी है कि पैदा होतेहिन बाप को खाय गयी।''

''सुना पापा तुमने?''

''चलो हम चलते हैं।'' डॉ. शुक्ला ने कहा। सुधा वहीं रह गयी। चन्दर से बोली, ''ऐसा बुरा स्वभाव है बुआ का कि बस। बिनती ऐसी है कि इतना बर्दाश्त कर लेती है।''

बुआ ने ठाकुरजी का सिंहासन साफ करते हुए कहा, ''रोवत काहे हो, कौन तुम्हारे माई–बाप को गरियावा है कि ई अँसुआ ढरकाय रही हो। ई सब चोचला अपने ओ को दिखाओ जायके। दुई महीना और हैं–अबहिन से उधियानी न जाओ।''

अब अभद्रता सीमा पार कर चुकी थी।

''बिनती, चलो कमरे के अन्दर, हटो सामने से।'' डॉ. शुक्ला ने डाँटकर कहा, ''अब ये चरखा बन्द होगा या नहीं। कुछ शरम-हया है या नहीं तुममें?''

बिनती सिसकते हुए अन्दर गयी। स्टडी रूम में देखा कि चन्दर है तो उलटे पाँव लौट आयी सुधा के कमरे में और फूट-फूटकर रोने लगी।

डॉ. शुक्ला लौट आये-''अब हम ये सब करें कि अपना काम करें! अच्छा कल से घर में महाभारत मचा रखा है। कब जाएँगी ये, सुधा?''

''कल जाएँगी। पापा अब बिनती को कभी मत भेजना इनके पास।'' सुधा ने गुस्सा-भरे स्वर में कहा।

''अच्छा-जाओ, हमारा खाना परसो। चन्दर, तुम अपना काम यहाँ करो। यहाँ शोर ज्यादा हो तो तुम लाइब्रेरी में चले जाना। आज भर की तकलीफ है।''

चन्दर ने अपनी कुछ किताबें उठायीं और उसने चला जाना ही ठीक समझा। सुधा खाना परोसने चली गयी। बिनती रो-रोकर और तकिये पर सिर पटककर अपनी कुंठा और दु:ख उतार रही थी। बुआ घंटी बजा रही थीं, दबी जबान जाने क्या बकती जा रही थीं, यह घंटी के भक्ति-भावना-भरे मधुर स्वर में सुनायी नहीं देता था।

लेकिन बुआजी दूसरे दिन गयीं नहीं। जब तीन-चार दिन बाद चन्दर गया तो देखा बाहर के सेहन में डॉ. शुक्ला बैठे हुए हैं और दरवाजा पकड़कर बुआजी खड़ी बातें कर रही हैं। लेकिन इस वक्त बुआजी काफी गम्भीर थीं और किसी विषय पर मन्त्रणा कर रही थीं। चन्दर के पास पहुँचने पर फौरन वे चुप हो गयीं और चन्दर की और सशंकित नेत्रों से देखने लगीं। डॉ. शुक्ला बोले, ''आओ चन्दर, बैठो।'' चन्दर बगल की कुर्सी खींचकर बैठ गया तो डॉ. साहब बुआजी से बोले, ''हाँ, हाँ, बात करो, अरे ये तो घर के आदमी हैं। इनके बारे में सुधा ने नहीं बताया तुम्हें? ये चन्दर हैं हमारे शिष्य, बहुत अच्छा लड़का है।''

''अच्छा, अच्छा, भइया बइठो, तू तो एक दिन अउर आये रह्यो, बी. ए. में पढ़त हौ सुधा के संगे।''

''नहीं बुआजी, मैं रिसर्च कर रहा हूँ।''

''वाह, बहुत खुशी भई तोको देख के-हाँ तो सुकुल!'' वे अपने भाई से बोलीं, ''फिर यही ठीक होई। बिनती का बियाह टाल देव और अगर ई लड़का ठीक हुई जाय तो सुधा का बियाह अषाढ़-भर में निपटाय देव। अब अच्छा नाहीं

लागत। ठूँठ ऐसी बिटिया, सूनी माँग लिये छररावा करत है एहर-ओहर!'' बुआ बोलीं।

''हाँ, ये तो ठीक है।'' डॉ. शुक्ला बोले, ''मैं खुद सुधा का ब्याह अब टालना नहीं चाहता। बी.ए. तक की शिक्षा काफी है वरना फिर हमारी जाति में तो लड़के नहीं मिलते। लेकिन ये जो लड़का तुम बता रही हो तो घर वाले कुछ एतराज तो नहीं करेंगे! और फिर, लड़का तो हमें अच्छा लगा लेकिन घरवाले पता नहीं कैसे हों?''

''अरे तो घरवालन से का करै का है तोको। लड़का तो अलग है, अपने-आप पढ़ रहा है और लड़की अलग रहिए, न सास का डर, न ननद की धौंस। हम पत्री मँगवाये देइत ही, मिलवाय लेव।''

डॉ. शुक्ला ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

''तो फिर बिनती के बारे में का कहत हौ? अगहन तक टाल दिया जाय न?'' बुआजी ने पूछा।

''हाँ हाँ,'' डॉ. शुक्ला ने विचार में डूबे हुए कहा।

''तो फिर तुम ही इन जूतापिटऊ, बड़नक्कू से कह दियौ। आय के कल से हमरी छाती पर मूँग दलत हैं।'' बुआजी ने चन्दर की और किसी को निर्देशित करते हुए कहा और चली गयीं।

चन्दर चुपचाप बैठा था। जाने क्या सोच रहा था। शायद कुछ भी नहीं सोच रहा था! मगर फिर भी अपनी विचार-शून्यता में ही खोया हुआ-सा था। जब डॉ. शुक्ला उसकी और मुड़े और कहा, ''चन्दर!'' तो वह एकदम से चौंक गया और जाने किस दुनिया से लौट आया। डॉ. साहब ने कहा, ''अरे! तुम्हारी तबीयत खराब है क्या?''

''नहीं तो।'' एक फीकी हँसी हँसकर चन्दर ने कहा।

''तो मेहनत बहुत कर रहे होगे। कितने अध्याय लिखे अपनी थीसिस के? अब मार्च खत्म हो रहा है और पूरा अप्रैल तुम्हें थीसिस टाइप कराने में लगेगा और मई में हर हालत में जमा हो जानी चाहिए।''

''जी, हाँ।'' बड़े थके स्वर में चन्दर ने कहा, ''दस अध्याय हो ही गये हैं। तीन अध्याय और होने हैं और अनुक्रमणिका बनानी है। अप्रैल के पहले सप्ताह तक खत्म हो ही जायेगा। अब सिवा थीसिस के और करना ही क्या है?'' एक बहुत गहरी साँस लेते हुए चन्दर ने कहा और माथा थामकर बैठ गया।

''कुछ तबीयत ठीक नहीं है तुम्हारी। चाय बनवा लो! लेकिन सुधा तो है नहीं, न महराजिन है।'' डॉक्टर साहब बोले।

अरे सुधा, सुधा के नाम पर चन्दर चौंक गया। हाँ, अभी वह सुधा के ही बारे में सोच रहा था, जब बुआजी बात कर रही थीं। क्या सोच रहा था। देखो. ..उसने याद करने की कोशिश की पर कुछ याद ही नहीं आ रहा था, पता नहीं क्या सोच रहा था। पता नहीं था।..कुछ सुधा के ब्याह की बात हो रही थी शायद। क्या बात हो रही थी।..?

''कहाँ गयी है सुधा?'' चन्दर ने पूछा।

''आज शायद साबिर साहब के यहाँ गयी है। उनकी लड़की उनके साथ पढ़ती है न, वहीं गयी है बिनती के साथ।''

''अब इम्तहान को कितने दिन रह गये हैं, अभी घूमना बन्द नहीं हुआ उनका?''

''नहीं, दिन-भर पढ़ने के बाद उठी थी, उसके भी सिर में दर्द था, चली गयी। घूम-फिर लेने दो बेचारी को, अब तो जा ही रही है।'' डॉ. शुक्ला बोले, एक हँसी के साथ जिसमें आँसू छलके पड़ते थे।

''कहाँ तय हो रही है सुधा की शादी?''

''बरेली में। अब उसकी बुआ ने बताया है। जन्मपत्री दी है मिलवा लो, फिर तुम जरा सब बातें देख लेना। तुम तो थीसिस में व्यस्त रहोगे। मैं जाकर लड़का देख आऊँगा। फिर मई के बाद जुलाई तक सुधा का ब्याह कर देंगे। तुम्हें डॉक्टरेट मिल जाए और यूनिवर्सिटी में जगह मिल जाए। बस हम तो लड़का-लड़की दोनों से फारिग।'' डॉ. शुक्ला बहुत अजब-से स्वरों में बोले।

चन्दर चुप रहा।

''बिनती को देखा तुमने?'' थोड़ी देर बाद डॉक्टर ने पूछा।

''हाँ, वही न जिनको डाँट रही थीं ये उस दिन?''

''हाँ, वही। उसके ससुर आये हुए हैं, उनसे कहना है कि अब शादी अगहन-पूस के लिए टाल दें। पहले सुधा की हो जाए, वह बड़ी है और हम चाहते हैं कि बिनती को तब तक विदुषी का दूसरा खंड भी दिला दें। आओ, उनसे बात कर लें अभी।'' डॉ. शुक्ला उठे। चन्दर भी उठा।

और उसने अन्दर जाकर बिनती के ससुर के दिव्य दर्शन प्राप्त किये। वे एक पलँग पर बैठे थे, लेकिन वह अभागा पलँग उनके उदर के ही लिए नाकाफी

था। वे चित पड़े थे और साँस लेते थे तो पुराणों की उस कथा का प्रदर्शन हो जाता था कि धीरे-धीरे पृथ्वी का गोला वाराह के मुँह पर कैसे ऊपर उठा होगा। सिर पर छोटे-छोटे बाल और कमर में एक अँगोछे के अलावा सारा शरीर दिगम्बर। सुबह शायद गंगा नहाकर आये थे क्योंकि पेट तक में चन्दन, रोली लगी हुई थी।

डॉ. शुक्ला जाकर बगल में कुर्सी पर बैठ गये। ''कहिए दुबेजी, कुछ जलपान किया आपने?''

पलँग चरमराया। उस विशाल मांस-पिंड में एक भूडोल आया और दुबेजी जलपान की याद करके गद्‌गद होकर हँसने लगे। एक थलथलाहट हुई और कमरे की दीवारें गिरते-गिरते बचीं। दुबेजी ने उठकर बैठने की कोशिश की लेकिन असफल होकर लेटे-ही-लेटे कहा, ''हो-हो! सब आपकी कृपा है। खूब छकके मिष्ठान पाया। अब जरा सरबत-उरबत कुछ मिलै तो जो कुछ पेट में जलन है, सो शान्त हो,!'' उन्होंने पेट पर अपना हाथ फेरते हुए कहा।

''अच्छा, अरे भाई जरा शरबत बना देना।'' डॉ. शुक्ला ने दरवाजे की ओट में खड़ी हुई बुआजी से कहा। बुआजी की आवाज सुनाई पड़ी, ''बाप रे! ई ढाई मन की लहास कम-से-कम मसक-भर के शरबत तो उलीचौ लैईहैं।'' चन्दर को हँसी आ गयी, डॉ. शुक्ला मुसकराने लगे लेकिन दुबेजी के दिव्य मुखमंडल पर कहीं क्षोभ या उल्लास की रेखा तक न आयी। चन्दर मन-ही-मन सोचने लगा, प्राचीन काल के ब्रह्मानन्द सिद्ध महात्मा ऐसे ही होते होंगे।

बुआ एक गिलास में शरबत ले आयीं। दुबेजी काँख-काँखकर उठे और एक साँस में शरबत गले से नीचे उतारकर, गिलास नीचे रख दिया।

''दुबेजी, एक प्रार्थना है आपसे!'' डॉ. शुक्ला ने हाथ जोड़कर बड़े विनीत स्वर में कहा।

''नहीं! नहीं!'' बात काटकर दुबेजी बोले, ''बस अब हम कुछ न खावैं। आप बहुत सत्कार किये। हम एही से छक गये। आपको देखके तो हमें बड़ी प्रसन्नता भई। आप सचमुच दिव्य पुरुष हौ! और फिर आप तो लड़की के मामा हो, और बियाह-शादी में जो है सो मामा का पक्ष देखा जाता है। ई तो भगवान् ऐसा जोड़ मिलाइन हैं कि वरपक्ष अउर कन्यापक्ष दुइन के मामा बड़े ज्ञानी हैं। आप हैं तौन कालिज में पुरफेसर और ओहर हमार सार-लड़काकेर मामा जौन हैं तौन डाकार में मुंशी हैं, आपकी किरपा से।'' दुबेजी ने गर्व से कहा। चन्दर मुसकराने लगा।

''अरे सो तो आपकी नम्रता है, लेकिन मैं सोच रहा हूँ कि गरमियों में अगर ब्याह न रखकर जाड़े में रखा जाए तो ज्यादा अच्छा होगा। तब तक आपके सत्कार की हम कुछ तैयारी भी कर लेंगे।'' डॉ. शुक्ला बोले।

दुबेजी इसके लिए तैयार नहीं थे। वे बड़े अचरज में भरकर उनकी और देखने लगे। लेकिन बहुत कहने-सुनने के बाद अन्त में वे इस शर्त पर राजी हुए कि अगहन तक हर तीज-त्यौहार पर लड़के के लिए कुरता-धोती का कपड़ा और ग्यारह-बारह रुपये नजराना जाएगा और अगहन में अगर ब्याह हो रहा है तो सास-ननद और जिठानी के लिए गरम साड़ी जाएगी और जब-जब दुबेजी गंगा नहाने प्रयागराज आएँगे तो उनका रोचना एक थाल, कपड़े और एक स्वर्णमण्डित जौ से होगा। जब डॉ. शुक्ला ने यह स्वीकार कर लिया तो दुबेजी ने उठकर अपना झालम-झोला कुरता गले में अटकाया और अपनी गठरी हाथ में उठाकर बोले-

''अच्छा तो अब आज्ञा देव, हम चली अब, और ई रुपिया लड़की को दै दियो, अब बात पक्की है।'' और अपनी टेंट से उन्होंने एक मुड़ा-मुड़ाया तेल लगा हुआ पाँच रुपये का नोट निकाला और डॉ. साहब को दे दिया।

''चन्दर एक ताँगा कर दो, दुबेजी को। अच्छा, आओ हम भी चलें।''

जब ये लोग लौटे तो बुआजी एक थैली से कुछ धर-निकाल रही थीं। डॉ. शुक्ला ने नोट बुआजी को देते हुए कहा, ''लो, ये दे गये तुम्हारे समधी जी, लड़की को।''

पाँच का नोट देखा तो बुआजी सुलग उठीं-''न गहना न गुरिया, बियाह पक्का कर गये ई कागज के टुकड़े से। अपना-आप तो सोना और रुपिया और कपड़ा सब लीलै को तैयार और देत के दाँई पेट पिराता है जूता-पिटऊ का। अरे राम चाही तो जमदूत ई लहास की बोटी-बोटी करके रामजी के कुत्तन को खिलइहैं।''

चन्दर हँसी के मारे पागल हो गया।

बुआजी ने थैली का मुँह बाँधा और बोलीं, ''अबहिन तक बिनती का पता नै, और ऊ तुरकन-मलेच्छन के हियाँ कुछ खा-पी लिहिस तो फिर हमरे हियाँ गुजारा नाहि ना ओका। बड़ी आजाद हुई गयी है सुधा की सह पाय के। आवै देव, आज हम भद्रा उतारित ही।''

डॉ. शुक्ला अपने कमरे में चले गये। चन्दर को प्यास लगी थी। उसने बुआजी से एक गिलास पानी माँगा। बुआ ने एक गिलास में पानी दिया और बोलीं, ''बैठ के पियो बेटाय बैठ के। कुछ खाय का देई?''

''नहीं, बुआजी!'' बुआ बैठकर हँसिया से कटहल छीलने लगीं और चन्दर पानी पीता हुआ सोचने लगा, बुआजी सभी से इतनी मीठी बात करती हैं तो आखिर बिनती से ही इतनी कटु क्यों हैं?

इतने में अन्दर चप्पलों की आहट सुनाई पड़ी। चन्दर ने देखा, सुधा और बिनती आ गयी थीं। सुधा अपनी चप्पल उतारकर अपने कमरे में चली गयी और बिनती आँगन में आयी। बुआजी के पास आकर बोली, ''लाओ, हम तरकारी काट दें।''

''चल हट ओहर। पहिले नहाव जाय के। कुछ खाय तो नै रहयो। एत्ती देर कहाँ घूमति रहयो ? हम खूब अच्छी तरह जानित ही तूँ हमार नाक कटाइन के रहबो। पतुरियन के ढँग सीखे हैं!''

बिनती चुप। एक तीखी वेदना का भाव उसके मुँह पर आया। उसने आँखें झुका लीं। रोयी नहीं और चुपचाप सिर झुकाये हुए सुधा के कमरे में चली गयी।

चन्दर क्षण-भर खड़ा रहा। फिर सुधा के पास गया। सुधा के कमरे में अकेले बिनती खाट पर पड़ी थी-औंधे मुँह, तकिया में मुँह छिपाये। चन्दर को जाने कैसा लगा। उसके मन में बेहद तरस आ रहा था इस बेचारी लड़की के लिए, जिसके पिता हैं ही नहीं और जिसे प्रताड़ना के सिवा कुछ नहीं मिला। चन्दर को बहुत ही ममता लग रही थी इस अभागिनी के लिए। वह सोचने लगा, कितना अन्तर है दोनों बहनों में। एक बचपन से ही कितने असीम दुलार, वैभव और स्नेह में पली है और दूसरी प्रताड़ना और कितने अपमान में पली और वह भी अपनी ही सगी माँ से जो दुनिया भर के प्रति स्नेहमयी है, अपनी लड़की को छोडकर।

वह कुर्सी पर बैठकर चुपचाप यही सोचने लगा-अब आगे भी इस बेचारी को क्या सुख मिलेगा। ससुराल कैसी है, यह तो ससुर को देखकर ही मालूम देता है।

इतने में सुधा कपड़े बदलकर हाथ में किताब लिये, उसे पढ़ती हुई, उसी में डूबी हुई आयी और खाट पर बैठ गयी। ''अरे! बिनती! कैसे पड़ी हो? अच्छा तुम हो चन्दर! बिनती! उठो!'' उसने बिनती की पीठ पर हाथ रखकर कहा।

बिनती, जो अभी तक निचेष्ट पड़ी थी, सुधा के ममता-भरे स्पर्श पर फूट-फूटकर रो पड़ी। तो सुधा ने चन्दर से कहा, ''क्या हुआ बिनती रानी को।'' और बिनती भी जोरों से सिसकियाँ भरने लगी तो सुधा ने चन्दर से कहा, ''कुछ तुमने कहा होगा। चौदह दिन बाद आये और आते ही लगे रुलाने उसे। कुछ कहा

होगा तुमने! समझ गये। घूमने के लिए उसे भी डाँटा होगा। हम साफ-साफ बताये देते हैं चन्दर, हम तुम्हारी डाँट सह लेते हैं इसके ये मतलब नहीं कि अब तुम इस बेचारी पर भी रोब झाड़ने लगो। इससे कभी कुछ कहा तो अच्छी बात नहीं होगी!''

''तुम्हारे दिमाग का कोई पुरजा ढीला हो गया है क्या? मैं क्यों कहूँगा बिनती को कुछ!''

''बस फिर यही बात तुम्हारी बुरी लगती है।'' सुधा बिगड़कर बोली, ''क्यों नहीं कहोगे बिनती को कुछ? जब हमें कहते हो तो उसे क्यों नहीं कहोगे? हम तुम्हारे अपने हैं तो क्या वो तुम्हारी अपनी नहीं है?''

चन्दर हँस पड़ा-''सो क्यों नहीं है, लेकिन तुम्हारे साथ न ऐसे निबाह, न वैसे निबाह।''

''ये सब कुछ हम नहीं जानते! क्यों रो रही है यह?'' सुधा बोली धमकी के स्वर में।

''बुआजी ने कुछ कहा था।'' चन्दर बोला।

''अरे तो उसके लिए क्या रोना! इतना समझाया तुझे कि उनकी तो आदत है। हँसकर टाल दिया कर। चल उठ! हँसती है कि गुदगुदाऊँ।'' सुधा ने गुदगुदाते हुए कहा। बिनती ने उसका हाथ पकड़कर झटक दिया और फिर सिसकियाँ भरने लगी।

''नहीं मानेगी तू?'' सुधा बोली, ''अभी ठीक करती हूँ तुझे मैं। चन्दर, पकड़ो तो इसका हाथ।''

चन्दर चुप रहा।

''नहीं उठे। उठो, तुम इसका हाथ पकड़ लो तो हम अभी इसे हँसाते हैं।'' सुधा ने चन्दर का हाथ पकड़कर बिनती की और बढ़ते हुए कहा। चन्दर ने अपना हाथ खींच लिया और बोला, ''वह तो रो रही है और तुम बजाय समझाने के उसे परेशान कर रही हो।''

''अरे जानते हो, क्यों रो रही है? अभी इसके ससुर आये थे, वो बहुत मोटे थे तो ये सोच रही है कहीं 'वो' भी मोटे हों!'' सुधा ने फिर उसकी गरदन गुदगुदाकर कहा।

बिनती हँस पड़ी। सुधा उछल पड़ी-''लो, ये तो हँस पड़ी, अब रोओगी?'' अब फिर सुधा ने गुदगुदाना शुरू किया। बिनती पहले तो हँसी से लोट गयी फिर पल्ला सँभालते हुए बोली, ''छिह, दीदी! वो बैठे हैं कि नहीं!'' और उठकर बाहर जाने लगी।

''कहाँ चली?'' सुधा ने पूछा।

''जा रही हूँ नहाने।'' बिनती पल्लू से सिर ढँकते हुए चल दी।

''क्यों, मैंने तेरा बदन छू दिया इसलिए?'' सुधा हँसकर बोली, ''ऐ चन्दर, वो गेसू का छोटा भाई है न-हसरत, मैंने उसे छू लिया तो फौरन उसने जाकर अपना मुँह साबुन से धोया और अम्मीजान से बोला, ''मेरा मुँह जूठा हो गया।'' और आज हमने गेसू के अख्तर मियाँ को देखा। बड़े मजे के हैं। मैं तो गेसू से बात करती रही लेकिन बिनती और फूल ने बहुत छेड़ा उन्हें। बेचारे घबरा गये। फूल बहुत चुलबुली है और बड़ी नाजुक है। बड़ी बोलने वाली है और बिनती और फूल का खूब जोड़ मिला। दोनों खूब गाती हैं।''

''बिनती गाती भी है?'' चन्दर ने पूछा, ''हमने तो रोते ही देखा।''

''अरे बहुत अच्छा गाती है। इसने एक गाँव का गाना बहुत अच्छा गाया था।...अरे देखो वह सब बताने में हम तुम पर गुस्सा होना तो भूल ही गये। कहाँ रहे चार रोज? बोलो, बताओ जल्दी से।''

''व्यस्त थे सुधा, अब थीसिस तीन हिस्सा लिख गयी। इधर हम लगातार पाँच घंटे से बैठकर लिखते थे!'' चन्दर बोला।

''पाँच घंटे!'' सुधा बोली, ''दूध आजकल पीते हो कि नहीं?''

''हाँ-हाँ, तीन गायें खरीद ली हैं।..।'' चन्दर बोला।

''नहीं, मजाक नहीं, कुछ खाते-पीते रहना, कहीं तबीयत खराब हुई तो अब हमारा इम्तहान है, पड़े-पड़े मक्खी मारोगे और अब हम देखने भी नहीं आ सकेंगे।''

''अब कितना कोर्स बाकी है तुम्हारा?''

''कोर्स तो खत्म था हमारा। कुछ कठिनाइयाँ थीं सो पिछले दो-तीन हफ्ते में मास्टर साहब ने बता दी थीं। अब दोहराना है। लेकिन बिनती का इम्तहान मई में है, उसे भी तो पढ़ाना है।''

''अच्छा, अब चलें हम।''

''अरे बैठो! फिर जाने कै दिन बाद आओगे। आज बुआ तो चली जाएँगी फिर कल से यहीं पढ़ो न। तुमने बिनती के ससुर को देखा था?''

''हाँ, देखा था!'' चन्दर उनकी रुपरेखा याद करके हँस पड़ा-''बाप रे! पूरे टैंक थे वे तो।''

''बिनती की ननद से तुम्हारा ब्याह करवा दें। करोगे?'' सुधा बोली, ''लड़की इतनी ही मोटी है। उसे कभी डाँट लेना तो देखेंगे तुम्हारी हिम्मत।''

ब्याह! एकदम से चन्दर को याद आ गया। अभी बुआ ने बात की थी सुधा के ब्याह की। तब उसे कैसा लगा था? कैसा लगा था? उसका दिमाग घूम गया था। लगा जैसे एक असहनीय दर्द था या क्या था–जो उसकी नस-नस को तोड़ गया। एकदम...।

''क्या हुआ, चन्दर? अरे चुप क्यों हो गये? डर गये मोटी लड़की के नाम से?'' सुधा ने चन्दर का कन्धा पकड़कर झकझोरते हुए कहा।

चन्दर एक फीकी हँसी हँसकर रह गया और चुपचाप सुधा की और देखने लगा। सुधा चन्दर की निगाह से सहम गयी। चन्दर की निगाह में जाने क्या था, एक अजब-सा पथराया सूनापन, एक जाने किस दर्द की अमंगल छाया, एक जाने किस पीड़ा की मूक आवाज, एक जाने कैसी पिघलती हुई-सी उदासी और वह भी गहरी, जाने कितनी गहरी...और चन्दर था कि एकटक देखता जा रहा था, एकटक अपलक...।

सुधा को जाने कैसा लगा। ये अपना चन्दर तो नहीं, ये अपने चन्दर की निगाह तो नहीं है। चन्दर तो ऐसी निगाह से, इस तरह अपलक तो सुधा को कभी नहीं देखता था। नहीं, यह चन्दर की निगाह तो नहीं। इस निगाह में न शरारत है, न डाँट, न दुलार और न करुणा। इसमें कुछ ऐसा है जिससे सुधा बिल्कुल परिचित नहीं, जो आज चन्दर में पहली बार दिखाई पड़ रहा है। सुधा को जैसा डर लगने लगा, जैसे वह काँप उठी। नहीं, यह कोई दूसरा चन्दर है, जो उसे इस तरह देख रहा है। यह कोई अपरिचित है, कोई अजनबी, किसी दूसरे देश का कोई व्यक्ति जो सुधा को...।

''चन्दर, चन्दर! तुम्हें क्या हो गया!'' सुधा की आवाज मारे डर के काँप रही थी, उसका मुँह पीला पड़ गया, उसकी साँस बैठने लगी थी-''चन्दर...'' और जब उसका कुछ बस न चला तो उसकी आँखों में आँसू छलक आये।

हाथों पर एक गरम-गरम बूँद आकर पड़ते ही चन्दर चौंक गया। ''अरे सुधी! रोओ मत। नहीं पगली। हमारी तबीयत कुछ ठीक नहीं है, एक गिलास पानी तो ले आओ।''

सुधा अब भी काँप रही थी। चन्दर की आवाज में अभी भी वह मुलायमियत नहीं आ पायी थी। वह पानी लाने के लिए उठी।

''नहीं, तुम कहीं जाओ मत, तुम बैठो यहीं।'' उसने उसकी हथेली अपने माथे पर रखकर जोर से अपने हाथों में दबा ली और कहा, ''सुधा!...''

''क्यों, चन्दर!''

''कुछ नहीं!'' चन्दर ने आवाज दी लेकिन लगता था वह आवाज चन्दर की नहीं थी। न जाने कहाँ से आ रही थी।..

''क्या सिर में दर्द है? बिनती, एक गिलास पानी लाओ जल्दी से।''

सुधा ने आवाज दी। चन्दर जैसे पहले-सा हो गया-''अरे! अभी मुझे क्या हो गया था? तुम क्या बात कर रही थीं सुधा?''

''पता नहीं तुम्हें अभी क्या हो गया था?'' सुधा ने घबरायी हुई गौरेया की तरह सहमकर कहा।

चन्दर स्वस्थ हो गया-''कुछ नहीं सुधा! मैं ठीक हूँ। मैं तो यूँ ही तुम्हें परेशान करने के लिए चुप था।'' उसने हँसकर कहा।

''हाँ, चलो रहने दो। तुम्हारे सिर में दर्द है जरूर से।'' सुधा बोली। बिनती पानी लेकर आ गयी थी।

''लो, पानी पियो!''

''नहीं, हमें कुछ नहीं चाहिए।'' चन्दर बोला।

''बिनती, जरा पेनबाम ले जाओ।'' सुधा ने गिलास जबर्दस्ती उसके मुँह से लगाते हुए कहा। बिनती पेनबाम ले आयी थी-''बिनती, तू जरा लगा दे इनके। अरे खड़ी क्यों है? कुर्सी के पीछे खड़ी होकर माथे पर जरा हल्की उँगली से लगा दे।''

बिनती आज्ञाकारी लड़की की तरह आगे बढ़ी, लेकिन फिर हिचक गयी। किसी अजनबी लड़के के माथे पर कैसे पेनबाम लगा दे। ''चलती है या अभी काट के गाड़ देंगे यहीं। मोटकी कहीं की! खा-खाकर मुटानी है। जरा-सा काम नहीं होता।''

बिनती ने हारकर पेनबाम लगाया। चन्दर ने उसका हाथ हटा दिया तो सुधा ने बिनती के हाथ से पेनबाम लेकर कहा, ''आओ, हम लगा दें।'' बिनती पेनबाम देकर चली गयी तो चन्दर बोला, ''अब बताओ, क्या बात कर रही थीं? हाँ, बिनती के ब्याह की। ये उनके ससुर तो बहुत ही भद्दे मालूम पड़ रहे थे। क्या देखकर ब्याह कर रही हो तुम लोग?''

''पता नहीं क्या देखकर ब्याह कर रही हैं बुआ। असल में बुआ पता नहीं क्यों बिनती से इतनी चिढ़ती हैं, वह तो चाहती हैं किसी तरह से बोझ टले सिर से। लेकिन चन्दर, यह बिनती बड़ी खुश है। यह तो चाहती है किसी तरह जल्दी से ब्याह हो!'' सुधा मुसकराती हुई बोली।

''अच्छा, यह खुद ब्याह करना चाहती है!'' चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

''और क्या? अपने ससुर की खूब सेवा कर रही थी सुबह। बल्कि पापा तो कह रहे थे कि अभी यह बी.ए. कर ले तब ब्याह करो। हमसे पापा ने कहा इससे पूछने को। हमने पूछा तो कहने लगी बी.ए. करके भी वही करना होगा तो बेकार टालने से क्या फायदा। फिर पापा हमसे बोले कि कुछ वजहों से अगहन में ब्याह होगा, तो बड़े ताज्जुब से बोली, ''अगहन में?''

''सुधी, तुम जानती हो अगहन में उसका ब्याह क्यों टल रहा है? पहले तुम्हारा ब्याह होगा।'' चन्दर हँसकर बोला। वह पूर्णतया शान्त था और उसके स्वर में कम-से-कम बाहर सिवा चुहल के और कुछ भी न था।

''मेरा ब्याह, मेरा ब्याह!'' आँखें फाड़कर, मुँह फैलाकर, हाथ नचाकर, कुतूहल-भरे आश्चर्य से सुधा ने कहा और फिर हँस पड़ी, खूब हँसी-''कौन करेगा मेरा ब्याह? बुआ? पापा करने ही नहीं देंगे। हमारे बिना पापा का काम ही नहीं चलेगा और बाबूसाहब, तुम किस पर आकर रंग जमाओगे? ब्याह मेरा। हूँ!'' सुधा ने मुँह बिचकाकर उपेक्षा से कहा।

''नहीं सुधा, मैं गम्भीरता से कह रहा हूँ। तीन-चार महीने के अन्दर तुम्हारा ब्याह हो जाएगा।'' चन्दर उसे विश्वास दिलाते हुए बोला।

''अरे जाओ!'' सुधा ने हँसते हुए कहा, ''ऐसे हम तुम्हारे बनाने में आ जाएँ तो हो चुका।''

''अच्छा जाने दो। तुम्हारे पास कोई पोस्टकार्ड है? लाओ जरा इस कॉमरेड को एक चिठ्ठी तो लिख दें।'' चन्दर बात बदलकर बोला। पता नहीं क्यों इस विषय की बात के चलने में उसे कैसा लगता था।

''कौन कामरेड?'' सुधा ने पूछा, ''तुम भी कम्युनिस्ट हो गये क्या?''

''नहीं, जी, वो बरेली का सोशलिस्ट लड़का कैलाश जिसने झगड़े में हम लोगों की जान बचायी थी। हमने तुम्हैं बताया नहीं था सब किस्सा उस झगड़े का, जब हम और पापा बाहर गये थे!''

''हाँ-हाँ, बताया था। उसे जरूर खत लिख दो!'' सुधा ने पोस्टकार्ड देते हुए कहा, ''तुम्हैं पता मालूम है?''

चन्दर जब पोस्टकार्ड लिख रहा था तो सुधा ने कहा, ''सुनो, उसे लिख देना कि पापा की सुधा, पापा की जान बचाने के एवज में आपकी बहुत कृतज्ञ है और कभी अगर हो सके तो आप इलाहाबाद जरूर आएँ!...लिख दिया?''

''हाँ!'' चन्दर ने पोस्टकार्ड जेब में रखते हुए कहा।

''चन्दर, हम भी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर होंगे!'' सुधा ने मचलते हुए कहा।

''चलो, अब तुम्हें नयी सनक सवार हुई। तुम क्या समझ रही हो सोशलिस्ट पार्टी को। राजनीतिक पार्टी है वह। यह मत करना कि सोशलिस्ट पार्टी में जाओ और लौटकर आओ तो पापा से कहो-अरे हम तो समझे पार्टी है, वहाँ चाय-पानी मिलेगा। वहाँ तो सब लोग लेक्चर देते हैं।''

''धत, हम कोई बेवकूफ हैं क्या?'' सुधा ने बिगडकर कहा।

''नहीं, सो तो तुम बुद्धिसागर हो, लेकिन लड़कियों की राजनीतिक बुद्धि कुछ ऐसी ही होती है!'' चन्दर बोला।

''अच्छा रहने दो। लड़कियाँ न हों तो काम ही न चले।'' सुधा ने कहा।

''अच्छा, सुधा! आज कुछ रुपये दोगी। हमारे पास पैसे खतम हैं। और सिनेमा देखना है जरा।'' चन्दर ने बहुत दुलार से कहा।

''हाँ-हाँ, जरूर देंगे तुम्हें। मतलबी कहीं के!'' सुधा बोली, ''अभी-अभी तुम लड़कियों की बुराई कर रहे थे न?''

''तो तुम और लड़कियों में से थोड़े ही हो। तुम तो हमारी सुधा हो। सुधा महान।''

सुधा पिघल गयी-''अच्छा, कितना लोगे?'' अपनी पॉकेट में से पाँच रुपये का नोट निकालकर बोली, ''इससे काम चल जाएगा?''

''हाँ-हाँ, आज जरा सोच रहे हैं पम्मी के यहाँ जाएँ, तब सेकेंड शो जाएँ।''

''पम्मी रानी के यहाँ जाओगे। समझ गये, तभी तुमने चाचाजी से ब्याह करने से इनकार कर दिया। लेकिन पम्मी तुमसे तीन साल बड़ी है। लोग क्या कहैंगे?'' सुधा ने छेड़ा।

''ऊँह, तो क्या हुआ जी! सब यों ही चलता है!'' चन्दर हँसकर टाल गया।

''तो फिर खाना यहीं खाये जाओ और कार लेते जाओ।'' सुधा ने कहा।

''मँगाओ!'' चन्दर ने पलँग पर पैर फैलाते हुए कहा। खाना आ गया। और जब तक चन्दर खाता रहा, सुधा सामने बैठी रही और बिनती दौड़-दौड़कर पूड़ी लाती रही।

जब चन्दर पम्मी के बँगले पर पहुँचा तो शाम होने में देर नहीं थी। लेकिन अभी फर्स्ट शो शुरू होने में देरी थी। पम्मी गुलाबों के बीच में टहल रही थी और बर्टी एक अच्छा-सा सूट पहने लॉन पर बैठा था और घुटनों पर ठुड्डी रखे कुछ सोच-विचार में पड़ा था। बर्टी के चेहरे पर का पीलापन भी कुछ कम था।

वह देखने से इतना भयंकर नहीं मालूम पड़ता था। लेकिन उसकी आँखों का पागलपन अभी वैसा ही था और खूबसूरत सूट पहनने पर भी उसका हाल यह था कि एक कालर अन्दर था और एक बाहर।

पम्मी ने चन्दर को आते देखा तो खिल गयी। ''हल्लो, कपूर! क्या हाल है। पता नहीं क्यों आज सुबह से मेरा मन कह रहा था कि आज मेरे मित्र जरूर आएँगे। और शाम के वक्त तुम तो इतने अच्छे लगते हो जैसे वह जगमग सितारा जिसे देखकर कीट्स ने अपनी आखिरी सानेट लिखी थी।'' पम्मी ने एक गुलाब तोड़ा और चन्दर के कोट के बटन होल में लगा दिया। चन्दर ने बड़े भय से बर्टी की और देखा कि कहीं गुलाब को तोड़े जाने पर वह फिर चन्दर की गरदन पर सवार न हो जाए। लेकिन बर्टी कुछ बोला नहीं। बर्टी ने सिर्फ हाथ उठाकर अभिवादन किया और फिर बैठकर सोचने लगा।

पम्मी ने कहा, ''आओ, अन्दर चलें।'' और चन्दर और पम्मी दोनों ड्राइंग रूम में बैठ गये।

चन्दर ने कहा, ''मैं तो डर रहा था कि तुमने गुलाब तोड़कर मुझे दिया तो कहीं बर्टी नाराज न हो जाए, लेकिन वह कुछ बोला नहीं।''

पम्मी मुसकरायी, ''हाँ, अब वह कुछ कहता नहीं और पता नहीं क्यों गुलाबों से उसकी तबीयत भी इधर हट गयी। अब वह उतनी परवाह भी नहीं करता।''

''क्यों?'' चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

''पता नहीं क्यों। मेरी तो समझ में यह आता है कि उसका जितना विश्वास अपनी पत्नी पर था वह इधर धीरे-धीरे हट गया और इधर वह यह विश्वास करने लगा है कि सचमुच वह सार्जेंट को प्यार करती थी। इसलिए उसने फूलों को प्यार करना छोड़ दिया।''

''अच्छा! लेकिन यह हुआ कैसे? उसने तो अपने मन में इतना गहरा विश्वास जमा रखा था कि मैं समझता था कि मरते दम तक उसका पागलपन न छूटेगा।'' चन्दर ने कहा।

''नहीं, बात यह हुई कि तुम्हारे जाने के दो-तीन दिन बाद मैंने एक दिन सोचा कि मान लिया जाए अगर मेरे और बर्टी के विचारों में मतभेद है तो इसका मतलब यह नहीं कि मैं उसके गुलाब चुराकर उसे मानसिक पीड़ा पहुँचाऊँ और उसका पागलपन और बढ़ाऊँ। बुद्धि और तर्क के अलावा भावना और सहानुभूति का भी एक महत्त्व मुझे लगा और मैंने फूल चुराना छोड़ दिया। दो-तीन दिन वह

बेहद खुश रहा, बेहद खुश और मुझे भी बड़ा सन्तोष हुआ कि लो अब बर्टी शायद ठीक हो जाए। लेकिन तीसरे दिन सहसा उसने अपना खुरपा फेंक दिया, कई गुलाब के पौधे उखाड़कर फेंक दिये और मुझसे बोला, ''अब तो कोई फूल भी नहीं चुराता, अब भी वह इन फूलों में नहीं मिलती। वह जरूर सार्जेंट के साथ जाती है। वह मुझे प्यार नहीं करती, हरगिज नहीं करती, और वह रोने लगा।'' बस उसी दिन से वह गुलाबों के पास नहीं जाता और आजकल बहुत अच्छे-अच्छे सूट पहनकर घूमता है और कहता है-क्या मैं सार्जेंट से कम सुन्दर हूँ! और इधर वह बिल्कुल पागल हो गया है। पता नहीं किससे अपने-आप लड़ता रहता है।''

चन्दर ने ताज्जुब से सिर हिलाया।

''हाँ, मुझे बड़ा दुःख हुआ!'' पम्मी बोली, ''मैंने तो, हमदर्दी की कि फूल चुराने बन्द कर दिये और उसका नतीजा यह हुआ। पता नहीं क्यों कपूर, मुझे लगता है कि हमदर्दी करना इस दुनिया में सबसे बड़ा पाप है। आदमी से हमदर्दी कभी नहीं करनी चाहिए।''

चन्दर ने सहसा अपनी घड़ी देखी।

''क्यों, अभी तुम नहीं जा सकते। बैठो और बातें सुनो, इसलिए मैंने तुम्हें दोस्त बनाया है। आज दो-तीन साल हो गये, मैंने किसी से बातें ही नहीं की हैं और तुमसे इसलिए मैने मित्रता की है कि बातें करूँगी।''

चन्दर हँसा, ''आपने मेरा अच्छा उपयोग ढूँढ़ निकाला।''

''नहीं, उपयोग नहीं, कपूर! तुम मुझे गलत न समझना। जिंदगी ने मुझे इतनी बातें बतायी हैं और यह किताबें जो मैं इधर पढ़ने लगी हूँ, इन्होंने मुझे इतनी बातें बतायी हैं कि मैं चाहती हूँ कि उन पर बातचीत करके अपने मन का बोझ हल्का कर लूँ। और तुम्हें बैठकर सुननी होंगी सभी बातें!''

''हाँ, मैं तैयार हूँ लेकिन किताबें पढ़नी कब से शुरू कर दीं तुमने?'' चन्दर ने ताज्जुब से पूछा।

''अभी उस दिन मैं डॉ. शुक्ला के यहाँ गयी। उनकी लड़की से मालूम हुआ कि तुम्हें कविता पसन्द है। मैंने सोचा, उसी पर बातें करूँ और मैंने कविताएँ पढ़नी शुरू कर दीं।''

''अच्छा, तो देखता हूँ कि दो-तीन हफ्ते में भाई और बहन दोनों में कुछ परिवर्तन आ गये।''

पम्मी कुछ बोली नहीं, हँस दी।

''मैं सोचता हूँ पम्मी कि आज सिनेमा देखने जाऊँ। कार है साथ में, अभी पन्द्रह मिनट बाकी है। चाहो तो चलो।''

''सिनेमा! आज चार साल से मैं कहीं नहीं गयी हूँ। सिनेमा, हौजी, बाल डांस-सभी जगह जाना बन्द कर दिया है मैंने। मेरा दम घुटेगा हॉल के अन्दर लेकिन चलो देखें, अभी भी कितने ही लोग वैसे ही खुशी से सिनेमा देखते होंगे।'' एक गहरी साँस लेकर पम्मी बोली, ''बर्टी को ले चलोगे?''

''हाँ, हाँ! तो चलो उठो, फिर देर हो जाएगी!'' चन्दर ने घड़ी देखते हुए कहा।

पम्मी फौरन अन्दर के कमरे में गयी और एक जार्जेट का हल्का भूरा गाउन पहनकर आयी। इस रंग से वह जैसे निखर आयी। चन्दर ने उसकी और देखा, तो वह लजा गयी और बोली, ''इस तरह से मत देखो। मैं जानती हूँ यह मेरा सबसे अच्छा गाउन है। इसमें कुछ अच्छी लगती होऊँगी। चलो!'' और आकर उसने बेतकल्लुफी से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

दोनों बाहर आये तो बर्टी लॉन पर घूम रहा था। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। लेकिन वह बड़ी शान से सीना ताने था। ''बर्टी, आज मिस्टर कपूर मुझे सिनेमा दिखलाने जा रहे हैं। तुम भी चलोगे?''

''हूँ!'' बर्टी ने सिर हिलाकर जोर से कहा, ''सिनेमा जाऊँगा? कभी नहीं। भूलकर भी नहीं। तुमने मुझे क्या समझा है? मैं सिनेमा जाऊँगा?'' धीरे-धीरे उसका स्वर मन्द पड़ गया।..''अगर सिनेमा में वह सार्जेंट के साथ मिल गयी तो! तो मैं उसका गला घोंट दूँगा।'' अपने गले को दबाते हुए बर्टी बोला और इतनी जोर से दबा दिया अपना गला कि आँखें लाल हो गयीं और खाँसने लगा। खाँसी बन्द हुई तो बोला, ''वह मुझे प्यार नहीं करती। वह सार्जेंट को प्यार करती है। वह उसी के साथ घूमती है। अगर वह मिल जाएगी सिनेमा में तो उसकी हत्या कर डालूँगा, तो पुलिस आएगी और खेल खत्म हो जाएगा। तुम जानते हो मि. कपूर, मैं उससे कितना नफरत करता हूँ...और...और लेकिन नहीं, कौन जानता है मैं नफरत करता होऊँ और वह मुझे...कुछ समझ में नहीं आता, मैं पागल हूँ, ओफ।'' और वह सिर थामकर बैठ गया।

पम्मी ने चन्दर का हाथ पकड़कर कहा, ''चलो, यहाँ रहने से उसका दिमाग और खराब होगा। आओ!''

दोनों जाकर कार में बैठे। चन्दर खुद ही ड्राइव कर रहा था। पम्मी बोली, ''बहुत दिन से मैंने कार नहीं ड्राइव की है। लाओ, आज ड्राइव करूँ।''

पम्मी ने स्टीयरिंग अपने हाथ में ले ली। चन्दर इधर बैठ गया।

थोड़ी देर में कार रीजेंट के सामने जा पहुँची। चित्र था-'सेलामी, ब्हेयर शी डांस्ड' ('सेलामी, जहाँ वह नाची थी')। चन्दर ने टिकट लिया और दोनों ऊपर बैठ गये। अभी न्यूज रील चल रही थी। सहसा पम्मी ने कहा, ''कपूर, सेलामी की कहानी मालूम है?''

''न! क्या यह कोई उपन्यास है!'' चन्दर ने पूछा।

''नहीं, यह बाइबिल की एक कहानी है। असल में एक राजा था हैराद। उसने अपने भाई को मारकर उसकी पत्नी से अपनी शादी कर ली। उसकी भतीजी थी सेलामी, जो बहुत सुन्दर थी और बहुत अच्छा नाचती थी। हैराद उस पर मुग्ध हो गया। लेकिन सेलामी एक पैगम्बर पर मुग्ध थी। पैगम्बर ने सेलामी के प्रणय को ठुकरा दिया। एक बार हैराद ने सेलामी से कहा कि यदि तुम नाचो तो मैं तुम्हें कुछ दे सकता हूँ। सेलामी नाची और पुरस्कार में उसने अपना अपमान करने वाले पैगम्बर का सिर माँगा! हैराद वचनबद्ध था। उसने पैगम्बर का सिर तो दे दिया लेकिन बाद में इस भय से कि कहीं राज्य पर कोई आपत्ति न आये, उसने सेलामी को भी मरवा डाला।''

चन्दर को यह कहानी बहुत अच्छी लगी। तब तो चित्र बहुत ही अच्छा होगा, उसने सोचा। सुधा की परीक्षा है वरना सुधा को भी दिखला देता। लेकिन क्या नैतिकता है इन पाश्चात्य देशों की कि अपनी भतीजी पर ही हैराद मुग्ध हो गया। उसने कहा पम्मी से-

''लेकिन हैराद अपनी भतीजी पर ही मुग्ध हो गया?''

''तो क्या हुआ! यह तो सेक्स है मि. कपूर। सेक्स कितनी भयंकर शक्तिशाली भावना है, यह भी शायद तुम नहीं समझते। अभी तुम्हारी आँखों में बड़ा भोलापन है। तुम रुप की आग के संसार से दूर मालूम पड़ते हो, लेकिन शायद दो-एक साल बाद तुम भी जानोगे कि यह कितनी भयंकर चीज है। आदमी के सामने वक्त-बेवक्त, नाता-रिश्ता, मर्यादा-अमर्यादा कुछ भी नहीं रह जाता। वह अपनी भतीजी पर मोहित हुआ तो क्या? मैंने तो तुम्हारे यहाँ एक पौराणिक कहानी पढ़ी थी कि महादेव अपनी लड़की सरस्वती पर मुग्ध हो गये।''

''महादेव नहीं, ब्रह्मा।'' चन्दर बोला।

''हाँ, हाँ, ब्रह्मा। मैं भूल गयी थी। तो यह तो सेक्स है। आदमी को कहाँ ले जाता है, यह अन्दाज भी नहीं किया जा सकता। तुम तो अभी बच्चों की तरह

भोले हो और ईश्वर न करे तुम कभी इस प्याले का शरबत चखो। मैं भी तो तुम्हारी इसी पवित्रता को प्यार करती हूँ।'' पम्मी ने चन्दर की और देखकर कहा, ''तुम जानते हो, मैंने तलाक क्यों दिया? मेरा पति मुझे बहुत चाहता था लेकिन मैं विवाहित जीवन के वासनात्मक पहलू से घबरा उठी! मुझे लगने लगा, मैं आदमी नहीं हूँ बस मांस का लोथड़ा हूँ जिसे मेरा पति जब चाहे मसल दे, जब चाहे...ऊब गयी थी! एक गहरी नफरत थी मेरे मन में। तुम आये तो तुम बड़े पवित्र लगे। तुमने आते ही प्रणय-याचना नहीं की। तुम्हारी आँखों में भूख नहीं थी। हमदर्दी थी, स्नेह था, कोमलता थी, निश्छलता थी। मुझे तुम काफी अच्छे लगे। तुमने मुझे अपनी पवित्रता देकर जिला दिया।..।''

चन्दर को एक अजब-सा गौरव अनुभव हुआ और पम्मी के प्रति एक बहुत ऊँची आदर-भावना। उसने पवित्रता देकर जिला दिया। सहसा चन्दर के मन में आया-लेकिन यह उसके व्यक्तित्व की पवित्रता किसकी दी हुई है। सुधा की ही न! उसी ने तो उसे सिखाया है कि पुरुष और नारी में कितने ऊँचे सम्बन्ध रह सकते हैं।

''क्या सोच रहे हो?'' पम्मी ने अपना हाथ कपूर की गोद में रख दिया।

कपूर सिहर गया लेकिन शिष्टाचारवश उसने अपना हाथ पम्मी के कन्धे पर रख दिया। पम्मी ने दो क्षण के बाद अपना हाथ हटा लिया और बोली, ''कपूर, मैं सोच रही हूँ अगर यह विवाह संस्था हट जाए तो कितना अच्छा हो। पुरुष और नारी में मित्रता हो। बौद्धिक मित्रता और दिल की हमदर्दी। यह नहीं कि आदमी औरत को वासना की प्यास बुझाने का प्याला समझे और औरत आदमी को अपना मालिक। असल में बँधने के बाद ही, पता नहीं क्यों सम्बन्धों में विकृति आ जाती है। मैं तो देखती हूँ कि प्रणय विवाह भी होते हैं तो वह असफल हो जाते हैं क्योंकि विवाह के पहले आदमी औरत को ऊँची निगाह से देखता है, हमदर्दी और प्यार की चीज समझता है और विवाह के बाद सिर्फ वासना की। मैं तो प्रेम में भी विवाह-पक्ष में नहीं हूँ और प्रेम में भी वासना का विरोध करती हूँ।''

''लेकिन हर लड़की ऐसी थोड़े ही होती है!'' चन्दर बोला, ''तुम्हें वासना से नफरत हो लेकिन हर एक को तो नहीं।''

''हर एक को होती है। लड़कियाँ बस वासना की झलक, एक हल्की सिहरन, एक गुदगुदी पसन्द करती हैं। बस, उसी के पीछे उन पर चाहे जो दोष लगाया जाय लेकिन अधिकतर लड़कियाँ कम वासनाप्रिय होती हैं, लड़के ज्यादा।''

चित्र शुरू हो गया। वह चुप हो गयी। लेकिन थोड़ी ही देर में मालूम हुआ कि चित्र भ्रमात्मक था। वह बाइबिल की सेलामी की कहानी नहीं थी। वह एक अमेरिकन नर्तकी और कुछ डाकुओं की कहानी थी। पम्मी ऊब गयी। अब जब डाकू पकड़कर सेलामी को एक जंगल में ले गये तो इंटरवल हो गया और पम्मी ने कहा, ''अब चलो, आधे ही चित्र से तबीयत ऊब गयी।''

दोनों उठ खड़े हुए और नीचे आये।

''कपूर, अबकी बार तुम ड्राइव करो!'' पम्मी बोली।

''नहीं, तुम्हीं ड्राइव करो'' कपूर बोला।

''कहाँ चलें,'' पम्मी ने स्टार्ट करते हुए कहा।

''जहाँ चाहो।'' कपूर ने विचारों में डूबे हुए कहा।

पम्मी ने गाड़ी खूब तेज चला दी। सड़कें साफ थीं। पम्मी का कालर फहराने लगा और उड़कर चन्दर के गालों पर थपकियाँ लगाने लगा। चन्दर दूर खिसक गया। पम्मी ने चन्दर की और देखा और बजाय कालर ठीक करने के, गले का एक बटन और खोल दिया और चन्दर को पास खींच लिया। चन्दर चुपचाप बैठ गया। पम्मी ने एक हाथ स्टीयरिंग पर रखा और एक हाथ से चन्दर का हाथ पकड़े रही जैसे वह चन्दर को दूर नहीं जाने देगी। चन्दर के बदन में एक हल्की सिहरन नाच रही थी। क्यों? शायद इसलिए कि हवा ठंडी थी या शायद इसलिए कि...उसने पम्मी का हाथ अपने हाथ से हटाने की कोशिश की। पम्मी ने हाथ खींच लिया और कार के अन्दर की बिजली जला दी।

कपूर चुपचाप ठाकुर साहब के बारे में सोचता रहा। कार चलती रही। जब चन्दर का ध्यान टूटा तो उसने देखा कार मैकफर्सन लेक के पास रुकी है।

दोनों उतरे। बीच में सड़क थी, इधर नीचे उतरकर झील और उधर गंगा बह रही थी। आठ बजा होगा। रात हो गयी थी, चारों तरफ सन्नाटा था। बस सितारों की हल्की रोशनी थी। मैकफर्सन झील काफी सूख गयी थी। किनारे-किनारे मछली मारने के मचान बने थे।

''इधर आओ!'' पम्मी बोली। और दोनों नीचे उतरकर मचान पर जा बैठे। पानी का धरातल शान्त था। सिर्फ कहीं-कहीं मछलियों के उछलने या साँस लेने से पानी हिल जाता था। पास ही के नीवाँ गाँव में किसी के यहाँ शायद शादी थी जो शहनाई का हल्का स्वर हवाओं की तरंगों पर हिलता-डुलता हुआ आ रहा था। दोनों चुपचाप थे। थोड़ी देर बाद पम्मी ने कहा, ''कपूर, चुपचाप रहो, कुछ

बात मत करना। उधर देखो पानी में। सितारों का प्रतिबिम्ब देख रहे हो। चुप्पे से सुनो, ये सितारे क्या बातें कर रहे हैं।''

पम्मी सितारों की और देखने लगी। कपूर चुपचाप पम्मी की और देखता रहा। थोड़ी देर बाद सहसा पम्मी एक बाँस से टिककर बैठ गयी। उसके गले के दो बटन खुले हुए थे। और उसमें से रुप की चाँदनी फटी पड़ती थी। पम्मी आँखें बन्द किये बैठी थी। चन्दर ने उसकी और देखा और फिर जाने क्यों उससे देखा नहीं गया। वह सितारों की और देखने लगा। पम्मी के कालर के बीच से सितारे टूट-टूटकर बरस रहे थे।

सहसा पम्मी ने आँखें खोल दीं और चन्दर का कन्धा पकड़कर बोली, ''कितना अच्छा हो अगर आदमी हमेशा सम्बन्धों में एक दूरी रखे। सेक्स न आने दे। ये सितारे हैं, देखो कितने नजदीक हैं। करोड़ों बरस से साथ हैं, लेकिन कभी भी एक दूसरे को छूते तक नहीं, तभी तो संग निभ जाता है।'' सहसा उसकी आवाज में जाने क्या छलक आया कि चन्दर जैसे मदहोश हो गया-बोली वह-''बस ऐसा हो कि आदमी अपने प्रेमास्पद को निकटतम लाकर छोड़ दे, उसको बाँधे न। कुछ ऐसा हो कि होठों के पास खींचकर छोड़ दे।'' और पम्मी ने चन्दर का माथा होठों तक लाकर छोड़ दिया। उसकी गरम-गरम साँसें चन्दर की पलकों पर बरस गयीं...''कुछ ऐसा हो कि आदमी उसे अपने हृदय तक खींचकर फिर हटा दे।'' और चन्दर को पम्मी ने अपनी बाँहों में घेरकर अपने वक्ष तक खींचकर छोड़ दिया। वक्ष की गरमाई चन्दर के रोम-रोम में सुलग उठी, वह बेचैन हो उठा। उसके मन में आया कि वह अभी यहाँ से चला जाए। जाने कैसा लग रहा था उसे। सहसा पम्मी बोली, ''लेकिन नहीं, हम लोग मित्र हैं और कपूर, तुम बहुत पवित्र हो, निष्कलंक हो और तुम पवित्र रहोगे। मैं जितनी दूरी, जितना अन्तर, जितनी पवित्रता पसन्द करती हूँ, वह तुममें है और हम लोगों में हमेशा निभेगी जैसे इन सितारों में हमेशा निभती आयी है।''

चन्दर चुपचाप सोचने लगा, ''वह पवित्र है। एकाएक उसका मन जैसे ऊबने लगा। जैसे एक विहग शिशु घबराकर अपने नीड़ के लिए तड़प उठता है, वैसे ही वह इस वक्त तड़प उठा सुधा के पास जाने के लिए-क्यों? पता नहीं क्यों? यहाँ कुछ है, जो उसे जकड़ लेना चाहता है। वह क्या करे?

पम्मी उठी, वह भी उठा। बाँस का मचान हिला। लहरों में हरकत हुई। करोड़ों साल से अलग और पवित्र सितारे हिले, आपसे में टकराये और चूर-चूर होकर बिखर गये।

रात-भर चन्दर को ठीक से नींद नहीं आयी। अब गरमी काफी पड़ने लगी थी। एक सूती चादर से ज्यादा नहीं ओढ़ा जाता था और चन्दर ने वह भी ओढ़ना छोड़ दिया था, लेकिन उस दिन रात को अक्सर एक अजब-सी कँपकँपी उसे झकझोर जाती थी और वह कसकर चादर लपेट लेता था, फिर जब उसकी तबीयत घुटने लगती तो वह उठ बैठता था। उसे रात-भर नींद नहीं आयी, बार-बार झपकी आयी और लगा कि खिड़की के बाहर सुनसान अँधेरे में से अजब-सी आवाजें आती हैं और नागिन बनकर उसकी साँसों में लिपट जाती हैं। वह परेशान हो उठता है, इतने में फिर कहीं से कोई मीठी सतरंगी संगीत की लहर आती है और उसे सचेत और सजग कर जाती है। एक बार उसने देखा कि सुधा और गेसू कहीं चली जा रही हैं। उसने गेसू को कभी नहीं देखा था लेकिन उसने सपने में गेसू को पहचान लिया। लेकिन गेसू तो पम्मी की तरह गाउन पहने हुए थी! फिर देखा बिनती रो रही है और इतना बिलख-बिलखकर रो रही है कि तबीयत घबरा जाए। घर में कोई नहीं है। चन्दर समझ नहीं पाता कि वह क्या करे! अकेले घर में एक अपरिचित लड़की से बोलने का साहस भी नहीं होता उसका। किसी तरह हिम्मत करके वह समीप पहुँचा तो देखा अरे, यह तो सुधा है। सुधा लुटी हुई-सी मालूम पड़ती है। वह बहुत हिम्मत करके सुधा के पास बैठ गया। उसने सोचा, सुधा को आश्वासन दे लेकिन उसके हाथों पर जाने कैसे सुकुमार जंजीरें कसी हुई हैं। उसके मुँह पर किसी की साँसों का भार है। वह निश्चेष्ट है। उसका मन अकुला उठा। वह चौंककर जाग गया तो देखा वह पसीने से तर है। वह उठकर टहलने लगा। वह जाग गया था लेकिन फिर भी उसका मन स्वस्थ नहीं था। कमरे में ही टहलते-टहलते वह फिर लेट गया। लगा जैसे सामने की खुली खिड़की से सैकड़ों तारे टूट-टूटकर भयानक तेजी से आ रहे हैं और उसके माथे से टकरा-टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं। एक मर्मान्तक पीड़ा उसकी नसों में खौल उठी और लगा जैसे उसके अंग-अंग में चिताएँ धधक रही हैं।

जैसे-तैसे रात कटी और सुबह उठते ही वह यूनिवर्सिटी जाने से पहले सुधा के यहाँ गया। सुधा लेटी हुई पढ़ रही थी। डॉ. शुक्ला पूजा कर रहे थे। बुआजी शायद रात को चली गयी थीं। क्योंकि बिनती बैठी तरकारी काट रही थी और खुश नजर आ रही थी। चन्दर सुधा के कमरे में गया। देखते ही सुधा मुसकरा पड़ी। बोली कुछ नहीं लेकिन आते ही उसने चन्दर के अंग-अंग को अपनी निगाहों के स्वागत में समेट लिया। चन्दर सुधा के पैरों के पास बैठ गया।

''कल रात को तुम कार लेकर वापस आये तो चुप्पे से चले गये!'' सुधा बोली, ''कहो, कल कौन-सा खेल देखा?''

''कल बहुत बड़ा खेल देखा, बहुत बड़ा खेल, सुधी!'' चन्दर व्याकुलता से बोला, ''अरे जाने कैसा मन हो गया कि रात-भर नींद ही नहीं आयी।'' और उसके बाद चन्दर सब बता गया। कैसे वह सिनेमा गया। उसने पम्मी से क्या बात की। उसके बाद कैसे कार पर उसने चन्दर को पास खींच लिया। कैसे वे लोग मैकफर्सन झील गये और वहाँ पम्मी पागल हो गयी। फिर कैसे चन्दर को एकदम सुधा की याद आने लगी और फिर रात-भर चन्दर को कैसे-कैसे सपने आये। सुधा बहुत गम्भीर होकर मुँह में पेन्सिल दबाये कुहनी टेके बस चुपचाप सुनती रही और अन्त में बोली, ''तो तुम इतने परेशान क्यों हो गये, चन्दर! उसने तो अच्छी ही बात कही थी। यह तो अच्छा ही है कि ये सब जिसे तुम सेक्स कहते हो, यह सम्बन्धों में न आए। उसमें क्या बुराई है? क्या तुम चाहते हो कि सेक्स आए?''

''कभी नहीं, तुम मुझे अभी तक नहीं समझ पायीं।''

''तो ठीक है, तुम भी नहीं चाहते कि सेक्स आए और वह भी नहीं चाहती कि सेक्स आए तो झगड़ा क्या है? क्यों, तुम उदास क्यों हो इतने?'' सुधा बोली बड़े अचरज से।

''लेकिन उसका व्यवहार कैसा है?'' चन्दर ने सुधा से कहा।

''ठीक तो है। उसने बता दिया तुम्हें कि इतना अन्तर होना चाहिए। समझ गये। तुम लालची आदमी, चाहते होगे यह भी अन्तर न रहे! इसीलिए तुम उदास हो गये, छिह!'' होंठों में मुसकराहट और आँखों में शरारत की झलक छिपाते हुए सुधा बोली।

''तुम तो मजाक करने लगीं।'' चन्दर बोला।

सुधा सिर्फ चन्दर की और देखकर मुसकराती रही। चन्दर सामने लगी हुई तसवीर की और देखता रहा। फिर उसने सुधा के कबूतरों-जैसे उजले मासूम नन्हे पैर अपने हाथ में ले लिये और भर्रायी हुई आवाज में बोला, ''सुधा, तुम कभी हम पर विश्वास न हार बैठना।''

सुधा ने किताब बन्द करके रख दी और उठकर बैठ गयी। उसने चन्दर के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, ''पागल कहीं के! हमें कहते हो, अभी सुधा में बचपन है और तुममें क्या है! वाह रे छुईमुई के फूल! किसी ने हाथ पकड़ लिया, किसी ने बदन छू लिया तो घबरा गये! तुमसे अच्छी लड़कियाँ होती हैं।'' सुधा ने उसके दोनों हाथ झकझोरते हुए कहा।

''नहीं सुधी, तुम नहीं समझतीं। मेरी जिंदगी में एक ही विश्वास की चट्टान है। वह हो तुम। मैं जानता हूँ कि कितने ही जल-प्रलय हों लेकिन तुम्हारे सहारे मैं हमेशा ऊपर रहूँगा। तुम मुझे डूबने नहीं दोगी। तुम्हारे ही सहारे मैं लहरों से खेल भी सकता हूँ। लेकिन तुम्हारा विश्वास अगर कभी हिला तो मैं किन अँधेरी गहराइयों में डूब जाऊँगा, यह कभी मैं सोच नहीं पाता।'' चन्दर ने बड़े कातर स्वर में कहा।

सुधा बहुत गम्भीर हो गयी। क्षण-भर वह चन्दर के चेहरे की और देखती रही, फिर चन्दर के माथे पर झूलती हुई एक लट को ठीक करती हुई बोली, ''चन्दर, और मैं किसके विश्वास पर चल रही हूँ, बोलो! लेकिन मैंने तो कभी नहीं कहा कि चन्दर अपना विश्वास मत हारना! और क्या कहूँ। मुझे अपने चन्दर पर पूरा विश्वास है। मरते दम तक विश्वास रहेगा। फिर तुम्हारा मन इतना डगमगा क्यों गया? बुरी बात है न?''

चन्दर ने सुधा के कन्धे पर अपना सिर रख दिया। सुधा ने उसका हाथ लेकर कहा, ''लाओ, यहाँ छुआ था पम्मी ने तुम्हें!'' और उसका हाथ होठों तक ले गयी। चन्दर काँप गया, आज सुधा को यह क्या हो गया है। लेकिन होंठों तक हाथ ले जाकर झाड़ने-फूँकने वालों की तरह सुधा ने फूँककर कहा, ''जाओ, तुम्हारे हाथ से पम्मी के स्पर्श का जहर उतर गया। अब तो ठीक हो गये! पवित्र हो गये! छू-मन्तर!''

चन्दर हँस पड़ा। उसका मन शान्त हो गया। सुधा में जादू था। सचमुच जादू था। बिनती चाय ले आयी। दो प्याले। सुधा बोली, ''अपने लिए भी लाओ।'' बिनती ने सिर हिलाया।

सुधा ने चन्दर की और देखकर कहा, ''ये पगली जाने क्यों तुमसे झेंपती है?''

''झेंपती कहाँ हूँ?'' बिनती ने प्रतिवाद किया और प्याला भी ले आयी और जमीन पर बैठ गयी। सुधा ने प्याला मुँह से लगाया और बोली, ''चन्दर, तुमने पम्मी को गलत समझा है। पम्मी बहुत अच्छी लड़की है। तुमसे बड़ी भी है और तुमसे ज्यादा समझदार, और उसी तरह व्यवहार भी करती है। तुम अगर कुछ सोचते हो तो गलत सोचते हो। मेरा मतलब समझ गये न।''

''जी हाँ, गुरुआनीजी, अच्छी तरह से!'' चन्दर ने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा। बिनती हँस पड़ी और उसकी चाय छलक गयी। नीचे रखी हुई चन्दर की जरीदार पेशावरी सैंडिल भीग गयी। बिनती ने झुककर एक अँगोछे से उसे

पोंछना चाहा तो सुधा चिल्ला उठी–''हाँ-हाँ, छुओ मत। कहीं इनकी सैंडिल भी बाद में आके न रोने लगे। सुन बिनती, एक लड़की ने कल इन्हें छू लिया तो आप आज उदास थे। अभी तुम सैंडिल छुओ तो कहीं जाके कोतावली में रपट न कर दें।''

चन्दर हँस पड़ा। और उसका मन धुलकर ऐसे निखर गया जैसे शरद का नीलाभ आकाश।

''अब पम्मी के यहाँ कब जाओगे?'' सुधा ने शरारत-भरी मुसकराहट से पूछा।

''कल जाऊँगा! ठाकुर साहब पम्मी के हाथ अपनी कार बेच रहे हैं तो कागज पर दस्तखत करना है।'' चन्दर ने कहा, ''अब मैं निडर हूँ। कहो बिनती, तुम्हारे ससुर का क्या कोई खत नहीं आया।''

बिनती झेंप गयी। चन्दर चल दिया।

थोड़ी दूर जाकर फिर मुड़ा और बोला, ''अच्छा सुधा, आज तक जो काम हो बता दो फिर एक महीने तक मुझसे कोई मतलब नहीं। हम थीसिस पूरी करेंगे। समझीं?''

''समझे!'' हाथ पटककर सुधा बोली।

सचमुच डेढ़ महीने तक चन्दर को होश नहीं रहा कि कहाँ क्या हो रहा है। बिसरिया रोज सुधा और बिनती को पढ़ाने आता रहा, सुधा और बिनती दोनों ही का इम्तहान खत्म हो गया। पम्मी दो बार सुधा और चन्दर से मिलने आयी लेकिन चन्दर एक बार भी उसके यहाँ नहीं गया। मिश्रा का एक खत बरेली से आया लेकिन चन्दर ने उसका भी जवाब नहीं दिया। डॉक्टर साहब ने अपनी पुस्तक के दो अध्याय लिख डाले, लेकिन उसने एक दिन भी बहस नहीं की। बिनती उसे बराबर चाय, दूध, नाश्ता, शरबत और खरबूजा देती रही, लेकिन चन्दर ने एक बार भी उसके ससुर का नाम लेकर नहीं चिढ़ाया। सुधा क्या करती है, कहाँ जाती है, चन्दर से क्या कहती है, चन्दर को कोई होश नहीं, बस उसका पेन, उसके कागज, स्टडीरूम की मेज और चन्दर है कि आखिर थीसिस पूरी करके ही माना।

7 मई को जब उसने थीसिस का आखिरी पन्ना लिखकर पूरा किया और सन्तोष की साँस ली तो देखा कि शाम के पाँच बजे हैं, सायबान में अभी परदा पड़ा है, लेकिन धूप उतार पर है और लू बन्द हो गयी है। उसकी कुर्सी के पीछे एक चटाई बिछाये हुए सुधा बैठी है। ह्यूगो का अधपढ़ा हुआ उपन्यास बगल में

खुला हुआ औंधा पड़ा है और आप चन्दर की एक मोटी-सी इकनॉमिक्स की किताब खोले उस पर कलम से कुछ गोदा-गोदी कर रही है।

''सुधा!'' एक गहरी साँस लेकर अँगड़ाई लेते हुए चन्दर ने कहा, ''लो, आज आखिरकार जान छूटी। बस, अब दो-तीन महीने में माबदौलत डॉक्टर बन जाएँगे!''

सुधा अपने कार्य में व्यस्त। चन्दर ने क्या कहा, यह सुनकर भी गुम। चन्दर ने हाथ बढ़ाकर चोटी झटक दी। ''हाय रे! हमें नहीं अच्छा लगता, चन्दर!'' सुधा बिगडकर बोली, ''तुम्हारे काम के बीच में कोई बोलता है तो बिगड़ जाते हो और हमारा काम थोड़े ही महत्त्वपूर्ण है!'' कहकर सुधा फिर पेन लेकर गोदने लगी।

''आखिर कौन-सा उपनिषद लिख रही हैं आप? जरा देखें तो!'' चन्दर ने किताब खींच ली। टाजिग की इकनॉमिक्स की किताब में एक पूरे पन्ने पर सुधा ने एक बिल्ली बनायी थी और अगर निगाह जरा चूक जाए तो आप कह नहीं सकते थे यह चौरासी लाख योनियों में से किस योनि का जीव है, लेकिन चूँकि सुधा कह रही है कि यह बिल्ली है, इसलिए मानना होगा कि यह बिल्ली ही है।

चन्दर ने सुधा की बाँह पकड़कर कहा, ''उठ! आलसी कहीं की, चल उठा ये पोथा! चलके पापा के पैर छू आएँ?''

सुधा चुपचाप उठी और आज्ञाकारी लड़की की तरह मोटी फाइल उठा ली। दरवाजे तक पहुँचकर रुक गयी और चन्दर के कन्धे पर फाइलें टिकाकर बोली, ''ऐ चन्दर, तो सच्ची अब तुम डॉक्टर हो जाओगे?''

''और क्या?''

''आहा!'' कहकर जो सुधा उछली तो फाइल हाथ से खिसकी और सभी पन्ने जमीन पर।

चन्दर झल्ला गया। उसने गुस्से से लाल होकर एक घूँसा सुधा को मार दिया। ''अरे राम रे!'' सुधा ने पीठ सीधी करते हुए कहा, ''बड़े परोपकारी हो डॉक्टर चन्दर कपूर! हमें बिना थीसिस लिखे डिग्री दे दी! लेकिन बहुत जोर की थी!''

चन्दर हँस पड़ा।

खैर दोनों पापा के पास गये। वे भी लिखकर ही उठे थे और शरबत पी रहे थे। चन्दर ने जाकर कहा, ''पूरी हो गयी।'' और झुककर पैर छू लिये। उन्होंने

चन्दर को सीने से लगाकर कहा, ''बस बेटा, अब तुम्हारी तपस्या पूरी हो गयी। अब जुलाई से यूनिवर्सिटी में जरूर आ जाओगे तुम!''

सुधा ने पोथा कोच पर रख दिया और अपने पैर बढ़ाकर खड़ी हो गयी। ''ये क्या?'' पापा ने पूछा।

''हमारे पैर नहीं छुएँगे क्या?'' सुधा ने गम्भीरता से कहा।

''चल पगली! बहुत बदतमीज होती जा रही है!'' पापा ने कृत्रिम गुस्से से कहा, ''चन्दर! बहुत सिर चढ़ी हो गयी है। जरा दबाकर रखा करो। तुमसे छोटी है कि नहीं?''

''अच्छा पापा, अब आज मिठाई मिलनी चाहिए।'' सुधा बोली, ''चन्दर ने थीसिस खत्म की है?''

''जरूर, जरूर बेटी!'' डॉक्टर शुक्ला ने जेब से दस का नोट निकालकर दे दिया, ''जाओ, मिठाई मँगवाकर खाओ तुम लोग।''

सुधा हाथ में नोट लिये उछलते हुए स्टडी रूम में आयी, पीछे-पीछे चन्दर। सुधा रुक गयी और अपने मन में हिसाब लगाते हुए बोली, ''दस रुपये पौंड ऊन। एक पौंड में आठ लच्छी। छह लच्छी में एक शाल। बाकी बची दो लच्छी। दो लच्छी में एक स्वेटर। बस एक बिनती का स्वेटर, एक हमारा शाल।''

चन्दर का माथा ठनका। अब मिठाई की उम्मीद नहीं। फिर भी कोशिश करनी चाहिए।

''सुधा, अभी से शाल का क्या करोगी? अभी तो बहुत गरमी है!'' चन्दर बोला।

2

नाटक

नाटक , काव्य और गध्य का एक रुप है। जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु दृष्टि द्वारा भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती है उसे नाटक या दृश्य-काव्य कहते हैं। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती है। श्रव्य काव्य होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रुप से संबद्ध है। नाट्यशास्त्र में लोक चेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है।

परिचय

नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गये हैं– श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। पर दृष्टि द्वारा मुख्य रुप से इसका ग्रहण होने के कारण दृश्य काव्य मात्र को नाटक कहने लगे हैं।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरुपण है। उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्ण के दो भेद है– काव्य और अभिनेय। अग्निपुराण में दृश्य काव्य या रुपक के 27 भेद कहे गए हैं– 'नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अंक, त्रोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, विलासिका,

दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाटयरासक, रासक, उल्लाप्यक और प्रेक्षण। '

साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रुप से दिए हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य काव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य दो विभाग हैं– रुपक और उपरुपक। रुपक के दस भेद हैं– रुपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, ड़िम, ईहामृग, अंकवीथी और प्रहसन। 'उपरुपक' के अठारह भेद हैं– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाटयरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेक्षणा, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिंपक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भणिका।

उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक शब्द दृश्य काव्य मात्र के अर्थ में बोलते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्त (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं)' को लेकर लिखाना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विलास, सुख, दुःख, तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिए। नाटक के प्रधान या अंगी रस श्रृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रुप से आते हैं। शांति, करुणा आदि जिस रुपक में में प्रथान हो वह नाटक नहीं कहला सकता। संधिस्थल में कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिए। उपसंहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। वियोगांत नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विरुद्ध है।

नाटक शब्दावली

अभिनय आरंभ होने के पहले जो क्रिया (मंगलाचरण नांदी) होती है, उसे पूर्वरंग कहते हैं। पूर्वरंग, के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते हैं, आकर सभा की प्रशंसा करता है फिर नट, नटी सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्तालाप करते हैं जिसमें खेले जाने वाले नाटक का प्रस्ताव, कवि–वंश–वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे 'वस्तु' कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है–आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे 'अधिकारी' कहते हैं। इस अधिकारी के संबंध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे 'आधिकारिक वस्तु कहते हैं, जैसे, रामलीला में राम का

चरित्र। इस अधिकारी के उपकार के लिये या रसपुष्टि के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आ जाता है उसे प्रांसगिक वस्तु कहते हैं, जैसे सुग्रीव, आदि का चरित्र। 'सामने लाने' अर्थात् दृश्य संमुख उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। अतः अवस्थानुरुप अनुकरण या स्वाँग का नाम ही अभिनय है। अभिनय चार प्रकार का होता है– आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। अंगों की चेष्टा से जो अभिनय किया जाता है उसे आंगिक, वचनों से जो किया जाता है उसे वाचिक, भेस बनाकर जो किया जाता हैं उसे आहार्य तथा भावों के उद्रेक से कंप, स्वेद आदि द्वारा जो होता है उसे सात्विक कहते हैं। नाटक में बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँचों के द्वारा प्रयोजन सिद्धि होती है। जो बात मुँह से कहते ही चारों और फैल जाय और फलसिद्धि का प्रथम कारण हो उसे बीज कहते हैं, जैसे वेणीसंहार नाटक में भीम के क्रोध पर युधिष्ठिर का उत्साहवाक्य द्रौपदी के केशमोजन का कारण होने के कारण बीज है। कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्य से उसका संबंध न रहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिनकी दूसरे वाक्य के साथ असंगति न हो 'बिंदु' है। बीच में किसी व्यापक प्रसंग के वर्णन को पताका कहते हैं– जैसे उत्तरचरित में सुग्रीव का और अभिज्ञान-शांकुतल में विदूषक का चरित्रवर्णन। एक देश व्यापी चरित्रवर्णन को प्रकरी कहते हैं। आरंभ की हुई क्रिया की फलसिद्धि के लिये जो कुछ किया जाय उसे कार्य कहते हैं, जैसे, रामलीला में रावण वध। किसी एक विषय की चर्चा हो रही हो, इसी बीच में कोई दूसरा विषय उपस्थित होकर पहले विषय से मेल में मालूम हो वहाँ पताका स्थान होता है, जैसे, रामचरित् में राम सीता से कह रहे हैं–श्हे प्रिये ! तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं, यदि असह्य है तो केवल तुम्हारा विरह, इसी बीच में प्रतिहारी आकर कहता है–देव ! दुर्मुख उपस्थित। यहाँ ' उपस्थित' शब्द से 'विरह उपस्थित' ऐसी प्रतीत होता है और एक प्रकार का चमत्कार मालूम होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक संबंधी ऐसे ही अनेक कौशलों की उद्भावना की गई है और अनेक प्रकार के विभेद दिखाए गए हैं।

आजकल देशभाषाओं में जो नए नाटक लिखे जाते हैं उनमें संस्कृत नाटकों के सब नियमों का पालन या विषयों का समावेश अनावश्यक समझा जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखते हैं–'संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में उनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है।

नाटक के प्रमुख तत्व

कथावस्तु

कथावस्तु को 'नाटक' ही कहा जाता है अंग्रेजी में इसे 'प्लॉट' की संज्ञा दी जाती है जिसका अर्थ आधार या भूमि है। कथा तो सभी प्रबंध का प्रबंधात्मक रचनाओं की रीढ़ होती है और नाटक भी क्योंकि प्रबंधात्मक रचना है इसलिए कथानक इसका अनिवार्य है। भारतीय आचार्यों ने नाटक में तीन प्रकार की कथाओं का निर्धारण किया है –1 प्रख्यात 2 उत्पाद्य 3 मिस्त्र प्रख्यात कथा।

प्रख्यात कथा

प्रख्यात कथा इतिहास , पुराण से प्राप्त होती है। जब उत्पाद्य कथा कल्पना पराश्रित होती है , मिश्र कथा कहलाती है। इतिहास और कथा दोनों का योग रहता है। इन कथा आधारों के बाद नाटक कथा को मुख्य तथा गौण अथवा प्रासंगिक भेदों में बांटा जाता है , इनमें से प्रासंगिक के भी आगे पताका और प्रकरी है । पताका प्रासंगिक कथावस्तु मुख्य कथा के साथ अंत तक चलती है जब प्रकरी बीच में ही समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाटक की कथा के विकास हेतु कार्य व्यापार की पांच अवस्थाएं प्रारंभ प्रयत्न , परपर्याशा नियताप्ति और कलागम होती है। इसके अतिरिक्त नाटक में पांच संधियों का प्रयोग भी किया जाता है। वास्तव में नाटक को अपनी कथावस्तु की योजना में पात्रों और घटनाओं में इस रुप में संगति बैठानी होती है कि पात्र कार्य व्यापार को अच्छे ढंग से अभिव्यक्त कर सके। नाटककार को ऐसे प्रसंग कथा में नहीं रखनी चाहिए जो मंच के संयोग ना हो यदि कुछ प्रसंग बहुत आवश्यक है तो नाटककार को उसकी सूचना कथा में दे देनी चाहिए। नाटक की कथावस्तु पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है।

पात्र

नाटक में नाटक का अपने विचारों , भावों आदि का प्रतिपादन पात्रों के माध्यम से ही करना होता है। अत: नाटक में पात्रों का विशेष स्थान होता है। प्रमुख पात्र अथवा नायक कला का अधिकारी होता है तथा समाज को उचित दशा तक ले जाने वाला होता है। भारतीय परंपरा के अनुसार वह विनयी , सुंदर, शालीनवान , त्यागी , उच्च कुलीन होना चाहिए। किंतु आज नाटकों में किसान,

मजदूर आदि कोई भी पात्र हो सकता है। पात्रों के संदर्भ में नाटककार को केवल उन्हीं पात्रों की सृष्टि करनी चाहिए जो घटनाओं को गतिशील बनाने में तथा नाटक के चरित्र पर प्रकाश डालने में सहायक होते हैं।

पात्रों का सजीव और प्रभावशाली चरित्र ही नाटक की जान होता है। कथावस्तु के अनुरुप नायक धीरोदात्त, धीर ललित, धीर शांत या धीरोद्धत हो सकता है।

उद्देश्य

सामाजिक के हृदय में रक्त का संचार करना ही नाटक का उद्देश्य होता है। नाटक के अन्य तत्त्व इस उद्देश्य के साधन मात्र होते हैं। भारतीय दृष्टिकोण सदा आशावादी रहा है इसलिए संस्कृत के प्रायः सभी नाटक सुखांत रहे हैं। पश्चिम नाटककारों ने या साहित्यकारों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए उसके प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है उसके प्रभाव से हमारे यहां भी कई नाटक दुखांत में लिखे गए हैं , किंतु सत्य है कि उदास पात्रों के दुखांत अंत से मन खिन्न हो जाता है। अतः दुखांत नाटको का प्रचार कम होना चाहिए।

भाषा शैली

नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है अतः उसकी भाषा शैली सरल , स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिए , जिससे नाटक में प्रभाविकता का समावेश हो सके तथा दर्शक को क्लिष्ट भाषा के कारण बौद्धिक श्रम ना करना पड़े अन्यथा रस की अनुभूति में बाधा पहुँचेगी। अतः नाटक की भाषा सरल व स्पष्ट रुप में प्रवाहित होनी चाहिए।

देशकाल वातावरण

देशकाल वातावरण के चित्रण में नाटककार को युग अनुरुप के प्रति विशेष सतर्क रहना आवश्यक होता है। पश्चिमी नाटक में देशकाल के अंतर्गत संकलनअत्र समय स्थान और कार्य की कुशलता का वर्णन किया जाता है। वस्तुतः यह तीनों तत्त्व ' यूनानी रंगमंच ' के अनुकूल थे। जहां रात भर चलने वाले लंबे नाटक होते थे और दृश्य परिवर्तन की योजना नहीं होती थी। परंतु आज रंगमंच के विकास के कारण संकलन का महत्त्व समाप्त हो गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख ना होते हुए भी नाटक में स्वाभाविकता , औचित्य

तथा सजीवता की प्रतिष्ठा के लिए देशकाल वातावरण का उचित ध्यान रखा जाता है। इसके अंतर्गत पात्रों की वेशभूषा तत्कालिक धार्मिक , राजनीतिक , सामाजिक परिस्थितियों में युग का विशेष स्थान है। अत: नाटक के तत्वों में देशकाल वातावरण का अपना महत्त्व है।

संवाद

नाटक में नाटकार के पास अपनी और से कहने का अवकाश नहीं रहता। वह संवादों द्वारा ही वस्तु का उद्घाटन तथा पात्रों के चरित्र का विकास करता है। अत: इसके संवाद सरल , सुबोध , स्वभाविक तथा पात्र अनुकूल होने चाहिए। गंभीर दार्शनिक विषयों से इसकी अनुभूति में बाधा होती है। इसलिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। नीर सत्ता के निरावरण तथा पात्रों की मनोभावों की मनोकामना के लिए कभी-कभी स्वागत कथन तथा गीतों की योजना भी आवश्यक समझी गई है।

रस

नाटक में नवरसों में से आठ का ही परिपाक होता है। शांत रस नाटक के लिए निषिद्ध माना गया है। वीर या श्रृंगार में से कोई एक नाटक का प्रधान रस होता है।

अभिनय

यह नाटक की प्रमुख विशेषता है। नाटक को नाटक के तत्त्व प्रदान करने का श्रेय इसी को है। यही नाट्यतत्व का वह गुण है, जो दर्शक को अपनी और आकर्षित कर लेता है। इस संबंध में नाटककार को नाटकों के रुप , आकार , दृश्यों की सजावट और उसके उचित संतुलन , परिधान , व्यवस्था , प्रकाश व्यवस्था आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में लेखक की दृष्टि रंगशाला के विधि -विधानों की और विशेष रुप से होनी चाहिए इसी में नाटक की सफलता निहित है।

अभिनय भी नाटक का प्रमुख तत्त्व है। इसकी श्रेष्ठता पात्रों के वाक्चातुर्य और अभिनय कला पर निर्भर है। मुख्य प्रकार से अभिनय 4 प्रकार का होता हॅ।

1. आंगिक अभिनय (शरीर से किया जाने वाला अभिनय),
2. वाचिक अभिनय (संवाद का अभिनय रेडियो नाटक ,,

3. आहार्य अभिनय (वेशभूषा, मेकअप, स्टेज विन्यास, प्रकाश व्यवस्था आदि),
4. सात्विक अभिनय (अंतरात्मा से किया गया अभिनय रस आदि ,।

नाटक का इतिहास

संस्कृत नाटकों का उद्‌भव एवं विकास

प्राचीन काल– भारत में अभिनय-कला और रंगमंच का वैदिक काल में ही निर्माण हो चुका था। तत्पश्चात् संस्कृत रंगमंच तो अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था-भरत मुनि का नाट्यशास्त्र इसका प्रमाण है। बहुत प्राचीन समय में भारत में संस्कृत नाटक धार्मिक अवसरों, सांस्कृतिक पर्वों, सामाजिक समारोहों एवं राजकीय बोलचाल की भाषा नहीं रही तो संस्कृत नाटकों की मंचीकरण समाप्त-सा हो गया।

भारतवर्ष में नाटकों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से हैं। भरत मुनि का नाटयशास्त्र बहुत पुराना है। रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणिनि ने 'शिलाली' और 'कृशाश्व' नामक दो नटसूत्रकारों के नाम लिए हैं। शिलाली का नाम शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपद सूत्र में मिलता हैं। विद्वानों ने ज्योतिष की गणना के अनुसार शतपथ ब्राह्मण को 4000 वर्ष से ऊपर का बतलाया है। अतः कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह राय हक ग्रीस या यूनान में ही सबसे पहले नाटक का प्रादुर्भाव हुआ, ठीक नहीं है। हरिवंश में लिखा है कि जब प्रद्युम्न, सांब आदि यादव राजकुमार वज्रनाभ के पुर में गए थे तब वहाँ उन्होंने रामजन्म और रंभाभिसार नाटक खेले थे। पहले उन्होंने नेपथ्य बाँधा था जिसके भीतर से स्त्रियों ने मधुर स्वर से गान किया था। शूर नामक यादव रावण बना था, मनोवती नाम की स्त्री रंभा बनी थी, प्रद्युम्न नलकूबर और सांब विदूषक बने थे। विल्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट स्वीकार किया हैं कि हिंदुओं ने अपने यहाँ नाटक का प्रादुर्भाव अपने आप किया था। प्राचीन हिंदू राजा बड़ी बड़ी रंगशालाएँ बनवाते थे। मध्यप्रदेश में सरगुजा एक पहाड़ी स्थान है, वहाँ एक गुफा के भीतर इस प्रकार की एक रंगशाला के चिह्न पाए गए हैं। यह ठीक है कि यूनानियों के आने के पूर्व के संस्कृत नाटक आजकल नहीं मिलते हैं, पर इस बात से इनका अभाव, इतने प्रमाणों के रहते, नहीं माना जा सकता। संभव है, कलासंपन्न युनानी जाति से जब हिंदू जाति का मिलन हुआ हो तब जिस प्रकार कुछ और बातें एक ने दूसरे की ग्रहण की। इसी

प्रकार नाटक के संबंध में कुछ बातें हिंदुओं ने भी अपने यहाँ ली हों। बाह्यपटी का 'जवनिका' (कभी कभी 'यवनिका') नाम देख कुछ लोग यवन संसर्ग सूचित करते हैं। अंकों में जो 'दृश्य' संस्कृत नाटकों में आए हैं उनसे अनुमान होता है कि इन पटों पर चित्र बने रहते थे। अरस्तु अधिक से अधिक इस विषय में यही कहा जा सकता है कि अत्यंत प्राचीन काल में जो अभिनय हुआ करते थे। उनमें चित्रपट काम में नहीं लाए जाते थे। सिकंदर के आने के पीछे उनका प्रचार हुआ। अब भी रामलीला, रासलीला बिना परदों के होती ही हैं।

मध्यकाल

मध्यकाल में प्रादेशिक भाषाओं में लोकतंत्र का उदय हुआ। यह विचित्र संयोग है कि मुस्लिमकाल में जहाँ शासकों की धर्मकट्टरता ने भारत की साहित्यिक रंग-परम्परा को तोड़ डाला वहाँ लोकभाषाओं में लोकमंच का अच्छा प्रसार हुआ। रासलीला, रामलीला तथा नौटंकी आदि के रुप में लोकधर्मी नाट्यमंच बना रहा। भक्तिकाल में एक और तो ब्रज प्रदेश में कृष्ण की रासलीलाओं का ब्रजभाषा में अत्यधिक प्रचलन हुआ और दूसरी और विजयदशमी के अवसर पर समूचे भारत के छोटे-बड़े नगरों में रामलीला बड़ी धूमधाम से मनाई जाने लगी।

साहित्यिक दृष्टि से इस मध्यकाल में कुछ संस्कृत नाटकों के पद्यबद्ध हिन्दी छायानुवाद भी हुए, जैसे नेवाज कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तल', सोमनाथ कृत 'मालती-माधव', हृदयरामचरित 'हनुमन्नाटक' आदि कुछ मौलिक पद्यबद्ध संवादात्मक रचनाएँ भी हुई, जैसे लछिराम कृत 'करुणाभरण', रघुराम नागर कृत 'सभासार' (नाटक), गणेश कवि कृत 'प्रद्युम्नविजय' आदिय पर इनमें नाटकीय पद्धति का पूर्णतया निर्वाह नहीं हुआ। ये केवल संवादात्मक रचनाएँ ही कही जा सकती हैं।

इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि तथा साहित्यिक रचनाओं के अभाव के कारण मध्यकाल में साहित्यिक रंगकर्म की और कोई प्रवृत्ति नहीं हुई। सच तो यह है कि आधुनिक काल में व्यावसायिक तथा साहित्यिक रंगमंच के उदय से पूर्व हमारे देश में रामलीला, नौटंकी आदि के लोकमंच ने ही चार-पाँच सौ वर्षों तक हिन्दी रंगमंच को जीवित रखा। यह लोकमंच-परम्परा आज तक विभिन्न रुपों में समूचे देश में वर्तमान है। उत्तर भारत में रामलीलाओं के अतिरिक्त महाभारत पर आधारित 'वीर अभिमन्यु', 'सत्य हरिशचन्द्र' आदि ड्रामे तथा 'रुप-बसंत',

'हीर-राँझा', 'हकीकतराय', 'बिल्वामंगल' आदि नौटंकियाँ आज तक प्रचलित हैं।

आधुनिक काल

आधुनिक काल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ रंगमंच को प्रोत्साहन मिला। फलतः समूचे भारत में व्यावसायिक नाटक मंडलियाँ स्थापित हुईं। नाट्यारंगन की प्रवृत्ति सर्वप्रथम बँगला में दिखाई दी। सन् 1835 ई. के आसपास कलकत्ता में कई अव्यावसायिक रंगशालाओं का निर्माण हुआ। कलकत्ता के कुछ सम्भ्रान्त परिवारों और रईसों ने इनके निर्माण में योग दिया था और दूसरी और व्यावयायिक नाटक मंडलियों के असाहित्यिक प्रयास से अलग था।

बँगला के इस नाट्य-सृजन और नाट्यारंगन का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के रंगांदोलन को इसी से दशा, दिशा और प्रेरणा मिली थी। बँगला के इस आरम्भिक साहित्यिक प्रयास में जो नाटक रचे गए वे मूल संस्कृत या अंग्रेजी नाटकों के छायानुवाद या रुपान्तर थे। स्पष्ट है कि भारतेन्दु का आरम्भिक प्रयास भी संस्कृत नाटकों के छायानुवाद का ही था।

हिन्दी रंगमंचीय साहित्यिक नाटकों में सबसे पहला हिन्दी गीतिनाट्य अमानत कृत 'इंदर सभा' कहा जा सकता है, जो सन् 1853 ई. में लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में खेला गया था। इसमें उर्दू-शैली का वैसा ही प्रयोग था जैसा पारसी नाटक मंडलियों ने अपने नाटकों में अपनाया। सन् 1862 ई. में काशी में 'जानकी मंगल' नामक विशुद्ध हिन्दी नाटक खेला गया था।

उपर्युक्त साहित्यिक रंगमंच के उपर्युक्त छुटपुट प्रयास से बहुत आगे बढ़कर पारसी मंडलियों-ओरिजिनल विक्टोरिया, एम्प्रेस विक्टोरिया, एल्फिंस्टन थियेट्रिकल कम्पनी, अल्फ्रेड थियेट्रिकल तथा न्यू अलफ्रेड कम्पनी आदि-ने व्यावसायिक रंगमंच बनाया। सर्वप्रथम बंबई और बाद में हैदराबाद, लखनऊ, बनारस, दिल्ली, लाहौर आदि कई केन्द्रों और स्थानों से ये कम्पनियाँ देश-भर में घूम-घूमकर हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन करने लगीं। इन पारसी नाटक मंडलियों के लिए पहले-पहल नसरबानी खान साहब, रौनक बनारसी, विनायक प्रसाद 'तालिब', 'अहसन' आदि लेखकों ने नाटक लिखे। जनता का सस्ता मनोरंजन और धनोपार्जन ही इन कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य था।

इसी से उच्चकोटि के साहित्यिक नाटकों से इनका विशेष प्रयोजन नहीं था। धार्मिक-पौराणिक तथा प्रेम-प्रधान नाटकों को ही ये अपने रंगमंच पर दिखाती थीं। सस्ते और अश्लील प्रदर्शन करने में इन्हें जरा भी संकोच नहीं था। इसी से जनता की रुचि भ्रष्ट करने का दोष इन पर लगाया जाता है। भ्रमण के कारण इन कम्पनियों का रंगमंच भी इनके साथ घूमता रहता था।

किसी स्थायी रंगमंच की स्थापना इनके द्वारा भी संभव नहीं थी। रंगमंच का ढाँचा बल्लियों द्वारा निर्मित किया जाता था और स्टेज पर चित्र-विचित्र पर्दे लटका दिए जाते थे। भड़कीली-चटकीली वेशभूषा, पर्दों की नई-नई चित्रकारी तथा चमत्कारपूर्ण दृश्य-विधान की और इनका अधिक ध्यान रहता था। पर्दों को दृश्यों के अनुसार उठाया-गिराया जाता था। संगीत-वाद्य का आयोजन स्टेज के अगले भाग में होता था। गंभीर दृश्यों के बीच-बीच में भी भद्दे हास्यपूर्ण दृश्य जानबूझकर रखे जाते थे। बीच-बीच में शायरी, गजलें और तुकबन्दी खूब चलती थी। भाषा उर्दू-हिन्दी का मिश्रित रुप थी। संवाद पद्य-रुप तथा तुकपूर्ण खूब होते थे।

राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी, हरिकृष्ण जौहर आदि कुछ ऐसे नाटककार भी हुए हैं जिन्होंने पारसी रंगमंच को कुछ साहित्यिक पुट देकर सुधारने का प्रयत्न किया है और हिन्दी को इस व्यावसायिक रंगमंच पर लाने की चेष्टा की। पर व्यावसायिक वृत्ति के कारण संभवत: इस रंगमंच पर सुधार संभव नहीं था। इसी से इन नाटककारों को भी व्यावसायिक बन जाना पड़ा। इस प्रकार पारसी रंगमंच न विकसित हो सका, न स्थायी ही बन सका।

हिंदी नाटक

हिंदी में नाटकों का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। उस काल के भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने लोक चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना की इसलिए उस समय की सामाजिक समस्याओं को नाटकों में अभिव्यक्त होने का अच्छा अवसर मिला।

जैसाकि कहा जा चुका है, हिन्दी में अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच के निर्माण का श्रीगणेश आगाहसन 'अमानत' लखनवी के 'इंदर सभा' नामक गीति-रुपक से माना जा सकता है। पर सच तो यह है कि 'इंदर सभा' की वास्तव में रंगमंचीय कृति नहीं थी। इसमें शामियाने के नीचे खुला स्टेज रहता

था। नौटंकी की तरह तीन और दर्शक बैठते थे, एक और तख्त पर राजा इंदर का आसन लगा दिया जाता था, साथ में परियों के लिए कुर्सियाँ रखी जाती थीं। साजिंदों के पीछे एक लाल रंग का पर्दा लटका दिया जाता था। इसी के पीछे से पात्रों का प्रवेश कराया जाता था। राजा इंदर, परियाँ आदि पात्र एक बार आकर वहीं उपस्थित रहते थे। वे अपने संवाद बोलकर वापस नहीं जाते थे।

उस समय नाट्यारंगन इतना लोकप्रिय हुआ कि अमानत की 'इंदर सभा' के अनुकरण पर कई सभाएँ रची गई, जैसे 'मदारीलाल की इंदर सभा', 'दर्याई इंदर सभा', 'हवाई इंदर सभा' आदि। पारसी नाटक मंडलियों ने भी इन सभाओं और मजलिसेपरिस्तान को अपनाया। ये रचनाएँ नाटक नहीं थी और न ही इनसे हिन्दी का रंगमंच निर्मित हुआ। इसी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनको 'नाटकाभास' कहते थे। उन्होंने इनकी पैरोडी के रुप में 'बंदर सभा' लिखी थी।

लोक नाटक

संस्कृत नाटकों का युग ढलने लगा, तब चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक उनका स्थान विभिन्न भारतीय भाषाओं में लोक नाटकों ने लिया। आज अलग-अलग प्रदेशों में लोक नाटक भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है।

रामलीला - उत्तरी भारत में
जात्रा - बंगाल, उडीसा, पूर्वी बिहार
तमाशा - महाराष्ट्र
नौटंकी - उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब
भवई - गुजरात
यक्षगान - कर्णाटक
थेरुबुट्टू - तमिलनाडु
नाचा - छत्तीसगढ

हिन्दी रंगमंच और भारतेन्दु हरिश्चंद्र

इस प्रकार भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी रंगमंच और नाट्य-रचना के व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक साहित्यिक प्रयास तो हुए पर हिन्दी का वास्तविक और स्थायी रंगमंच निर्मित और विकसित नहीं हो पाया था। सन् 1850 ई. से सन् 1868 ई. तक हिन्दी रंगमंच का उदय और प्रचार-प्रसार तो हुआ पर उसका सुरुचिपूर्ण विकास और स्थायी निर्माण नहीं हो सका था। पारसी नाटक मंडलियों

के अतिरिक्त कुछ और भी छुटपुट व्यावसायिक मंडलियाँ विभिन्न स्थानों पर निर्मित हुईं पर साहित्यिक सुरुचि सम्पन्नता का उनमें भी अभाव ही रहा।

व्यावसायिक मंडलियों के प्रयत्न में हिन्दी रंगमंच की जो रुपरेखा बनी थी, प्रचार और प्रसार का जो काम हुआ था तथा इनके कारण जो कुछ अच्छे नाटककार हिन्दी को मिले थे–उस अवसर और परिस्थिति का लाभ नहीं उठाया जा सका था।

भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुंदर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किंतु नियमित रुप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। भारतेन्दु के पूर्ववर्ती नाटककारों में रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह (1846–1911) के बृजभाषा में लिखे गए नाटक 'आनंद रघुनंदन' और गोपालचंद्र के 'नहुष' (1841) को अनेक विद्वान हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। यहाँ यह जानना रोचक हो सकता है कि गोपालचंद्र, भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता थे।

हिन्दी के विशुद्ध साहित्यिक रंगमंच और नाट्य–सृजन की परम्परा की दृष्टि से सन् 1868 ई. का बड़ा महत्त्व है। भारतेन्दु के नाटक–लेखन और मंचीकरण का श्रीगणेश इसी वर्ष हुआ। इसके पूर्व न तो पात्रों के प्रवेश–गमन, दृश्य–योजना आदि से युक्त कोई वास्तविक नाटक हिन्दी में रचा गया था। भारतेन्दु के पिता गोपालचन्दर चित 'नहुष' तथा महाराज विश्वनाथसिंह रचित 'आनंदरघुनंदन' भी पूर्ण नाटक नहीं थे, न पर्दों और दृश्यों आदि की योजना वाला विकसित रंगमंच ही निर्मित हुआ था। नाट्यारंगन के अधिकतर प्रयास भी अभी तक मुंबई आदि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही हुए थे और भाषा का स्वरुप भी हिन्दी–उर्दू का मिश्रित खिचड़ी रुप ही था।

3 अप्रैल सन् 1868 को पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी रचित 'जानकी मंगल' नाटक का अभिनय 'बनारस थियेटर' में आयोजित किया था। कहते हैं कि जिस लड़के को लक्ष्मण का अभिनय पार्ट करना था वह अचानक उस दिन बीमार पड़ गया। लक्ष्मण के अभिनय की समस्या उपस्थित हो गई और उस दिन युवक भारतेन्दु स्थिति को न सँभालते तो नाट्यायोजन स्थगित करना पड़ता। भारतेन्दु ने एक–डेढ़ घंटे में ही न केवल लक्ष्मण की अपनी भूमिका याद कर ली अपितु पूरे 'जानकी मंगल' नाटक को ही मस्तिष्क में जमा लिया। भारतेन्दु ने अपने अभिजात्य की परवाह नहीं की।

उन दिनों उच्च कुल के लोग अभिनय करना अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं समझते थे। इस प्रकार इस नाटक से भारतेन्दु ने रंगमंच पर सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। इसी समय-उन्होंने नाट्य-सृजन भी आरम्भ किया।

भारतेन्दु ने सन् 1868 ई. से सन् 1885 ई. तक अपने स्वल्प और अत्यन्त व्यस्त जीवन से शेष 17 वर्षों में अनेक नाटकों का सृजन किया, अनेक नाटकों में स्वयं अभिनय किया, अनेक रंगशालाएँ निर्मित कराई और हिन्दी रंगमंच के स्थापन का स्तुत्य प्रयास किया। यही नहीं, भारतेन्दु के अनेक लेखकों और रंगकर्मियों को नाट्य-सृजन और अभिनय के लिए प्रेरित किया। भारतेन्दु के सदुद्योग एवं प्रेरणा से काशी, प्रयाग, कानपुर आदि कई स्थानों पर हिन्दी का अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच स्थापित हुआ।

भारतेन्दु के ही जीवन काल में ये कुछ रंग-संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं–

(1) काशी में भारतेन्दु के संरक्षण में नेशनल थियेटर की स्थापना हुई। भारतेन्दु अपना 'अंधेर नगरी' प्रहसन इसी थियेटर के लिए एक ही रात में लिखा था।

(2) प्रयाग में 'आर्य नाट्यसभा' स्थापित हुई जिसमें लाला श्रीनिवासदास का 'रंगधीर प्रेममोहिनी' प्रथम बार अभिनीत हुआ था।

(3) कानपुर में भारतेन्दु के सहयोगी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने हिन्दी रंगमंच का नेतृत्व किया और भारतेन्दु के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत-दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' आदि नाटकों का अभिनय कराया।

इनके अतिरिक्त बलिया, डुमराँव, लखनऊ आदि उत्तर प्रदेश के कई स्थानों और बिहार प्रदेश में भी हिन्दी रंगमंच और नाट्य-सृजन की दृढ़ परम्परा का निर्माण हुआ।

प्रेरणा-स्त्रोत

भारतेन्दु और उनके सहयोगी लेखकों ने नाट्य-सृजन की प्रेरणा कहाँ-कहाँ से प्राप्त की, यह प्रश्न पर्याप्त महत्त्व का है। इस प्रश्न का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि हिन्दी में नाट्य-रचना का सूत्रपात भारतेन्दु की ही नव-प्रवर्तनकारी प्रतिभा से हुआ। यद्यपि भारतेन्दु से पूर्व नाट्य-शैली में कुछ सृजन-प्रयास हुए थे, पर नाटक के वास्तविक रुप का उद्‌भव सर्वप्रथम भारतेन्दु की ही लेखिनी से हुआ। अस्तु, जब हिन्दी में इस

साहित्यिकविधा का अभाव था, तो भारतेन्दु ने नाट्य-सृजन की प्रेरणा कहाँ से ली ?

साहित्यिक प्रेरणा

साहित्यिक प्रेरणा की खोज की जाय तो कहा जा सकता है कि भारतेन्दु ने संस्कृत तथा प्राकृत की पूर्ववर्ती भारतीय नाट्य-परम्परा और बँगला की समसामयिक नाट्यधारा के साथ अंग्रेजी प्रभाव-धारा से प्रेरणा ली। यद्यपि हमारे यहाँ भास, कालीदास, भवभूति, शूद्रक आदि पूर्ववर्ती संस्कृत नाटककारों की समृद्ध नाट्य-परम्परा विद्यमान थी, पर यह खेद की बात है कि भारतेन्दु बाबू ने उस समृद्ध संस्कृत नाट्य-परम्परा को अपने सम्मुख रखा। प्राकृत-अपभ्रंश काल में अर्थात् ईसा की 9वीं-10 वीं शताब्दी के बाद संस्कृत नाटक ह्रासोन्मुख हो गया था। प्राकृत और अपभ्रंश में भी नाट्य-सृजन वैसा उत्कृष्ट नहीं हुआ जैसा पूर्ववर्ती संस्कृत-नाट्य-साहित्य था। अतः भारतेन्दु के सामने संस्कृत-प्राकृत की यह पूर्ववर्ती ह्रासगामी परम्परा रही। संस्कृत के मुरारि, राजशेखर, जयदेव आदि की क्रमशः 'अनर्घराघव', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' आदि रचनाएँ ही भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी लेखकों का आदर्श बनीं। इनमें न कथ्य- या विषय-वस्तु का वह गाम्भीर्य था, जो कालिदास आदि की अमर कृतियों में था, न उन जैसी शैली-शिल्प की श्रेष्ठता थी। यही कारण है कि भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी नाटक सर्वथा निष्प्राण रहा और यद्यपि भारतेन्दु ने उसमें सामयिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक पैदा कर नवोन्मेष और किंचित् सप्राणता का प्रयास किया, पर उनके प्रयत्नों के बावजूद भारतेन्दुकालीन हिन्दी नाटक कथ्य और शिल्प दोनों की ही दृष्टि से शैशव काल में ही पड़ा रहा, विशेष उत्कर्ष को प्राप्त नहीं हुआ।

भारतेन्दु के पश्चात

इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सत्यप्रयत्नों से हिन्दी के साहित्यिक रंगकर्म और नाट्य-लेखन की दृढ़ परम्परा चली। पर सन् 1885 ई. में भारतेन्दु के निधन के पश्चात् वह उत्साह कुछ मन्द पड़ गया। 19 वीं शती के अन्तिम दशक में फिर कुछ छुटपुट प्रयास हुए। कई नाटक मंडलियों की स्थापना हुई, जैसे प्रयाग की 'श्रीरामलीला नाटक मंडली' तथा 'हिन्दी नाट्य समिति', भारतेन्दु जी के भतीजों- श्रीकृष्णचन्द्र और श्री ब्रजचन्द्र-द्वारा काशी में स्थापित 'श्री

भारतेन्दु नाटक मंडली' तथा 'काशी नागरी नाटक मंडली।' इन नाटक मंडलियों के प्रयत्न से उस समय 'महाराणा प्रताप', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'महाभारत', 'सुभद्राहरण', 'भीष्मपितामह', 'बिल्व मंगल', 'संसार स्वप्न', 'कलियुग' आदि अनेक नाटकों का अभिनय हुआ।

पर ये प्रयास भी बहुत दिन नहीं चल सके। धनाभाव तथा सरकारी और गैर-सरकारी प्रोत्साहन के अभाव में साहित्यिक रंगमंच की स्थापना के प्रयत्न कालान्तर में सब सो गए। इन छुटपुट प्रयासों के अन्तर्गत तत्कालीन साहित्यिक नाटकों का अभिनय हुआ और हिन्दी में कुछ अच्छे रंगमंचानुकूल साहित्यिक नाटकों की रचना हुई। पारसी नाटक कंपनियों के दुष्प्रभाव का तो यह प्रयास अच्छा जवाब था, किन्तु यह प्रयास था बहुत ही स्वल्प। दूसरे, इस साहित्यिक रंगान्दोलन से भी हिन्दी का रंगमंच विशेष विकसित नहीं हुआ, क्योंकि यह रंगमंच पारसी रंगमंच से विशेष भिन्न और विकसित नहीं था- वही पर्दों की योजना, वैसा ही दृश्य-विधान और संगी आदि का प्रबंध रहता था। वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न घूमने वाले रंगमंच का विकास 19 वीं शती में नहीं हो सका था। ध्वनि-यन्त्र आदि की स्थापना के प्रयास भी हिन्दी रंगमंच के विकास की दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दे पाए। हाँ, इनका यही लाभ हुआ कि पारसी नाटक कम्पनियों के भ्रष्ट प्रचार को कुछ धक्का लगा तथा कुछ रंगमंचीय हिन्दी नाटक प्रकाश में आए।

बीसवीं शताब्दी

20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिनेमा के आगमन ने पारसी रंगमंच को सर्वथा समाप्त कर दिया। पर अव्यावसायिक रंगमंच इधर-उधर नए रुपों में जीवित रहा। अब हिन्दी का रंगमंच केवल स्कूलों और कॉलेजों में ही है। यह रंगमंच बड़े नाटकों की अपेक्षा एकांकियों को अधिक अपनाकर चला। इसके दो मुख्य कारण हैं- एक तो आज का दर्शक कम-से-कम समय में अपने मनोरंजन की पूर्ति करना चाहता है, दूसरे, आयोजकों के लिए भी बड़े नाटक का प्रदर्शन यहां बहुत कठिनाई उत्पन्न करता है वहाँ एकांकी का प्रदर्शन सरल है-रंगमंच, दृश्य-विधान आदि एकांकी में सरल होते हैं, पात्र भी बहुत कम रहते हैं। अतः सभी शिक्षालयों, सांस्कृतिक आयोजनों आदि में आजकल एकांकियों का ही प्रदर्शन होता है। डॉ. राम कुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्द दास,

जगदीशचन्द्र माथुर आदि हमारे अनेक नाटककारों ने सुन्दर अभिनय-उपयोगी एकांकी नाटकों तथा दीर्घ नाटकों की रचना की है।

प्रसाद जी ने उच्चकोटि के साहित्यिक नाटक रच कर हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध किया था, पर अनेक नाटक रंगमंच पर कुछ कठिनाई उत्पन्न करते थे। फिर भी कुछ काट-छाँट के साथ प्रसाद जी के प्रायः सभी नाटकों का अभिनय हिन्दी के अव्यावसायिक रंगमंच पर हुआ। जार्ज बर्नार्ड शॉ, इब्सन आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से उपर्युक्त प्रसादोत्तर आधुनिक नाटककारों ने कुछ बहुत सुन्दर रंगमंचीय नाटकों की सृष्टि की। इन नाटककारों के अनेक पूरे नाटक भी रंगमंचों से प्रदर्शित हुए।

स्वतंत्रता के पश्चात्

स्वतंत्रता के पाश्चात् हिन्दी रंगमंच के स्थायी निर्माण की दिशा में अनेक सरकारी-गैर-सरकारी प्रयत्न हुए हैं। सरकार की और से भी कई गैर-सरकारी संस्थाओं को रंगमंच की स्थापना के लिए आर्थिक सहायता मिली है। पुरुषों के साथ अब स्त्रियाँ भी अभिनय में भाग लेने लगी हैं। स्कूलों-कॉलेजों में कुछ अच्छे नाटकों का अब अच्छा प्रदर्शन होने लगा है।

अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध कुछ अच्छे स्थायी रंगमंच बने हैं, जैसे थिएटर सेंटर के तत्त्वावधान में दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, इलाहाबाद, हैदराबाद, बंगलौर, शान्तिनिकेतन आदि स्थानों पर स्थायी रंगमंच स्थापित हैं। केन्द्रीय सरकार भी इस और पर्याप्त ध्यान दे रही है। पर इन सर्वभाषायी रंगमंचों पर हिन्दी भिखारिणी-सी ही प्रतीत होती है।

केन्द्रीय सरकार ने संगीत नाटक अकादमी की स्थापना की है, जिसमें अच्छे नाटककारों और कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जाता है।

व्यावसायिक रंगमंच के निर्माण के भी पिछले दिनों कुछ प्रयत्न हुए हैं। प्रसिद्ध कलाकार स्वर्गीय पृथ्वीराज कपूर ने कुछ वर्ष हुए पृथ्वी थियेटर की स्थापना की थी। उन्होंने कई नाटक प्रस्तुत किए हैं, जैसे 'दीवार', 'गद्दार', 'पठान', 'कलाकार', 'आहूति' आदि। धन की हानि उठाकर भी कुछ वर्ष इस कम्पनी ने उत्साहपूर्वक अच्छा कार्य किया। पर इतने प्रयास पर भी बंबई, दिल्ली या किसी जगह हिन्दी का स्थायी व्यावसायिक रंगमंच नहीं बन सका है। इस मार्ग में कठिनाइयाँ हैं।

अजातशत्रु

जयशंकर प्रसाद

इतिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होते देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें कोई नई घटना होती ही नहीं। किन्तु असाधारण नई घटना भी भविष्यत् में फिर होने की आशा रखती है। मानव-समाज की कल्पना का भण्डार अक्षय है, क्योंकि वह इच्छा-शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं का, इच्छाओं का मूल-सूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छा-शक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केन्द्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रुप धारण करती है, तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती, तब तक वह रुप-परिवर्तन करती हुई, पुनरावृत्ति करती ही जाती है। समाज की अभिलाषा अनन्त स्त्रोतवाली है। पूर्व कल्पना के पूर्ण होते-होते एक नई कल्पना उसका विरोध करने लगती है, और पूर्व कल्पना कुछ काल तक ठहरकर, फिर होने के लिए अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इधर इतिहास का नवीन अध्याय खुलने लगता है। मानव-समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।

भारत का ऐतिहासिक काल गौतम बुद्ध से माना जाता है, क्योंकि उस काल की बौद्ध-कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी प्रसंग आता है। लोग वहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य संसार में बड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिए हम कहैंगे कि भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इन्द्र तक के साम्यवाद की शंखध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास-काल का प्रारम्भ मानने से गर्व होना चाहिए।

भारत-युद्ध के पौराणिक काल के बाद इन्द्रप्रस्थ के पाण्डवों की प्रभुता कम होने पर बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने-अपने देशों में शासन करती थीं। बौद्धों के प्राचीन संघों में ऐसे 16 राष्ट्रों के उल्लेख हैं, प्रायः उनका वर्णन भौगोलिक क्रम के अनुसार न होकर जातीयता के अनुसार है। उनके नाम हैं-अंग, मगध, काशी, कोसल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवन्ति, गांधार और काम्बोज।

उस काल में जिन लोगों से बौद्धों का सम्बन्ध हुआ है, इनमें उन्हीं का नाम है। जातक-कथाओं में शिवि, सौवीर, नद्र, विराट् और उद्यान का भी नाम आया है, किन्तु उनकी प्रधानता नहीं है। उस समय जिन छोटी-से-छोटी जातियों, गणों और राष्ट्रों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से हुआ, उन्हें प्रधानता दी गई, जैसे 'मल्ल' आदि।

अपनी-अपनी स्वतन्त्र कुलीनता और आचार रखने वाले इन राष्ट्रों में-कितनों ही में गणतन्त्र शासन-प्रणाली भी प्रचलित थी-निसर्ग-नियमानुसार एकता, राजनीति के कारण नहीं, किन्तु एक-से होने वाली धार्मिक क्रान्ति से थी।

वैदिक हिंसापूर्ण यज्ञों और पुरोहितों के एकाधिपत्य से साधारण जनता के हृदय-क्षेत्र में विद्रोह की उत्पत्ति हो रही थी। उसी के फलस्वरुप जैन-बौद्ध धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। चरम अहिंसावादी जैन-धर्म के बाद बौद्ध-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वह हिंसामय 'वेद-वाद' और पूर्ण अहिंसा वाली जैन-दीक्षाओं के 'अति-वाद' से बचता हुआ एक मध्यवर्ती नया मार्ग था। सम्भवत: धर्म-चक्र-प्रवर्तन के समय गौतम ने इसी से अपने धर्म को 'मध्यमा प्रतिपदा' के नाम से अभिहित किया और इसी धार्मिक क्रान्ति ने भारत के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों को परस्पर सन्धि-विग्रह के लिए बाध्य किया।

इन्द्रप्रस्थ और अयोध्या के प्रभाव का ह्रास होने पर, इसी धर्म के प्रभाव से पाटलिपुत्र पीछे बहुत दिनों तक भारत की राजधानी बना रहा। उस समय के बौद्ध-ग्रन्थों में ऊपर कहे हुए बहुत-से राष्ट्रों में से चार प्रमुख राष्ट्रों का अधिक वर्णन है-कोसल, मगध, अवन्ति और वत्स। कोसल का पुराना राष्ट्र सम्भवत: उस काल में सब राष्ट्रों से विशेष मर्यादा रखता थाय किन्तु वह जर्जर हो रहा था। प्रसेनजित् वहाँ का राजा था। अवन्ति में प्रद्योत (पज्जोत) राजा था। मालव का राष्ट्र भी उस समय सबल था। मगध, जिसने कौरवों के बाद भारत मे महान् साम्राज्य स्थापित किया, शक्तिशाली हो रहा था। बिम्बिसार वहाँ के राजा थे। अजातशत्रु वैशाली (वृजि) की राजकुमारी से उत्पन्न, उन्हीं का पुत्र था। इसका वर्णन भी बौद्धों की प्राचीन कथाओं में बहुत मिलता है। बिम्बिसार की बड़ी रानी कोसला (वासवी) कोसल नरेश प्रसेनजित् की बहन थी। वत्स-राष्ट्र की राजधानी कौशाम्बी थी, जिसका खँडहर जिला बाँदा (करुई सब-डिवीजन) में यमुना-किनारे 'कोसम' नाम से प्रसिद्ध है। उदयन इसी कौशाम्बी का राजा था। इसने मगध-राज और अवन्ति-नरेश की राजकुमारियों से विवाह किया था। भारत

के सहस्त्र-रजनी-चरित्र 'कथा-सरित्सागर' का नायक इसी का पुत्र नरवाहनदत्त है।

वृहत्कथा (कथा-सरित्सागर) के आदि आचार्य वररुचि हैं, जो कौशाम्बी में उत्पन्न हुए थे। और जिन्होंने मगध में नन्द का मन्त्रित्व किया। उदयन के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नन्दिवर्धन और महानन्द नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानन्द के पुत्र, महापद्म ने नंद-वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि आठ नन्दों ने शासन किया। (विष्णुपुराण, 4 अंश)। किसी के मत से महानन्द के बाद नवनन्दों ने राज्य किया। इस 'नवनन्द' वाक्य के दो अर्थ हुए-नवनन्द (नवीन नन्द), तथा महापद्म और सुमाल्य आदि नौ नन्द। इनका राज्यकाल भी, पुराणों के अनुसार, 100 वर्ष होता है। नन्द के पहले राजाओं का राज्य-काल भी, पुराणों के अनुसार, लगभग 100 वर्ष होता है। ढुण्ढि ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात में अन्तिम नन्द का नाम धननन्द लिखा है। इसके बाद योगानन्द का मन्त्री वररुचि हुआ। यदि ऊपर लिखी हुई पुराणों की गणना सही है, तो मानना होगा कि उदयन के पीछे 200 वर्ष के बाद वररुचि हुए, क्योंकि पुराणों के अनुसार 4 शिशुनाग वंश के और 9 नन्दवंश के राजाओं का राज्य-काल इतना ही होता है। महावंश और जैनों के अनुसार कालाशोक के बाद केवल नवनन्द का नाम आता है। कालाशोक पुराणों का महापद्म नन्द है। बौद्धमतानुसार इन शिशुनाग तथा नन्दों का सम्पूर्ण राज्यकाल 100 वर्ष से कुछ ही अधिक होता है। यदि इसे माना जाए, तो उदयन के 100-125 वर्ष पीछे वररुचि का होना प्रमाणित होगा। कथा-सरित्सागर में इसी का नाम 'कात्यायन' भी है-''नाम्नाववररुचिः किं च कात्यायन इति श्रुतः''। इन विवरणों से प्रतीत होता है कि वररुचि उदयन के 125-200 वर्ष बाद हुए। विख्यात उदयन की कौशाम्बी वररुचि की जन्मभूमि है।

मूल वृहत्कथा वररुचि ने काणभूति से कही, और काणभूति ने गुणाढ्य से। इससे व्यक्त होता है कि यह कथा वररुचि के मस्तिष्क का आविष्कार है, जो सम्भवतः उसने संक्षिप्त रुप से संस्कृत में कही थीय क्योंकि उदयन की कथा उसकी जन्म-भूमि में किम्वदन्तियों के रुप में प्रचलित रही होगी। उसी मूल उपाख्यान को क्रमशः काणभूति और गुणाढ्य ने प्राकृत और पैशाची भाषाओं में विस्तारपूर्वक लिखा। महाकवि क्षेमेन्द्र ने उसे वृहत्कथा-मंजरी नाम से, संक्षिप्त रुप से, संस्कृत में लिखा। फिर काश्मीर-राज अनन्तदेव के राज्यकाल में कथा-सरित्सागर की रचना हुई। इस उपाख्यान को भारतीयों ने बहुत आदर दिया

और वत्सराज उदयन कई नाटकों और उपाख्यानों में नायक बनाए गए। स्वप्न-वासवदत्ता, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण और रत्नावली में इन्हीं का वर्णन है। 'हर्षचरित' में लिखा है-"नागवन विहारशीलं च मायामातंगांगान्निर्गता: महासेनसैनिका: वत्सपतिंन्ययंसिषु।'' मेघदूत में भी-"प्राप्यावन्तीनुदयन- कथाकोविदग्राममवृद्धाम्'' और ''प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोत्र जह्वे'' इत्यादि हैं। इससे इस कथा की सर्वलोकप्रियता समझी जा सकती है। वररुचि ने इस उपाख्यान-माला को सम्भवत: 350 ई. पूर्व लिखा होगा। सातवाहन नामक आंध्र-नरपति के राजपण्डित गुणाढ्य ने इसे वृहत्कथा नाम से ईसा की पहली शताब्दी में लिखा। इस कथा का नायक नरवाहनदत्त इसी उदयन का पुत्र था।

बौद्धों के यहाँ इसके पिता का नाम 'परन्तप' मिलता है। और 'मरन परिदीपितउदेनिवस्तु' के नाम से एक आख्यायिका है। उसमें भी (जैसा कि कथा-सरित्सागर में) इसकी माता का गरुड़ वंश के पक्षी द्वारा उदयगिरि की गुफा में ले जाया जाना और वहाँ एक मुनि कुमार का उनकी रक्षा और सेवा करना लिखा है। बहुत दिनों तक इसी प्रकार साथ रहते-रहते मुनि से उसका स्नेह हो गया और उसी से वह गर्भवती हुई। उदयगिरि (कलिंग) की गुफा में जन्म होने के कारण लड़के का नाम उदयन पड़ा। मुनि ने उसे हस्ती-वश करने की विद्या, और भी कई सिद्धियाँ दीं। एक वीणा भी मिली (कथा-सरित्सागर के अनुसार, वह प्राण बचाने पर, नागराज ने दी थी)। वीणा द्वारा हाथियों और शबरों की बहुत-सी सेना एकत्र करके उसने कौशाम्बी को हस्तगत किया और अपनी राजधानी बनाया, किन्तु वृहत्कथा के आदि आचार्य वररुचि का कौशाम्बी में जन्म होने के कारण उदयन की और विशेष पक्षपात-सा दिखाई देता है। अपने आख्यान के नायक को कुलीन बनाने के लिए उसने उदयन को पाण्डव वंश का लिखा है। उनके अनुसार उदयन गाण्डीवधारी अर्जुन की सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न सहस्त्रानीक का पुत्र था। बौद्धों के मतानुसार 'परन्तप' के क्षेत्रज पुत्र उदयन की कुलीनता नहीं प्रकट होतीय परन्तु वररुचि ने लिखा है कि इन्द्रप्रस्थ नष्ट होने पर पाण्डव-वंशियों ने कौशाम्बी को राजधानी बनाया। वररुचि ने यों सहस्त्रानीक से कौशाम्बी के राजवंश का आरम्भ माना है। कहा जाता है, इसी उदयन ने अवन्तिका को जीतकर उसका नाम उदयपुरी या उज्जयनपुरी रखा। कथा-सरित्सागर में उदयन के बाद नरवाहनदत्त का ही वर्णन मिलता है। विदित होता है, एक-दो पीढ़ी चलकर उदयन का वंश मगध की साम्राज्य-लिप्सा और उसकी रणनीति में अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं रख सका।

किन्तु विष्णुपुराण की एक प्राचीन प्रति में कुछ नया शोध मिला है और उससे कुछ और नई बातों का पता चलता है। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंक के 21वें अध्याय में लिखा है कि ''तस्यापि, जन्मेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेना: पुत्राश्चत्वारो भविष्यन्ति।। 1। तस्यापर: शतानीको भविष्यति योसौ...विषयविरक्तचित्तो... निर्वाणमाप्यति।। 2।। शतानीकादश्वमेघदत्तो भविता। तस्मादप्यधिसीमकृष्ण: अधिसीमकृष्णात् नृचक्षु: यो गंगयापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्याम् निवत्स्यति।''

इसके बाद 17 राजाओं के नाम हैं। फिर ''ततोप्यपर: शतानीक: तस्माच्च उदयन: उदयनादहीनर:'' लिखा है।

इससे दो बातें व्यक्त होती हैं। पहली यह कि शतानीक कौशाम्बी में नहीं गएय किन्तु नृचक्षु नामक पाण्डव-वंशी राजा हस्तिनापुर के गंगा में बह जाने पर कौशाम्बी गए। उनसे 29वीं पीढ़ी में उदयन हुए। सम्भवत: उनके पुत्र अहीनर का ही नाम कथा-सरित्सागर में नरवाहनदत्त लिखा है।

दूसरी यह कि शतानीक इस अध्याय में दोनों स्थान पर 'अपरशतानीक' करके लिखा गया है। 'अपरशतानीक' का विषय-विरागी होना, विरक्त हो जाना लिखा है। सम्भवत: यह शतानीक उदयन के पहले का कौशाम्बी का राजा है। अथवा बौद्धों की कथा के अनुसार इसकी रानी का क्षेत्रज पुत्र उदयन है, किन्तु वहाँ नाम-इस राजा का परन्तप है। जन्मेजय के बाद जो 'अपरशतानीक' आता है, वह भ्रम-सा प्रतीत होता है, क्योंकि जन्मेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया थाय इसलिए जन्मेजय के पुत्र का नाम अश्वमेधदत्त होना कुछ संगत प्रतीत होता है, अतएव कौशाम्बी में इस दूसरे शतानीक की ही वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है, जिसकी स्त्री किसी प्रकार (गरुड़ पक्षी द्वारा) हरी गई। उस राजा शतानीक के विरागी हो जाने पर उदयगिरि की गुफा में उत्पन्न विजयी और वीर उदयन, अपने बाहुबल से, कौशाम्बी का अधिकारी हो गया। इसके बाद कौशाम्बी के सिंहासन पर क्रमश: अहीनर (नरवाहनदत्त), खण्डपाणि, नरमित्र और क्षेमक-ये चार राजा बैठे। इसके बाद कौशाम्बी के राजवंश या पाण्डव-वंश का अवसान होता है।

अर्जुन से सातवीं पीढ़ी में उदयन का होना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि अर्जुन के समकालीन जरासंध के पुत्र सहदेव से लेकर, शिशुनाग वंश से पहले के जरासंध वंश के 22 राजा मगध के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद 12 शिशुनाग वंश के बैठे जिनमें छठे और सातवें राजाओं के समकालीन उदयन थे। तो क्या एक वंश में उतने ही समय में, तीस पीढ़ियाँ हो गई जितने में कि दूसरे वंश में केवल सात पीढ़ियाँ हुई! यह बात कदापि मानने

योग्य न होगी। सम्भवत: इसी विषमता को देखकर श्रीगणपति शास्त्री ने ''अभिमन्यो: पंचविंश सन्तान:'' इत्यादि लिखा है। कौशाम्बी में न तो अभी विशेष खोज हुई है, और न शिलालेख इत्यादि ही मिले हैं, इसलिए सम्भव है, कौशाम्बी के राजवंश का रहस्य अभी पृथ्वी के गर्भ में ही दबा पड़ा हो।

कथा-सरित्सागर में उदयन की दो रानियों के ही नाम मिले हैं। वासवदत्ता और पद्मावती। किन्तु बौद्धों के प्राचीन ग्रन्थों में उसकी तीसरी रानी मागन्धी का नाम भी आया है।

वासवदत्ता उसकी बड़ी रानी थी जो अवन्ति के चण्डमहासेन की कन्या थी। इसी चण्ड का नाम प्रद्योत भी था, क्योंकि मेघदूत में ''प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोत्र जह्वे'' और किसी प्रति में ''चण्डस्यात्र प्रियदुहितरं वत्सराजो विजह्वे'' ये दोनों पाठ मिलते हैं। इधर बौद्धों के लेखों में अवन्ति के राजा का नाम प्रद्योत मिलता है और कथा-सरित्सागर के एक श्लोक से एक भ्रम और भी उत्पन्न होता है। वह यह है-''ततश्चण्डमहासेनप्रद्योतो पितरो द्वयो देव्यो:'' तो क्या प्रद्योत पद्मावती के पिता का नाम था किन्तु कुछ लोग प्रद्योत और चण्डमहासेन को एक ही मानते हैं। यही मत ठीक है, क्योंकि भास ने अवन्ति के राजा का नाम प्रद्योत ही लिखा है, और वासवदत्ता में उसने यह दिखाया है कि मगध राजकुमारी पद्मावती को यह अपने लिए चाहता था। जैकोबी ने अपने वासवदत्ता के अनुवाद में अनुमान किया कि यह प्रद्योत चण्डमहासेन का पुत्र था किन्तु जैसा कि प्राचीन राजाओं में देखा जाता है, यह अवश्य अवन्ति के राजा का मुख्य नाम था। उसका राजकीय नाम चण्डमहासेन था। बौद्धों के लेख से प्रसेनजित् के एक दूसरे नाम 'अग्निदत्त' का भी पता लगता है। बिम्बिसार 'श्रेणिक' और अजातशत्रु 'कुणीक' के नाम से भी विख्यात थे।

पद्मावती, उदयन की दूसरी रानी, के पिता के नाम में बड़ा मतभेद है। यह तो निर्विवाद है कि वह मगधराज की कन्या थी, क्योंकि कथा-सरित्सागर में भी यही लिखा है, किन्तु बौद्धों ने उसका नाम श्यामावती लिखा है, जिस पर मागन्धी के द्वारा उत्तेजित किए जाने पर, उदयन बहुत नाराज हो गए थे। वे श्यामावती के ऊपर, बौद्ध-धर्म का उपदेश सुनने के कारण, बहुत क्रुद्ध हुए। यहाँ तक कि उसे जला डालने का भी उपक्रम हुआ था, किन्तु भास की वासवदत्ता में इस रानी के भाई का नाम दर्शक लिखा है। पुराणों में भी अजातशत्रु के बाद दर्शक, दर्भक और वंशक-इन कई नामों से अभिहित एक राजा का उल्लेख है, किन्तु महावंश आदि बौद्ध ग्रन्थों में केवल अजातशत्रु के पुत्र उदयाश्व का ही

नाम उदायिन, उदयभद्रक के रुपान्तर में मिलता है। मेरा अनुमान है कि पद्मावती अजातशत्रु की बहन थी और भास ने सम्भवत: (कुणीक के स्थान में) अजात के दूसरे नाम दर्शक का ही उल्लेख किया है जैसा कि चण्डमहासेन के लिए प्रद्योत नाम का प्रयोग किया है।

यदि पद्मावती अजातशत्रु की कन्या हुई, तो इन बातों को भी विचारना होगा कि जिस समय बिम्बिसार मगध में, अपनी वृद्धावस्था में राज्य कर रहा था, उस समय पद्मावती का विवाह हो चुका था। प्रसेनजित् उसका समवयस्क था। वह बिम्बिसार का साला था। कलिंगदत्त ने प्रसेनजित् को अपनी कन्या देनी चाही थी, किन्तु स्वयं उसकी कन्या कलिंगसेना ने प्रसेन को वृद्ध देखकर उदयन से विवाह करने का निश्चय किया था।

''श्रावस्तीं प्राप्य पूर्वं च तं प्रसेनजितम् नृपम्!
मृगयानिर्गतं दूराज्जरापाण्डुं ददर्श सा।।
तमुद्यानगता सावैवत्सेशं सख्युरुदीरितम्।'' इत्यादि
(मदनमंजुका लम्बक)

अर्थात्-पहले श्रावस्ती में पहुँचकर, उद्यान में ठहरकर, उसने सखी के बताए हुए वत्सराज प्रसेनजित् को, शिकार के लिए जाते समय, दूर से देखा। वह वृद्धावस्था के कारण पाण्डु-वर्ण हो रहे थे।

इधर बौद्धों ने लिखा है कि ''गौतम ने अपना नवाँ चातुर्मास्य कौशाम्बी में, उदयन के राज्य-काल में, व्यतीत किया और 45 चातुर्मास्य करके उनका निर्वाण हुआ।'' ऐसा भी कहा जाता है-अजातशत्रु के राज्याभिषेक के नवें या आठवें वर्ष में गौतम का निर्वाण हुआ। इससे प्रतीत होता है कि गौतम के 35वें 36वें चातुर्मास्य के समय अजातशत्रु सिंहासन पर बैठा। तब तक वह बिम्बिसार का प्रतिनिधि या युवराज मात्र थाय क्योंकि अजात ने अपने पिता को अलग करके, प्रतिनिधि रुप से, बहुत दिनों तक राज-कार्य किया था, और इसी कारण गौतम ने राजगृह का जाना बन्द कर दिया था। 35वें चातुर्मास्य में 9 चातुर्मास्यों का समय घटा देने से निश्चय होता है कि अजात के सिंहासन पर बैठने के 26 वर्ष पहले उदयन ने पद्मावती और वासवदत्ता से विवाह कर लिया था और वह एक स्वतन्त्र शक्तिशाली नरेश था। इन बातों को देखने से यह ठीक जँचता है कि पद्मावती अजातशत्रु की बड़ी बहन थी, और पद्मावती को अजातशत्रु से बड़ी मानने के लिए यह विवरण यथेष्ट है। दर्शक का उल्लेख पुराणों में मिलता है, और भास ने भी अपने नाटक में वही नाम लिखा है, किन्तु समय का व्यवधान

देखने से–और बौद्धों के यहाँ उसका नाम न मिलने से–यही अनुमान होता है कि प्रायः जैसे एक ही राजा को बौद्ध, जैन और पौराणिक लोग भिन्न–भिन्न नाम से पुकारते हैं, वैसे ही दर्शक, कुणीक और अजातशत्रु–ये नाम एक ही व्यक्ति के हैं, जैसे बिम्बिसार के लिए विन्ध्यसेन और श्रेणिक–ये दो नाम और भी मिलते हैं। प्रोफेसर गैगर महावंश के अनुवाद में बड़ी दृढ़ता से अजातशत्रु और उदयाश्व के बीच में दर्शक नाम के किसी राजा के होने का विरोध करते हैं। कथा–सरित्सागर के अनुसार प्रद्योत ही पद्मावती के पिता का नाम था। इन सब बातों को देखने से यही अनुमान होता है कि पद्मावती बिम्बिसार की बड़ी रानी कोसला (वासवी) के गर्भ से उत्पन्न मगध राजकुमारी थी।

नवीन उन्नतिशील राष्ट्र मगध, जिसने कौरवों के बाद महान् साम्राज्य भारत में स्थापित किया, इस नाटक की घटना का केन्द्र है। मगध को कोसल का दिया हुआ, राजकुमारी कोसला (वासवी) के दहेज में काशी का प्रान्त था, जिसके लिए मगध के राजकुमार अजातशत्रु और प्रसेनजित् से युद्ध हुआ। इस युद्ध का कारण, काशी–प्रान्त का आयकर लेने का संघर्ष था। 'हरितमात', 'बड्ढकीसूकर', 'तच्छसूकर' जातक की कथाओं का इसी घटना से सम्बन्ध है।

अजातशत्रु जब अपने पिता के जीवन में ही राज्याधिकार का भोग कर रहा था और जब उसकी विमाता कोसलकुमारी वासवी अजात के द्वारा एक प्रकार से उपेक्षित–सी हो रही थी, उस समय उसके पिता (कोसलनरेश) प्रसेनजित् ने उद्योग किया कि मेरे दिए हुए काशी–प्रान्त का आयकर वासवी को ही मिले। निदान, इस प्रश्न को लेकर दो युद्ध हुए। दूसरे युद्ध में अजातशत्रु बन्दी हुआ। सम्भवतः इस बार उदयन ने भी कोसल को सहायता दी थी। फिर भी निकट–सम्बन्धी जानकर समझौता होना अवश्यम्भावी था, अतएव प्रसेनजित् ने मैत्री चिस्थायी करने के लिए, और अपनी बात भी रखने के लिए अजातशत्रु से अपनी दुहिता वाजिराकुमारी का ब्याह कर दिया।

अजातशत्रु के हाथ से उसके पिता बिम्बिसार की हत्या होने का उल्लेख भी मिलता है। 'थुस जातक कथा' अजातशत्रु के अपने पिता से राज्य छीन लेने के सम्बन्ध में, भविष्यवाणी के रुप में, कही गई है। परन्तु बुद्धघोष ने बिम्बिसार को बहुत दिन तक अधिकारच्युत होकर बन्दी की अवस्था में रहना लिखा है। और जब अजातशत्रु को पुत्र हुआ, तब उसे 'पैतृक स्नेह' का मूल्य समझ पड़ा। उस समय वह स्वयं पिता को कारागार से मुक्त करने के लिए गया। किन्तु उस समय वहाँ महाराज बिम्बिसार की अन्तिम अवस्था थी। इस तरह से भी पितृहत्या

का कलंक उस पर आरोपित किया जाता है, किन्तु कई विद्वानों के मत से इसमें सन्देह है कि अजात ने वास्तव में पिता को बन्दी बनाया या मार डाला था। उस काल की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि बिम्बिसार पर गौतम बुद्ध का अधिक प्रभाव पड़ा था। उसने अपने पुत्र का उद्धत स्वभाव देखकर जो कि गौतम के विरोधी देवदत्त के प्रभाव में विशेष रहता था, स्वयं सिंहासन छोड़ दिया होगा।

इसका कारण भी है। अजातशत्रु की माता छलना, वैशाली के राजवंश की थी, जो जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की निकट-सम्बन्धिनी भी थी। वैशाली की वृजि-जाति (लिच्छवि) अपने गोत्र के महावीर स्वामी का धर्म विशेष रुप से मानती थी। छलना का झुकाव अपने कुल-धर्म की और अधिक था। इधर देवदत्त जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने गौतम बुद्ध को मार डालने का एक भारी षड्यन्त्र रचा था और किशोर अजात को अपने प्रभाव में लाकर राजशक्ति से भी उसमें सहायता लेना चाहता था- चाहता था कि गौतम से संघ में अहिंसा की ऐसी व्याख्या प्रचारित करावे जो कि जैन धर्म से मिलती हो, और उसके इस उद्देश्य में राजमाता की सहानुभूति का भी मिलना स्वाभाविक ही था।

बौद्ध-मत में बुद्ध ने कृत, दृष्ट और उद्दिष्ट-इन्हीं तीन प्रकार की हिंसाओं का निषेध किया था। यदि भिक्षा में मांस भी मिले, तो वर्जित नहीं था। किन्तु देवदत्त यह चाहता था कि 'संघ में यह नियम हो जाए कि कोई भिक्षु मांस खाए ही नहीं।' गौतम ने ऐसी आज्ञा नहीं प्रचारित की। देवदत्त को धर्म के बहाने छलना की सहानुभूति मिली और बड़ी रानी तथा बिम्बिसार के साथ, जो बुद्धभक्त थे, शत्रुता की जाने लगी।

इसी गृह-कलह को देखकर बिम्बिसार ने स्वयं सिंहासन त्याग दिया होगा और राजशक्ति के प्रलोभन से अजात को अपने पिता पर सन्देह रखने का कारण हुआ होगा और विशेष नियन्त्रण की भी आवश्यकता रही होगी। देवदत्त और अजात के कारण गौतम को कष्ट पहुँचाने का निष्फल प्रयास हुआ। सम्भवत: इसी से अजात की क्रूरताओं का बौद्ध-साहित्य में बड़ा अतिरंजित वर्णन मिलता है।

कोसल-नरेश प्रसेनजित् के-शाक्य-दासी-कुमारी के गर्भ से उत्पन्न-कुमार का नाम विरुद्धक था। विरुद्धक की माता का नाम जातकों में बासभखत्तिया मिलता है। (उसी का कल्पित नाम शक्तिमती है) प्रसेनजित् अजात के पास सहायता के लिए राजगृह आया था, किन्तु 'भद्दसाल-जातक' में इसका विस्तृत विवरण मिलता है कि विद्रोही विरुद्धक गौतम के कहने पर फिर से अपनी पूर्व मर्यादा पर अपने पिता के द्वारा अधिष्ठित हुआ। इसने कपिलवस्तु का जनसंहार

इसलिए चिढ़कर किया था कि शाक्यों ने धोखा देकर प्रसेनजित् से शाक्य-कुमारी के बदले एक दासीकुमारी से ब्याह कर दिया था, जिससे दासी-सन्तान होने के कारण विरुद्धक को अपने पिता के द्वारा अपदस्थ होना पड़ा था। शाक्यों के संहार के कारण बौद्धों ने इसे भी क्रूरता का अवतार अंकित किया है। 'भद्दसाल-कथा' के सम्बन्ध में जातक में कोसल-सेनापति बन्धुल और उसकी स्त्री मल्लिका का विशद वर्णन है। इस बन्धुल के पराक्रम से भीत होकर कोसल-नरेश ने इसकी हत्या करा डाली थी और इसका बदला लेने के लिए उसके भागिनेय दीर्घकारायण ने प्रसेनजित् से राजचिह्न लेकर क्रूर विरुद्धक को कोसल के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

प्रसेन और विरुद्धक सम्बन्धिनी घटना का वर्णन 'अवदान-कल्पलता' में भी मिलता है। बिम्बिसार और प्रसेन दोनों के पुत्र विद्रोही थे और तत्कालीन धर्म के उलट-फेर में गौतम के विरोधी थे। इसीलिए इनका क्रूरतापूर्ण अतिरंजित चित्र बौद्ध-इतिहास में मिलता है। उस काल के राष्ट्रों के उलट-फेर में धर्म-दुराग्रह ने भी सम्भवत: बहुत भाग लिया था।

मागन्धी (श्यामा), जिसके उकसाने से पद्मावती पर उदयन बहुत असन्तुष्ट हुए थे, ब्राह्मण-कन्या थी, जिसको उसके पिता गौतम से ब्याहना चाहते थे, और गौतम ने उसका तिरस्कार किया था। इसी मागन्धी को और बौद्धों के साहित्य में वर्णित आम्रपाली (अम्बपाली) को, हमने कल्पना द्वारा एक में मिलाने का साहस किया है। अम्बपाली पतिता और वेश्या होने पर भी गौतम के द्वारा अन्तिम काल में पवित्र की गई। (कुछ लोग जीवक को इसी का पुत्र मानते हैं।)

लिच्छवियों का निमन्त्रण अस्वीकार करके गौतम ने उसकी भिक्षा ग्रहण की थी। बौद्धों की श्यामावती वेश्या आम्रपाली, मागन्धी और इस नाटक की श्यामा वेश्या का एकत्र संघटन कुछ विचित्र तो होगा, किन्तु चरित्र का विकास और कौतुक बढ़ाना ही इसका उद्देश्य है।

सम्राट् अजातशत्रु के समय में मगध साम्राज्य-रुप में परिणत हुआय क्योंकि अंग और वैशाली को इसने स्वयं विजय किया था और काशी अब निर्विवाद रुप से उसके अधीन हो गई थी। कोसल भी इसका मित्रराष्ट्र था। उत्तरी भारत में यह इतिहासकाल का प्रथम सम्राट् हुआ। मथुरा के समीप परखम गाँव में मिली हुई अजातशत्रु की मूर्ति देखकर मिस्टर जायसवाल की सम्मति है कि अजातशत्रु ने सम्भवत: पश्चिम में मथुरा तक भी विजय किया था।

3

कहानी

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रुप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सौपर्णी-काद्रव', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'शृंग', 'नहुष', याति', ''ाकुन्तला', 'नल-दमयन्ती' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रुप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं, भी कहानी के ही रुप हैं। 'गुणढ्य' की 'वृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी',

'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान 'ाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्च्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई हैं

परिभाषा

अमेरिका के कवि-आलोचक-कथाकार 'एडगर एलिन पो' के अनुसार कहानी की परिभाषा इस प्रकार है: 'कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।' हिंदी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रुप देने वाले 'प्रेमचन्द' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की है: 'कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।' हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं -'कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रुप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रुप में दृष्टिगोचर होता है।' कहानी की और भी परिभाषाएँ उद्धृत की जा सकती हैं। पर किसी भी साहित्यिक विधा को वैज्ञानिक परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि साहित्य में विज्ञान की सुनिश्चितता नहीं होती। इसलिए उसकी जो भी परिभाषा दी जाएगी, वह अधूरी होगी।

कहानी के तत्त्व

1. कथानक या कथावस्तु
2. पात्र चरित्र चित्रण
3. कथोकथन या संवाद
4. देशकाल या वातावरण
5. भाषा शैली
6. उद्देश्य

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्त्व महत्त्वपूर्ण माने गए हैं कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं - आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है। चरित्र चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वंद्व एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग-अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता, अपितु उसका एक निश्र्घचित उद्देश्य भी होता है।

हिन्दी कहानी का इतिहास

1910 से 1960 के बीच हिन्दी कहानी का विकास जितनी गति के साथ हुआ उतनी गति किसी अन्य साहित्यिक विधा के विकास में नहीं देखी जाती। सन 1900 से 1915 तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) 1907 गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) 1902, पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) 1903, ग्यारह वर्ष का समय

(रामचंद्र शुक्ल) 1903, दुलाईवाली (बंगमहिला) 1907, विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) 1909, राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) 1909, ग्राम (जयशंकर 'प्रसादश) 1911, सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1911, रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) 1912, परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) 1912, कानों में कंगना (राजाराधिकारमण प्रसाद सिंह) 1913, रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिकश) 1913, उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1915, आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिह्न मिल जाते हैं। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की और मुड़ा। और प्रसाद के आगमन से रोमांटिक यथार्थवाद की और। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। सन 1922 में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश हुआ। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे -प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। 1927-1928 में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू हुआ। 1936 प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे, अतः वह प्रभाव उनकी कहानियों में भी आया। अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार थे, उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की और मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं। अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 1950 के आसपास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगीं। आधुनिकता बोध की कहानियाँ या नई कहानी नाम दिया गया।

हिंदी कहानियों का इतिहास भारत में सदियों पुराना है। प्राचीन काल से ही कहानियां भारत में बोली, सुनी और लिखी जा रही है। ये कहानियां ही है, जो हमें हिम्मत से भर देती है और हम असंभव कार्य को भी करने को तैयार हो जाते है और अत्यंत कठिनाइयों के बावजूद ज्यादातर कार्य पूरे भी होते है

शिवाजी महाराज को उनकी माता ने कहानी सुना-सुनाकर इतना महान बना दिया कि शिवाजी महाराज छत्रपति शिवाजी महाराज बन गए। हिंदी कहानियों को पढ़ कर आप अपने आत्म विश्वास को बढ़ा सकते है जिससे आपके सामने जो कोई समस्या है उसको सुलझा सकते है हिन्दी कहानी हिंदी साहित्य की प्रमुख कथात्मक विधा है। आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ 20 वीं सदी में हुआ। पिछले एक सदी में हिंदी कहानी ने आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, मनोविश्लेषणवाद, आँचलिकता, आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियां हासिल की है। निर्मल वर्मा के वे दिन जैसे कहानी संग्रह साहित्य अकादमी से भी सम्मानित हो चुके हैं। प्रेमचंद, जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, ज्ञानरंजन, उदय प्रकाश, ओमप्रकाश बाल्मिकी आदि हिंदी के प्रमुख कहानी कार हैं।

पहली कहानी कौन

कहानी के तत्वों की पर्याप्त उपस्थिति के आधार पर हिंदी कहानियों के वर्गीकरण की शृंखला में 'हिंदी की पहली कहानी' का प्रश्न विवाद ग्रस्त है। सबसे प्राचीन कहानियों में, कालक्रम की दृष्टि से सैयद इंशा अल्लाह खान द्वारा 1803 या 1808 ईस्वी में रचित 'रानी केतकी की कहानी' जहां मध्यकालीन किस्म की किस्सागोई मात्र है, जो पारसी थियेटर के लटकों- झटकों से भरी है, वहीं 1871 ईस्वी में अमेरिकी पादरी रेवरेंड जे. न्यूटन द्वारा रचित कहानी 'एक जमींदार का दृष्टांत' आदर्शवादी धर्म प्रचारक दृष्टिकोणान्मुख-आंतरिक संरचना की दृष्टि से कमजोर रचना है। इसी क्रम में किशोरी लाल गोस्वामी की ' प्रणयिनी परिणय', राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की 'राजा भोज का सपना', भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' भी अपने परंपरागत स्वरुप के कारण कहानी की कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में 'सरस्वती' तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इंदुमति', माधवराव सप्रे द्वारा रचित 'एक टोकरी भर मिट्टी', आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा राजेंद्र वाराघोष बंग महिला द्वारा रचित 'दुलाईवाली' आदि कहानियों की गिनती भी हिंदी की पहली कहानी बनने की होड़ में की जाती है। उपर्युक्त कहानियों में से 'इंदुमती' (1900 ई.) को शुक्ल जी इस शर्त पर 'हिंदी की पहली कहानी' मानते हैं कि वह किसी बंगला कहानी की छाया न हो। बाद में उसे

शेक्सपियर की रचना 'द टेंपेस्ट' से प्रभावित पाए जाने पर, हिंदी की पहली कहानी बनने की होड़ से बाहर कर दिया गया।

अब 1901 ई. में, 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्रिका में प्रकाशित रचना 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिंदी की पहली कहानी के रुप में स्वीकृत है। वस्तुतः कहानी के तत्वों के आधार पर यह पहली रचना है जिसे कहानी मानने में कोई समस्या नहीं दिखाई पड़ती।

विकास का पहला दौर

वस्तुतः सन 1900 ई. से 1915 ई. तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र) 1907 ई. गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) 1902 ई., पंडित और पंडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी) 1903 ई., ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) 1903 ई., दुलाईवाली (बंगमहिला) 1907 ई., विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा) 1909 ई., राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा) 1909 ई., ग्राम (जयशंकर 'प्रसादश) 1911 ई., सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1911 ई., रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद) 1912 ई., परदेसी (विश्वम्भरनाथ जिज्जा) 1912 ई., कानों में कंगना (राजाराधिकारमणप्रसाद सिंह)1913 ई., रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक') 1913 ई., उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी) 1915 ई., आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिन्ह मिल जाते हैं। 1950 ई. तक हिन्दी कहानी का एक विस्तृत दौर समाप्त हो जाता है और हिन्दी कहानी परिपक्वता के दौर में प्रवेश करती है।

दूसरा दौर

प्रेमचंद और प्रसाद

सन 1916 ई., प्रेमचंद की पहली कहानी सौत प्रकाशित हुई। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य समाज-सापेक्ष सत्य की और मुड़ा। प्रेमचंद की आखिरी कहानी 'कफन' 1936 ई., में प्रकाशित हुई और उसी वर्ष उनका देहावसान भी हुआ। बीस वर्षों की इस अवधि में कहानी की कई प्रवृत्तियाँ उभर कर आईं। किंतु इन प्रवृत्तियों को अलग-अलग न देखकर यदि समग्रतः देखा जाय तो इस समूचे काल को आदर्श और यथार्थ के द्वंद्व के रुप में लिया जा

सकता है। इस कालावधि में 'प्रसाद' और प्रेमचंद कहानियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद मुख्यत रोमैंटिक कहानीकार हैं। किंतु उनके अंतिम कहानी संग्रह 'इंद्रजाल' (1936 ई.) में संग्रहीत इन्द्रजाल, गुंडा, सलीम, विरामचिन्ह से उनकी यथार्थोमुखी प्रवृत्ति को पहचाना जा सकता है। पर रोमैंटिक होने के कारण वे आदर्शवादी थे। प्रेमचंद ने अपने को आदर्शोमुखी यथार्थवादी कहा है। वस्तुत: वे भी आदर्शवादी थे। किंतु अपने विकास के अंतिम काल में वे यथार्थ की कटुता को भोगकर यथार्थवादी हो गए। 'पूस की रात' और 'कफन' इसके प्रमाण हैं। सन '33 में निराला का एक संग्रह 'लिली' प्रकाशित हो चुका था। उसकी कहानियाँ बहुत कुछ यथार्थवादी ही हैं।

प्रसाद का रोमैंटिक आदर्श उनकी प्रारम्भिक कहानियों में भी दिखाई देता है। पर चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' (1915 ई.) में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रोमैंटिक कहानियाँ 'उसने कहा था' के बाद लिखी गई। 'उसने कहा था' अपने परिपार्श्व (सेटिंग), चरित्र-कल्पना, परिणति में रोमैंटिक है। प्रेमजन्य त्याग, बलिदान -यहाँ तक कि मृत्यु का वरण सभी कुछ रोमैंटिक आदर्श की परिपूर्ति करते हैं। आठ वर्ष की लड़की और बारह वर्ष के लड़के में जिस प्रेम का उदय होता है वह पच्चीस वर्षों के अन्तराल के बाद भी इस तरह उभर आता है कि उस रोमैंटिक प्रेम के निमित्त लहना सिंह प्राण दे देता है। इस आदर्श की रक्षा के लिए वास्तविकता को नजरअंदाज कर दिया गया है। इस कहानी की तकनीकी उपलब्धियाँ अभूतपूर्व हैं। नाटकीयता, स्थानिक रंग, रंगीन सेटिंग, जीवंत वर्णन, फ्लैश बैक, स्वप्न आदि को कहानी में समाविष्ट करने का पहला श्रेय उन्हीं को है। प्रसाद ने अपनी कहानियों में गुलेरीजी की कतिपय तकनीकी विशेषताओं को ग्रहण किया हा पर वे मूलत प्रगीतात्मक (लीरिकल) हैं। प्रगीतों में कथा तत्त्व कम, भाव अधिक होता है। वे छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। अतीत के शौर्यमूलक चित्रों, प्रभावशाली प्राकृतिक वातावरणों, प्रेमगत अन्तर्द्वंद्वों में उनका मन अधिक रमा है। प्रेम और सौन्दर्य के चित्रण में उन्होंने सर्वाधिक मनोयोग से काम लिया है। एक दूसरी विशेषता, जो प्राय: अलक्षित रह जाती है, यह है कि उन्होंने कहानी के पात्रों को व्यक्तित्व दिया। व्यक्तिनिष्ठता छायावादी काव्य की विशेषता रही है। नाटकों के पात्रों को भी उन्होंने सर्वप्रथम व्यक्तित्व दिया। वही बात कहानी को संबंध में भी कही जा सकती है। 'गुण्डा' के बाबू नन्हूक सिंह जैसे व्यक्ति चरित्र की सृष्टि अद्वितीयता में अकेली है। इस प्रकार मधूलिका,

चम्पा, सालवती आदि भी अविस्मरणीय हैं। राष्ट्रीय चेतना छायावादी काव्य के एक वैशिष्टय है। इसे 'पुरस्कार' जैसी कहानियों में देखा जा सकता है। मन का गहन अन्तद्वंद्व तो इनकी कहानी का मूलाधार है। 'आकाशदीप' इसका जीवंत उदाहरण है। प्रगीतात्मकता के सभी तत्त्व –अत्यधिक धनत्वपूर्ण वेदना, एकतानता आदि के लिए विसाती द्रष्टव्य हैं।

एक अलग दृष्टिकोण अपनाने के कारण उनकी कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों से भिन्न हो जाती हैं। इसलिये आलोचकों ने प्रसाद संस्थान की कहानियों को प्रेमचंद-संस्थान की कहानियों से पृथक माना है। दृष्टिकोण का अलगाव संरचना का अलगाव होता है। उनके कथानक में घटनाएँ कम और स्थितियों (सिचुएशन्स) के प्रति प्रतिक्रियाएँ अधिक हैं। फलस्वरुप उनमें नाटकीयता का प्राधान्य हो गया है। उनके चरित्र भी स्थितियों से गुजर कर अपने क्रिया-कलापों द्वारा अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करते हैं। प्राकृतिक सेटिंग जहाँ कहीं भी ले आई गई है वह संपूर्ण कहानी का अनिवार्य अंग बन गई है। छायावादी काव्य की तरह उस पर भी मानवीय चेतना की आरोप दिखाई देता है। अनुभूति और कल्पना का इतना एकतान संयोग अन्यत्र नहीं मिलेगा। प्रेमचंद ने कहानियों को व्यष्टि-जीवन से समष्टि-जीवन की और मोड़ा। प्रसाद की कहानियों छायावादी काव्य-चेतना के इतने समीप है कि वे स्वयं प्रगीतात्मक हो गई हैं। उनमें मिश्रित भावों के द्वंद्व मुख्यत: काव्यात्मक और व्यक्तिमूलक हैं, इसलिए सामान्य जीवन का प्रवाह वहाँ नहीं मिलेगा। प्रेमचंद ने कहानियों पर लदी हुई आलंकारिता को अनलंकृत कर उन्हें सहज बनाया।

यों प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों में एक दूसरा अलगाव दिखाई पड़ता है। इसे सामान्यत: आदर्शवाद के नाम से पुकारा जाता है। पर उसे सुधारवाद कहना चाहिए। बड़े घर की बेटी का बड़प्पन, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन सुधारवाद के अंतर्गत ही आता है। पर क्रमश: उनमें परिवर्तन आया और उन्होंने यथार्थ भारतीय जीवन को आँकने का पूरा प्रयास किया। इस देश के मध्यवर्गीय समाज को इतने वैविध्य के साथ कहानियों में चित्रित करने का प्रयत्न किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया। संख्या में भी उन्होंने काफी कहानियाँ लिखी हैं –दो सौ चौबीस। कुछ ही कहानियाँ लिखने के बाद प्राय: कहानीकार अपने को दुहराने लगते हैं, किन्तु प्रेमचंद ने अपने को दुहराया नहीं है। यह उनकी दृष्टि-व्याप्ति का सूचक है। घरेलू जीवन की समस्याओं तथा सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं को जिस ढंग से उन्होंने चित्रित किया है वे

बहुत जटिल तो नहीं पर तात्कालीन परिवारों और संस्थाओं को उजागर करने में पूर्णत: समर्थ हैं। उनकी आदर्शोन्मुख और अनसंकृत कथा-शैली भारतीय कथा-आख्यायिका के मेल में अधिक है।

पर बाद में चलकर प्रेमचंद ने अनुभव किया कि उनके आदर्श जीवन में फलीभूत नहीं हुए। इसलिये कल्पनात्मक आदर्श का पल्ला छोड़कर वे यथार्थ जीवन की कटुताओं का चित्रण करने लगे। 'पूस की रात' और 'कफन' में उनके बदले हुए दृष्टिकोण तथा नई संरचना को देखा जा सकता है। इन दोनों कहानियों को विशेष रुप से अंतिम कहानी को पूर्णत: आधुनिक कहा जा सकता है। ये कहानियाँ किसी आदर्श की खूँटी पर नहीं टँगी हैं। इनमें आलोचक यह नहीं बता सकता कि कहानी का संप्रेषय कोई खास वस्तु है। वे अपना संप्रेश्य स्वयं हैं-आदि से अन्त तक। कोई परिणति नहीं है कोई चरमोत्कर्ष नहीं है। केवल सांकेतिकता है, पाठकों की कल्पना को उड़ान भरने की छूट है। आज की आलोचना में जिस भाषिक सर्जना की चर्चा की जाती है उसे इनमें पूरी ऊँचाई पर देखा जा सकता है। दोनों ही कहानियाँ अन्वेषण की प्रक्रिया का सुन्दर नमूना हैं। आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि आज की जिंदगी में जिस विदूषकत्व का प्रवेश देखा जा रहा है उसके तेवर 'कफन' में मौजूद हैं। किन्तु इस विदूषकत्व को (जो तथाकथित आलोचकों की दृष्टि में विकृति है) उन्होंनें रचनात्मक संदर्भ में रखा है, जो समूचे समाज को नंगा करते हुए एक अर्थपूर्ण मूल्यदृष्टि को संकेतिक करता है। एक ऐतिहासिक संगति के फलस्वरुप कफन में आधुनिक जीवन का अकेलापन और डीह्यूमनाइजेशन सदृश्य में ही समाविष्ट हो गया है। यह हिन्दी की पहली आधुनिकता बोध की कहानी है। प्रसाद और प्रेमचंद संस्थान के जो लेखक हुए उनमें विकास का कोई क्रम लक्षित नहीं होता है। उनकी कहानियों में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की झलक प्राय नहीं मिलती। रायकृष्णदास प्रसाद-संस्थान के लेखक हैं। चंडीप्रसाद हृदयेश में प्रसाद की काव्यात्मकता नहीं है, उनकी अलंकृति मात्र है। प्रेमचंद संस्थान के लेखकों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि की गणना की जाती है।

उग्र और जैनेन्द्र

सन 1922 ई. में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश होता है। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख

यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे -प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। समाज की गंदगी को अनावृत करने के कारण तथाकथित शुद्धतावादी आलोचकों ने उनकी तीखी आलोचना की। उनके साहित्य को घासलेटी साहित्य कहा गया। उन्होंने सामाजिक कुरुपताओं पर तीखा प्रहार किया। दोजख की आग, चिन्गारियाँ, बलात्कार, सनकी अमीर, चाकलेट, इन्द्रधनुष आदि उनकी सुप्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इन कहानियों को अमर्यादित और विघातक बताया गया है। लेकिन यदि उनकी बहुत सी कहानियाँ अमर्यादित हैं तो आज के लेखकों की अनेक कहानियों के संबंध में भी यही कहना होगा। उग्र की कहानियों के लिये एक प्रतिमान तथा आज की वैसी ही कहानियों के लिये दूसरा प्रतिमान नहीं लागू किया जा सकता। आज के संदर्भ में उग्र की कहानियों पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन आदि पर उग्र का प्रभाव देखा जा सकता है।

27-28 ई. में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनकी पहली कहानी खेल (सन 1927 ई) विशाल भारत में प्रकाशित हुई थी। फाँसी (1928 ई.) वातायन (1930 ई.) नीलम देश की राजकन्या (1933 ई.), एक रात (1934 ई.), दो चिड़ियाँ (1934 ई.), पाजेब (1942 ई.), जयसंधि (1947 ई.) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू होता है।

नए उत्थान का मतलब मनोवैज्ञानिक कहानियाँ कहने से स्पष्ट नहीं होता। उन्हें हिन्दी का शरद्चंद्र कह कर भी लोग भ्रांति की सृष्टि करते हैं। जैनेंद्र में शरद्चंद्र की रुआँसी भावुकता नहीं है। जैनेन्द्र की कहानियों में एक विशिष्ट प्रकार के जीवन-दर्शन की खोज है। प्रसाद की कहानियों में भी मन का गहरा द्वंद्व चित्रित हुआ है। पर इस द्वंद्व के आयाम सीमित हैं। जैनेन्द्र मन की परतें उघाड़ते हैं और उसके माध्यम से सत्यान्वेषण का प्रयास करते हैं। कहानियों के माध्यम से सत्यान्वेषण का यह प्रयास पहली बार जैनेन्द्र की कहानियों में दिखाई पड़ता है। जैनेन्द्र का कहना है -कहानी तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएँ होती हैं, चिंताएँ होती हैं और हम उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। ...। इस अन्वेषण की प्रक्रिया गाँधीवादी अहिंसा और फ्रायडवादी अचेतन मन के व्यापार से संबंध है। इसलिये जगह जगह नैतिक मानों का प्रश्न उठता है। पर जैनेन्द्र में एक प्रकार के रहस्य और गुह्यता के भी दर्शन

होते हैं। यह उनकी विशेषता और कमजोरी दोनों हैं। आगे चलकर जहाँ उनका दर्शन शिथिल और अन्वेषणहीन हो गया है बहाँ उसका तेवर अधिक स्थूल और चटकीला है। परवर्ती कहानियों की मुद्राएँ इसी तरह की हैं। उनकी कहानियों की संरचना व्यक्ति के बिंदु से शुरु होती है। अवचेतन मन की कुछ गुत्थियाँ उछाल दी जाती हैं। वे कभी अपनी ही किसी दूसरी प्रवृत्ति अथवा बाह्य नैतिकता से टकराती हैं। यह टकराहट आत्मपीड़ा और अहं के विलगन में परिणत होकर कहानी बन जाती है। उनमें प्राय तार्किक अन्विति का अभाव मिलता है और उसकी पूर्ति वे तर्कातीत रहस्य से करते हैं। आगे कुछ दिनों तक प्रेमचंद और जैनेन्द्र की परंपराओं का विकास ही हिन्दी -कहानी का विकास माना गया है।

यशपाल

यशपाल मूलत प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार हैं। '36 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। इसलिये साहित्य के वे साधन समझते थे, साध्य नहीं। स्पष्ट है कि उनकी कहानियाँ किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखी गई हैं। प्रेमचंद धन के दुश्मन थे तो यशपाल धनी के। धनी वर्ग हमारे समाज के कोढ़ हैं। सारी सांस्कृतिक -नैतिक असंगतियों के मूल में धन की विषमता ही क्रियाशील है। मार्क्स के साथ ही इन पर फ्रायड का भी गहरा प्रभाव है। फलत यौन-चेतना के खुले चित्र भी इनके कहानी उपन्यासों में मिलेंगे। इनके दर्जनों कहनी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं - पिंजड़े की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिशप्त, तर्क का तूफान, भस्मावृत चिन्गारी, फूलों का कुर्ता, उत्तमी की माँ आदि। यशपाल की कहानियों को दृष्टांत के रुप में ग्रहण करते हैं। इसलिए उनकी कहानियाँ बहुत कुछ नियोजित (कांट्राइव्ड) होती हैं। इस नियोजन का मुख्य आधार कल्पना है -अनुभूति नहीं। प्रेमचंद की रचना-प्रक्रिया से इनकी रचना-प्रक्रिया काफी मिलती-जुलती है। प्रेमचंद की कहानियों में (कुछ को छोड़कर) पहले कोई स्थिर विचार आता है और बाद में उसके अनुसार कहानी के पात्र, स्थितियाँ घटनाएँ आदि को अन्वेषित कर लिया जाता है। यशपाल की प्रक्रिया इससे भिन्न नहीं है। प्रेमचंद में सुधारवाद की प्रमुखता है तो यशपाल में मार्क्सवाद और फ्रायडवाद की। वे विचारों के कहानीकार हैं, चिन्तन के नहीं। सामाजिक विशेषताओं और मध्यवर्गीय समाज के

खोखलेपन पर गहरा व्यंग करने में ये बेजोड़ हैं। यशपाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथा का रस उनमें सर्वत्र मिलता है।

अज्ञेय

अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार हैं। उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की और मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं- काव्य में भी, कथा-साहित्य में भी। प्रयोगधर्मा होने के साथ-साथ वे अपने अभिजातीय संस्कारों के कारण सचेत भी हैं। उनकी आरंभिक कहानियों में रोमानी विद्रोह दिखाई पड़ता है। लेकिन क्रमश वे रोमांस से हटते गये। अहं के विसर्जन का उल्लेख वे बार-बार करते हैं, यह रोमांस से अलग होने का प्रयत्न ही है। उनकी श्रेष्ठ कहानियों में उनके अहं ने दखल नहीं दिया है। इसलिये वे अपनी संश्लिष्टता में अपूर्व बन पड़ी है। विपगाथा (1937 ई.), परंपरा (1944 ई.), कोठरी की बात (1945 ई.), शरणार्थी (1947 ई.), जयदोल (1951 ई.) और ये तेरे प्रतिरुप उनके कहानी संग्रह हैं। पहले दोनों संग्रहों की कहानियों में अहं का विस्फोट और रोमानी विद्रोह है। शरणार्थी की कहानियाँ बौद्धिक सहानुभूति से प्रेरित होने के कारण रचनात्मक नहीं बन पड़ी हैं। पर जयदोल संग्रह की कहानियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में अहं पूर्णत विसर्जित है। अपने से हट कर उसकी दृष्टि में समग्रता और रचना में संश्लिष्टता आ गई है। उदाहरणार्थ उनकी दो कहानियों को (गैंग्रीन-रोज और पठार का धीरज) देखा जा सकता है। 'गैंग्रीन' में मध्यवर्ग की एकरसता (बोर्डम) को समग्रत लिया गया है। यह एकरसता उसके संरचनात्मक स्तर पर चित्रित मिलेगी। उसे परिणति या निचोड़ के रुप में नहीं पाया जा सकता है - उसे पाने के लिये कहानी को समग्रत ही लेना होगा। 'गैंग्रीन' मध्यवर्गीय जीवन की एकरसता का जबरदस्त प्रतीक है। पर इसे परिवेश, फ्लैश बैक, बिंब, प्रतीक के माध्यम से रचा गया है। न फालतू शब्द और न ही प्रारंभिक कहानियों की तरह विशेषणों की भरमार। घरेलू वातावरण, तीन का गजर, घंटे का टन-टन, पाइप का टप-टप आदि सभी कुछ एकरस परिवेश की रचना करते हैं। 'पठार का धीरज' भी अपनी रचनात्मक संश्लिष्टता और आधुनिकता बोध के कारण महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। दो युगों की प्रेम-कहानियाँ जो अपना अलग-अलग बोध देती हैं, एक आन्तरिक संगति में बंधकर पैरेबुल के निकट पहुँच जाती हैं।

अन्य रचनाकार

अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। उन्होंने भी मध्यवर्गीय समाज से कथावस्तु का चयन किया है। कहानी संबंधी विविध प्रयोग उनकी रचना में मिलेंगे। पर प्रयोगधर्मी रचनाओं में एक प्रकार की आयासजन्य कृत्रिमता मिलती है। जीवन की गहरी अनुभूति डाची, काकड़ां का तेली जैसी कहानियों में उपलब्ध होती है। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 50 ई. के आसपास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगती हैं। इन दो दशकों में विकसित कहानियों की प्रवृत्ति को एक नाम देना कठिन है। यदि कोई नाम दिया जा सकता है तो वह है आधुनिकता बोध की कहानियाँ। आधुनिकता यानि विज्ञान और प्रविधि की यांत्रिकता में जकड़े जटिल-जीवन-बोध की कहानियाँ।

परंपरागत हिन्दी कहानियों से अलगाने के लिए इन्हें नई-नई कहानियाँ कहा जाने लगा। वस्तुत नई कहानियाँ नाम नई कविता के वजन पर रखा गया। कुछ लोग इन कहानियों को पूर्ववर्ती पीढ़ी की कहानियों का विकास मानते हैं और कुछ परंपरा से कटकर या उसे अस्वीकार कर इसे एकदम नई कहने की हठधर्मी से बाज नहीं आते। वस्तुत इन नामों में कुछ अर्थपूर्ण नहीं है।

नई कहानी से भी अपने को अलगाने के लिए और और नाम रखे गये- सचेतन कहानी, अकहानी आदि। पर नामों पर बहस करना बेमानी है। कहानी तो कहानी है। युग परिवर्तन के साथ उसकी प्रवृत्तियाँ बदलेंगी ही। स्वतंत्रता -प्राप्ति के कुछ ही वर्षों बाद भारतीय परिवेश में प्रसन्नता -अवसाद के विरोधी स्वर सुनाई पड़ने लगे। कुछ लोग राष्ट्रीय आकांक्षाओं के पूर्त्यर्थ आशान्वित थे और कुछ लोगों का मोह-भंग हो चुका था। स्वतंत्रता की प्राप्ति एक रोमेंटिक घटना थी। ग्राम तथा उसके अंचल संबद्ध कहानियों में रोमानी यथार्थ चित्रित हुआ है। शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। उनकी कुछ कहानियों में जीवट भी मिलता है। किंतु इस तरह की अधिकांश कहानियाँ, जाने-समझे और आंशिक रुप से भोगे यथार्थ पर आधारित होने पर भी, पुराने मूल्यों का ही प्रतिपादन करती हैं। इन दो दशकों में देखते देखते दादा, बाबा, माई के प्रति व्यक्त की गई आस्था उलट गई और वह

पुराने-नए मूल्यों के संघर्ष के रुप में चित्रित की जाने लगी। यह टकराहट नए बदलाव की सूचना देती है।

आधुनिक जीवन में कुछ ऐसा टूट गया है कि पुराने सारे संबंध बदल गए हैं। रागपूर्ण संबंध अपने तनावों में मूल्यहीन होने के साथ अर्थहीन भी हो गये हैं। मोहन राकेश ने इन तनावों को मुख्य रुप से अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। कमलेश्वर तनावों के बीच मुल्य दृष्टि की तलाश करते हैं। निर्मल वर्मा मूलत: रोमेंटिक होते हुए भी कुछ कहानियों में आज की सामाजिक विडंबना -निरर्थक चीख -को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हैं। धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय और नरेश मेहता कवि पहले हैं और कहानीकार बाद में। इनमें भारती का व्यक्तित्व सबसे अधिक निर्लेप क्षमतावान और मूल्यपरक है। उनकी कहानियों पर उनका कवि व्यक्तित्व कहीं हावी नहीं होता। यथाप्रसंग वह सहायता ही पहुँचाता है। इस संग्रह में संग्रहित 'गुलकी बन्नो' इसका प्रमाण है।

राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, श्रीकांत वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, राजकमल चौधरी आदि तनावों के ही कहानीकार हैं। ये तनाव, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका सभी में दिखाई पड़ेंगे। व्यक्ति और समाज के बीच गहरी खाई पैदा हो गई है। तनावों के बीच रहने वाले व्यक्ति अपने को अकेले, अजनबी और संत्रस्त पा रहे हैं। यह इस देश के बुद्धिजीवियों की ही स्थिति नहीं है। अन्य देशों के लोग भी इल स्थिति का और भी तीखेपन के साथ अनुभव कर रहे हैं। सारा जीवन इतना जटिल और यांत्रिक हो गया है कि मनुष्य यंत्रगतिक हो चला है। उसकी अपनी पहचान (आडेंटिटी) गुम हो गई है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई है कि उसके लियें जिंदगी का अर्थ है कि वह अर्थहीन है। एक और पीढ़ी। यानि ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, विजयमोहन सिंह, रवीन्द्र कालिया, महेन्द्र भल्ला आदि की कृतियाँ इनकी कहानियों में आधुनिकता का वह रुप है, जो ऊब, घुटन, व्यर्थता आदि को अभिव्यक्त करता है। ये कहानीकार प्राय: त्रासद मानवीय स्थितियों से उबर नहीं पाते। इन कहानीकारों में ज्ञानरंजन की दृष्टि सर्वाधिक संतुलित, गैर रोमानी और नए उन्मेर्षों को पकड़ पाने में समर्थ है। अगले दौर के कहानीकारों की सूची लंबी है-काशीनाथ सिंह, इब्राहिम शरीफ, इजराइल, विश्वेशवर, सुधा अरोड़ा आदि। काशीनाथ सिंह और इब्राहिम शरीफ आधुनिकता से अलग हट कर जीवन की विसंगतियों में ही सही रास्ते की तलाश की कोशिश की है। अर्थहीन जीवन को अर्थ देने की यह प्रक्रिया स्वस्थ प्रवृत्ति की सूचक है।

समालोचना

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रुप में स्वीकृत हो चुकी है। प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओं में, पाठकीय माँग के फलस्वरुप, कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रुप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्त्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं, 'मूड', वातावरण, जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक-आर्थिक जीवन से भी संबंद्ध होती हैं। सामान्यत: कहानी मीमांसा के लिए छ: तत्वों का उल्लेख किया जाता है–

1. कथावस्तु
2. चरित्र-चित्रण
3. कथोपकथन
4. देशकाल
5. भाषाशैली और
6. उद्देश्य।

किंतु इन प्रतिमानों का प्रयोग नाटक और उपन्यासों के लिए भी होता है। ऐसी स्थिति में भ्रांति की सृष्टि हो सकती है। लेकिन इसका परिहार यह कह कर लिया जाता है कि कहानी की कथावस्तु इकहरी होती है। चरित्र के लिए किसी पहलू का चित्रण होता है। कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी होता है। कहानी में एक देश और एक काल की जरूरत होती है। सन साठ के बाद की कहानियों का तेवर बदला हुआ है। इन कहानियों को साठोत्तरी कहानी कहा जाता है। इस दौर में कई कहानी आंदोलन चले जिनमें अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी और सक्रिय कहानी आंदोलन प्रमुख थे। बाद में जनवादी कहानी आंदोलन में इनका समाहार हो जाता है। नब्बे के दशक की कहानी और 21 वीं सदी के पहले दशक की कहानी का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है, लेकिन उनमें वैश्वीकरण, सूचना तंत्र और बाजारवाद की अनुगूँज साफ सुनी जा सकती है। नब्बे का दशक दलित विमर्श और स्त्री विमर्श के उभार का दशक भी था। इस दशक में स्त्री सशक्तिकरण , उसके अधिकारों की लड़ाई और अभिव्यक्ति की छटपटाहट की अनुगूंज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई देती है। इसी तरह दलित

रचनाकारों ने भी अपनी स्वानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी को नया रंग और मोड़ दिया। आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों को व्याख्यायित करने वाली कहानियां भी खूब लिखी जा रही हैं।

विधा के रूप में कहानी की संरचना

आधुनिकता के विकास के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। कथा इन्हीं विधाओं में से एक है। कथा अथवा 'फिक्शन' के सामान्यत: दो रुप पाए जाते हैं - उपन्यास तथा कहानी। भारत में कहानी के लिए प्रारंभ में 'गल्प', 'आख्यायिका' आदि शब्द का इस्तेमाल होता रहा परंतु अब कहानी संज्ञा को सर्वस्वीकृति प्राप्त हो गई है। कथा विधा के अंतर्गत उपन्यास के विकास की एक निश्चित और सुस्पष्ट सैद्धांतिकी विकसित हुई है, लेकिन वैसी स्पष्टता कहानी को लेकर कदाचित नहीं है। उपन्यास को महाकाव्य का स्थानापन्न माना गया और कहानी को उपन्यास कोटि की एक लघु विधा। हिंदी में प्रेमचंद आदि कथाकारों ने उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में ही कहानी की विशिष्टताओं को रेखांकित किया है। हालाँकि आगे चलकर कई आलोचकों ने इस मानदंड की समीक्षा की है। पश्चिम में इस विधा के संरचनागत विकास के संदर्भ में ज्यादा स्पष्टता दिखाई देती है। प्रारंभ में जहाँ इसे 'प्रभाव', 'थीम' और 'विचार' को विभिन्न संदर्भों से व्याख्यायित करने का प्रयास किया, आगे चलकर इसके विकास की अन्य दिशाओं - संवेदना का दायरा तथा उत्पत्ति की पृष्ठभूमि पर भी विचार गया। इस विधा को परिभाषित करने तथा उसके स्वरुप को निर्धारित करने का प्रथम प्रयास एडगर एलन पो ने किया। आगे चलकर फ्रैंक ओ कोन्नोर, आइकेनबॉम, चेखव आदि ने महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप किए। हिंदी में प्रेमचंद आदि की शास्त्रीय धारणा के बरक्स मोहन राकेश, नामवर सिंह, सुरेंद्र चौधरी आदि ने नए आयाम को उद्घाटित किया।

पश्चिम में कहानी (Short Story) की संरचना का अध्ययन

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में रूस, जर्मनी, फ्रांस एवं अमेरिका में कहानी (Short Story) एक विधा के रुप में उभरने लगी थी। 1825 ई. के आस-पास कहानी (Short Story) एक संक्रमणशील विधा के रुप में फ्रांस के बाल्जाक, अमेरिका के वाशिंगटन इरविन, जर्मनी के हॉफमैन एवं रूस के पुश्किन की

रचनाओं में दिखाई देने लगा। 'लेकिन इस विधा में प्रथम मील का पत्थर उस समय की साहित्यिक राजधानियों – इंग्लैंड एवं फ्रांस में न उभरकर लगभग एक साथ रूस एवं अमेरिका से आए। इसके तीन निर्णायक पुरस्कर्त्ता थे – निकोलाई गोगोल, नायनेल हॉथर्न एवं एडगर एलन पो।'

हॉथर्न का संग्रह 'ट्वाइस टोल्ड टेल्स' 1837 ई. में प्रकाशित हुआ तथा पो की 'टेल्स ऑफ द ग्रोटेस्क एंड अरबीक्क' (Tales of Grotesque and Arabesque) 1840 ई. में। गोगोल की प्रसिद्ध कहानी 'ओवरकोट' 1842 ई. में प्रकाशित हुई थी। हॉथर्न की पुस्तक 'ट्वाइसटोल्ड टेल्स' की समीक्षा करते हुए ही 1842 ई. में पो ने कहानी के लिए 'प्रभाव की एकता' (unity of effect) प्रतिमान के रुप रखे थे। पो ने कहानी (Short Story) के लिए 'टेल' शब्द का प्रयोग किया था। पो ने 'टेल' के प्रतिमान को रखते हुए कहा, 'इस मुद्दे पर यहाँ सिर्फ इतना कहने की जरूरत है कि लगभग सभी तरह के निर्माण (Composition) में प्रभाव और छवि की एकता सबसे महत्त्वपूर्ण बिंदु है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यह एकता ऐसी किसी कृति में पूरी तरह संरक्षित नहीं रह सकती जिसका पठन एक बैठक में पूरा न हो।'

इस प्रकार पो ने 'एक बैठक' की चर्चा करते हुए विधा के रुप में 'टेल' की संक्षिप्तता को भी आवश्यक बताया। 'प्रभावान्विति' पर पो का इतना जोर था कि वे टेल (tale) को पहले वाक्य से ही प्रभावशाली बनाया जाना आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार, 'एक कुशल साहित्यिक कलाकार जब 'टेल' गढ़ता है, अगर वह समझदार है, वह अपनी समझ को घटनाओं के नियोजन में नहीं लगाता, पूरी सावधानी के साथ निश्चित एकल प्रभाव को गढ़ने की परिकल्पना कर लेता है, तब वह उसके अनुरुप घटनाएँ ईजाद करता है। उसके बाद वह उन घटनाओं को इस तरह संयोजित करता है कि इस पूर्व कल्पित प्रभाव को सामने लाने में वह सबसे बेहतर तरीके से मदद करे। अगर उसका बिल्कुल पहला वाक्य इस प्रभाव को सामने लाने में सक्षम नहीं होता है, तो वह अपने पहले कदम पर ही असफल हो जाता है।'

ब्रांडर मैथ्यूज का मुख्य जोर कहानी को उपन्यास से अलगाते हुए उसके प्रभाव की एकता दर्शाने पर था। उसने कहानी में भाव एवं चरित्र के स्तर पर एकलपन (Singleness) पर जोर दिया, 'सही अर्थों मे जो कहानी होगी वह मुख्यत: प्रभाव की सारभूत एकता के कारण उपन्यास से भिन्न होगी। अगर शब्दों का बिल्कुल सही तरीके से इस्तेमाल करें तो कह सकते हैं कि कहानी में वह

एकता मिलती है, जो उपन्यास में संभव नहीं है। ...कहानी किसी एकल चरित्र, एकल घटना, एकल भावना से या एकल परिस्थिति द्वारा उपयोग में लाई गई भावनाओं की शृंखला से संबंध रखती है।'

हडसन ने कहानी को एक विचार पर निर्भर बताया, 'कहानी में निश्चित रुप से एक और सिर्फ एक सूचनात्मक विचार होना चाहिए और उस विचार को इस तरह विकसित किया जाना चाहिए कि वह पूर्णत: एकल लक्ष्य के अनुरुप तर्कपूर्ण निष्कर्ष तक पहुँच सके।' आगे कहानी (Short Story) के विकास के साथ एकलपन (Singleness) के स्थूल प्रतिमान में परिवर्तन आया, लेकिन उसका संदर्भ उपन्यास की व्यापकता के बरक्स सीमित परिदृश्य का मानंदड बना रहा। सेरा (Edelweis Serra) ने इसे एक घटना पर केंद्रित करने की बजाय इसे 'सीमित अनुभवों की शृंखला' के रुप में देखा तथा इसके निर्माण में संश्लिष्टता पर जोर दिया, 'कहानी घटनाओं, अनुभवों और परिस्थितियों की सह-संबंधित तारतम्यता की एक सीमित शृंखला का कलात्मक निर्माण एवं संप्रेषण है। यह शृंखला संपूर्णता का एक अपना ही बोध रचती है। ...कहानी पृथक और संश्लिष्ट बोध से निर्मित तारतम्यता है, उपन्यास अधिक विश्लेषणपरक रुप से देखी गई बहुलता की तारतम्यता।'

फ्रैंक ओ कोन्नोर कहानी (Short story) के उन प्रारंभिक विचारकों में थे, जिन्होंने कहानी के सामाजिक संदर्भ की और ध्यान दिया। कोन्नोर ने कहानी को समाज से कटे लोगों की आवाज बताया। कोन्नोर के अनुसार, 'उपन्यास सभ्य समाज की क्लासिक धारणा से अभी भी चिपका रह सकता है, जिसके अनुसार- मनुष्य समुदाय में रहने वाला प्राणी है।.. लेकिन कहानी की खास प्रवृत्ति समुदाय से दूर रहने की है - रूमानी, व्यक्तिवादी एवं दुराग्रही।'

कोन्नोर ने कहानी लेखक के लिए चुनौती उस बिंदु का चुनाव माना जिसके द्वारा वह मानव जीवन को दर्शा सके। उसका मानना था कि हर चुनाव के साथ एक नया शिल्प पाने या पूर्णत: असफल होने, दोनों प्रकार की संभावनाएँ रहती हैं, 'कहानी लेखक के लिए सारभूत रुप (essential form) जैसी कोई चीज नहीं होती है, इसका कारण यह है कि मानवीय जीवन की संपूर्णता कभी भी उसका संदर्भ नहीं हो सकता, उसे हमेशा उस बिंदु को चुनने की प्रक्रिया में रहना चाहिए, जहाँ से मानव जीवन तक पहुँच सके, और हर चुनाव के साथ एक और नए शिल्प की प्राप्ति की संभावना रहती है, दूसरी और पूर्णत: असफलता की।' कोन्नोर ने हर चुनाव के साथ शिल्प की संभावना की बात की

है। हिंदी में नई कहानी के दौर में कुछ इसी तरह की बात करते हुए मोहन राकेश ने कहा था कि हर अनुभव का अपना शिल्प होता है।

पश्चिम में कहानी को लेकर जो शुरुआती तर्क-वितर्क है, उसमें कहानी की संरचना को उपन्यास की संरचना से पृथक साबित करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। आगे चलकर बोरिस आइकेनबॉम (Boris Eikhenbaum) ने कहानी को उपन्यास के संदर्भ से परखने की प्रवृत्ति पर आपत्ति की। आइकेनबॉम के अनुसार, 'उपन्यास और कहानी सिर्फ अलग तरह के रुप ही नहीं है, बल्कि आंतरिक रुप से बिल्कुल भिन्न हैं और अलग-अलग विरासत से आए हैं, इसीलिए वे कहीं के भी साहित्य में साथ-साथ और समान तीव्रता के साथ विकसित होते दिखाई नहीं पड़ते। ...उपन्यास इतिहास और यात्रा-वृत्तांतों से निकला है, कहानी लोक-कथा और नीति-कथा से। मेरी लुइस प्रैट (Mary Louise Pratt) ने अपने लेख 'The short story: The Long And The Short of It में बेर्डन (Berdan) के हवाले से कहानी के उपन्यास सापेक्ष दूसरी विधा (countergenre to the novel) होने से इनकार किया है, 'बेर्डन का यह कहना है कि एकलपन का मानदंड टेल (Tale) पर लागू नहीं होता, अर्थ गर्भित है। पुराना 'टेल' कभी भी उपन्यास सापेक्ष दूसरी विधा (countergenre) नहीं था। जबसे ऐसा हुआ वह आधुनिक कहानी (modern short story) में बदल गया।' प्रैट कहानी के 'एकलपन' के मानदंड को एल. एल. बाडर के हवाले से अस्वीकार करती हैं, 'इस विधा के लिए 'एकलपन' (singleness) के मानदंड को आगे बढ़ाना निश्चित रुप से एक गलती है। उदाहरण के लिए ए.एल. बाडर ने यह दिखाया है कि कहानियों में दो समानांतर घटनाओं को आमने-सामने (juxtapose) रखना बहुत आम है, उदाहरणस्वरुप मोपासाँ की 'ए कंट्री एक्सर्सन' एवं मेन्सफिल्ड की 'द गार्डेन पार्टी', यद्यपि इनका शीर्षक एक घटना की और संकेत करता है। एलिस बी. नील हेवेन ने कहानी में विवरण से इनकार नहीं किया, परंतु उसने स्वाभाविकता पर जोर दिया, 'कहानी लेखन (Tale writing) का पहला घटक किसी विवरण के साथ उसकी स्वाभाविकता है, जिसको भुला देने पर उसका आनंद नष्ट हो जाता है, भले ही वह बहुत अच्छी तरह की भाषा में लिखी गई हो या विचार कुशलतापूर्वक व्यक्त किया गया हो।

फ्रैंक ओ कोन्नोर ने कहानी की विषय-वस्तु को मुख्य-धारा से कटे लोगों से जोड़ा था, आगे चलकर रीड ने भी उसका समर्थन करते हुए उसे ग्रामीण

जीवन से जोड़ा एवं उसे एक महत्त्वपूर्ण कदम के रुप देखा, 'ग्रामीणों और सरल लोक-जीवन के प्रति पक्षधरता बाद के लेखकों (डॉडेट, फ्लॉबेयर, मोपासाँ) की कोई कम महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति नहीं थी। उन वृहत सामाजिक पैटर्नों का चित्रण, जो शहरी जीवन में प्रचुरता से थे, मुख्यत: उपन्यासों के जिम्मे छोड़ दिया गया। कहानी विशेष रुप से क्षेत्रीय जीवन या उन व्यक्तियों का चित्रण के लिए उपयुक्त मानी गई जो शहर में रहते हुए भी वहाँ परायों की तरह थे।

पश्चिम में कहानी की संरचना पर हुई बहस में प्रारंभिक चिंता (concern) उसके स्वरुप के संदर्भ में थी, तो आगे चलकर उसके गठन पर विचार होने लगा। यद्यपि इनमें विकास की कोई निश्चित दिशा अथवा तारतम्यता नहीं है फिर भी इनसे कुछ संदर्भ प्राप्त किया जा सकता है।

ए.एल. बाडर ने आधुनिक कहानी की संरचनात्मक विशिष्टता को रेखांकित करते हुए इसकी संरचना को पुरानी कहानी से 'टेकनिक' के आधार पर अलग किया, 'ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक कहानी कथानक से लिए गए आख्यान संरचना को अपनाने के दावे का प्रदर्शन करती है। मूलत: इसकी संरचना पुरानी और अधिक पारंपरिक कथाओं की संरचना से बहुत भिन्न नहीं है, लेकिन इसकी तकनीक (technique) भिन्न है, और तकनीक का यही फर्क है कि अक्सर गलती से पाठकों और आलोचकों द्वारा संरचना का अभाव मान लिया जाता है। बाडर, बोनारो ओवरस्ट्रीट के हवाले से कहानी की संरचना में शिल्प के ऐतिहासिक बदलाव को रेखांकित करते हैं, 'उन्नीसवीं सदी के कहानी के वक्ता (story teller) कथानक (plot) के विशेषज्ञ थे। बीसवीं सदी के साथियों ने देखा कि जीवन को सफाई से निर्मित घटनाओं के 'पार्सल (Parcelled) संग्रह' के रुप में नहीं देखा जा सकता, इस कारण से विद्रोही रवैया अपना लिया।'

ए.एल. बाडर कथानकहीनता को आधुनिक कहानी की विशेषता के रुप में देखते हैं, 'आधुनिक कहानी के खिलाफ कथानकहीनता, शिथिल संरचना आदि के जो आरोप लगाए जाते हैं, उन्हें मेरे ख्याल से आधुनिक शिल्प (Technique) में आए परिवर्तन के रुप में बेहतर दिखाया जा सकता है। इन परिवर्तनों में मुख्य है - विषय का अधिक सख्ती से परिसीमन और परोक्षता की विधि।

एल.ए.जी. स्ट्राँग का मानना है कि आधुनिक कहानी में लेखक ही नहीं पाठक की समझ की भी भूमिका है, 'आधुनिक लेखक संतुष्ट हो जाता है अगर,

पाठक को मानो किसी झरोखे से चरित्रों की छवि दिखाते हुए वह उन चरित्रों की ऐसी मुद्राएँ दे पाता है, जो प्रारूपिक हैं, अर्थात ऐसी मुद्रा जो पाठक को अकथित छोड़ दी गई चीजों को अपनी कल्पना से भर देने में सक्षम बनाती है। ...संभव है कि वह हमें मोजाएक (mosaic) का सिर्फ प्रतिनिधि टुकड़ा दे, जिसके इर्द-गिर्द हम अपने मुकम्मल हो चुके पैटर्न की छायाभासी बाह्य रेखाएँ देख पाएँ।

शिल्प के स्तर पर इन विचारों के केंद्र में कथानक ही मुख्य रुप से है। इसी के होने-न-होने पर विचारकों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से अपना विचार व्यक्त किया है। थियोडोर स्ट्राउड के अनुसार, 'वर्तमान में प्लॉट एक निंदात्मक शब्द बन गया है, जो सरल किस्म के सस्पेंस की रचना करने वाली कथाओं के लिए आरक्षित है। इसकी बजाय उन कहानियों को अधिक इज्जत से देखा जाता है जिनमें एक थीम है, जिसे प्रतीकों की एक व्यवस्था के रुप में चिह्नित किया जा सके और जिसमें कोई मुखर नीति कथा न हो।

सुजेन फर्ग्युसन (Suzanne C- Ferguson) ने भी कार्य-व्यापार एवं विस्तृत चरित्रांकन की बजाए 'Fkhe' को महत्त्व दिया है, 'बाहरी समरुपता, भौतिक कार्य-व्यापार और सुविस्तृत चरित्रांकन से हम जितना ही कम उलझते हैं, उतना ही यह स्वाभाविक हो जाता है कि वह तत्व, जो संपूर्ण को संपूर्ण में निबद्ध करता है, ही वह चीज है, जिससे पाठक चालक थीम के रुप में ग्रहण करता है और लेखक की मंशा के रुप में अभिव्यक्त करता है।

कहानी की संरचना के विकास क्रम की दृष्टि से चेखव के हस्तक्षेप का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पो ने कहानी के आदि, मध्य और अंत होने की बात की थी, लेकिन चेखव ने कहा, 'कहानी का कोई आदि, मध्य और अंत नहीं होता। कहानी केवल कहानी होती है।' उसने कहानी में वर्णन की जगह वातावरण एवं बिंब को महत्त्व दिया, 'कहानी में घिसे-पिटे, बेकार और अर्थहीन वर्णन मत दो। केवल अपने निरीक्षण से कुछ बिंब चुन लो, उन्हें संपादित करके इस तरह रख दो कि चित्र खुद बोल उठे... चाँदनी रात में कुएँ पर लेटी रहट की परछाई और टूटी बोतल के काँच पर झिलमिलाती किरणें, रात का जैसा सजीव, भव्य वातावरण उपस्थित कर सकती है, वह लंबे-लंबे वर्णन नहीं कर पाएँगे। चेखव ने कहानियों में वर्णन की बजाय पाठक के विवेक को महत्त्व दिया, 'घोड़ों के चोरों का सात सौ पंक्तियों में चित्रण करने के लिए मुझे पूरे समय उनके टोन और एहसास में बोलना एवं सोचना पड़ेगा अन्यथा अगर मैं आत्मपरकता

दिखलाऊँ तो छवि धुँधली हो जाएगी और कहानी वैसी सुगठित नहीं रह जाएगी जैसी हर कहानी को होना चाहिए। जब मैं लिखता हूँ तो इस बात के लिए पूरी तरह पाठक के भरोसे रहता हूँ कि कहानी में जो आत्मपरक तत्त्व छूट गए हैं, वह उन्हें खुद से शामिल कर ले।

अपने लेख 'चेखव एवं आधुनिक कहानी (Chekhov and the modern short story)' में चेखव के विश्लेषण के क्रम में चार्ल्स ई. मे (Charls E. May) ने कहानी की विशेषता बताते हुए लिखा है – '... चरित्र एक मन:स्थिति के अनुरुप हो न कि प्रतीकात्मक प्रेक्षण या यथार्थवादी चित्रण की तरह, कथा सुविस्तृत कथानक वाले 'टेल' (Tale) की बजाय न्यूनतम प्रगीतात्मक स्केच की तरह हों, वातावरण बाह्य ब्यौरों और मानसिक प्रक्षेपण के अस्पष्ट मिश्रण के रुप में होय और यथार्थ अपने आप में विशिष्ट नजरिए के प्रकार्य की तरह हो।

जहाँ तक कहानी की संरचनात्मक तत्वों की बात है, उसे अलग-अलग तरीकों से विश्लेषित किया गया। फ्रैंक ओ कोन्नोर ने कहानी का विश्लेषण करते हुए कहा, 'कहानी में तीन तत्त्व होते हैं – उद्घाटन, विकास और नाटक।' जबकि जे. बर्ग. इसेंविन ने कहानी की सात विशिष्टताएँ बताई है – (1.) एकमात्र प्रधान घटना (2.) एकमात्र प्रमुख चरित्र (3.) कल्पना (4.) कथावस्तु (5.) कसाव-संक्षिप्रता (6.) गठन एवं (7.) प्रभाव की अन्विति। लेकिन हम देख चुके हैं कि एकलपन की धारणा, कथावस्तु का आग्रह वाला मानदंड प्रश्नांकित होता रहा है। समय के बदलाव के साथ संवेदना के जटिलतर होने के कारण यह मानदंड अक्षुण्ण नहीं रह सका। अंतत: हम यही पाते हैं कि कहानी की संरचना की अवधारणा गतिशील अवधारणा है। समय के साथ इसमें परिवर्तन एवं संशोधन होता रहा है।

हिंदी में कहानी की संरचना का अध्ययन-विश्लेषण

हिंदी में कहानी की संरचना का अध्ययन विकसित रुप में नहीं है। प्राय: इसमें कोई मौलिकता अथवा नया प्रस्थान दिखाई नहीं देता। साहित्यशास्त्र के प्रारंभिक आलोचकों – आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दास, गुलाब राय आदि ने कहानी के छह तत्वों की चर्चा की एवं इन तत्वों की विशेषता को दर्शाया। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का शोध-ग्रंथ 'हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास' में इन्हीं तत्वों के आधार पर कहानी का विश्लेषण किया गया है। स्वतंत्रता के पूर्व लगभग यही स्थिति है। हिंदी कहानी की विषय-वस्तु, संरचना

में युगांतकारी परिवर्तन करने वाले प्रेमचंद भी कहानी की संरचना पर कोई विस्तृत विचार नहीं देते। वे कहानी को 'एक घटना' एवं 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' से जोड़ते हैं। अपने प्रसिद्ध निबंध 'कहानी कला' में उन्होंने कहानी (Stort story) के लिए 'आख्यायिका' शब्द का प्रयोग किया है।

...उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है, आख्यायिका केवल एक घटना है- अन्य बातें सब उसी घटना के अंतर्गत होती हैं।

कहानी कला

'वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है, इतना ही नहीं, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशीलता से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है। - कहानी कला

स्वातंत्र्योत्तर दौर में कहानी के छह तत्वों के आधार पर विश्लेषण का विरोध हुआ। रमेश बक्षी ने इस शैली से अपनी असहमति जाहिर करते हुए लिखा, '...किसी आलोचक ने विदेशी समीक्षा से उधार लेकर, उन्हें बिना समझे-बूझे, कहानी-उपन्यास के छह शास्त्रीय तत्त्व बना दिए - यह सब उसी तरह का कार्य है जैसे मात्रा और वर्णों की गिनती लगा-लगाकर कोई छंद रचना करे।

लेकिन इस दौर में भी कोई वैकल्पिक पद्धति नहीं उभरी। मोहन राकेश ने सांकेतिकता की पुरजोर वकालत की, 'जहाँ तक कहानी की आंतरिक उपलब्धियों का संबंध है, उनमें सांकेतिकता को कहानी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है। यह सांकेतिकता आज की कहानी की या किसी एक भाषा की कहानी की ही उपलब्धि नहीं, कहानी मात्र की अनिवार्य उपलब्धि है। नामवर सिंह ने कथानक में मौलिक परिवर्तन एवं कथानक के ह्रास की बात उठाई, '...कहानी में जो चीज पहले कथानक के नाम से जानी जाती थी, उसमें कहीं न कहीं कोई मौलिक परिवर्तन हुआ है। इसे यों भी कह सकते हैं कि कथानक की धारणा (कन्सेप्ट) बदल गई है-किसी समय मनोरंजक, नाटकीय और कुतूहलपूर्ण घटना-संघटन को ही कथानक समझा जाता था और आज घटना संघटन उतना विघटित हो गया है कि लोगों को अधिकांश कहानियों में 'कथानक' नाम की चीज मिलती ही नहीं।

दरअसल इस दौर की कहानियों में संवेदना, सरोकार, यथार्थ को लेकर जो नई जद्दोजहद शुरू हुई, उसने अभिव्यक्ति को नई भंगिमा दी। डॉ. इंदु रश्मि ने अपनी शोध-पुस्तक 'नई कहानी का स्वरुप विवेचन' में रमेश बक्षी के हवाले से 16 प्रकार के शिल्प का उल्लेख किया है (हालाँकि पंद्रह की सूची ही दी है)–

(i) आंचलिक शिल्प का प्रयोग
(ii) विविध स्तरों वाले सूक्ष्म सांकेतिक का प्रयोग
(iii) प्रतीकात्मक शिल्प का प्रयोग
(iv) दूसरे कथा-शिल्प का साम्य-वैषम्य मूलक प्रयोग
(v) समाप्ति से आरंभन के शिल्प का प्रयोग
(vi) कथानक के ह्रास और कथा-सूत्र के विशृंखल शिल्प का प्रयोग
(vii) चरमोत्कर्ष पर बोध-सूत्र के स्पष्ट होने वाले शिल्प का प्रयोग
(viii) विचारोत्तेजक प्रलापीय शिल्प का प्रयोग
(ix) स्वेरकल्पना (फैंटेसी) शिल्प का प्रयोग
(x) व्यक्तित्व द्विविधा प्रस्तुतीकरण शिल्प का प्रयोग
(xi) एक कथा के अंतर्गत कई कथा नियोजन के शिल्प का प्रयोग
(xii) आवर्तक शिल्प का प्रयोग
(xiii) गाथा शिल्प का प्रयोग
(xiv) समीकरण शिल्प का प्रयोग
(xv) तांत्रिक शिल्प का प्रयोग।

अपनी पुस्तक - 'हिंदी कहानी–पाठ और प्रक्रिया' में, सुरेंद्र चौधरी ने 'कथानक', 'निबंधना (Layout)' एवं कहानी की आंतरिक विशिष्टता की जो बात की है, उससे कहानी के शिल्प पर प्रकाश पड़ता है। सुरेंद्र चौधरी प्रारंभ, मध्य और अंत वाली परंपरागत धारणा का खंडन करते हैं, '...अधिकांशत: हम निरर्थक चीजों की और अपना ध्यान ले जाते हैं, क्योंकि कहानी की रचना-प्रक्रिया से उसका कोई संबंध नहीं होता। मसलन कहानी की रचना-प्रक्रिया में हम कथा-वस्तु के प्रारंभ, मध्य और अंत की चर्चा तो करते हैं किंतु जिस स्वाभाविक प्रक्रिया में कहानी एक पूर्ण स्थापत्य ग्रहण करती है, उसकी चर्चा हम नहीं करते। वे कहानी के विभिन्न तत्वों के संश्लेषण को उसका महत्त्वपूर्ण गुण मानते हैं, '...कहानी वस्तुत: एक संश्लेषण है और यह संश्लेषण विभिन्न तत्वों के मिलने का अलग-अलग प्रक्रियाओं से भी-परिणाम है। पो की

'प्रभावान्विति' को किसी न किसी रुप में सुरेंद्र चौधरी भी स्वीकार करते हैं। वे कहानी को घटनाओं का पुंज नहीं मानते, बल्कि उसकी संश्लिष्टता की बात करते हुए 'आंतरिक विशिष्टता' को स्थापत्य का सबसे अनिवार्य गुण मानते हैं, 'कहानी घटनाश्रित प्रभावों का निर्माणहीन समुच्चय नहीं है। जब घटनाश्रित प्रभाव पाठक के मन में एक संश्लिष्टता लेकर उभरते हैं तब कहानी का एक ढाँचा हमें प्राप्त होता है। इसे आप कहानी की स्थापत्य संबंधी आंतरिक विशिष्टता भी कह सकते हैं।

स्पष्ट है कि कहानी के निर्माण के लिए कोई एक नियम नहीं है, लेकिन एक चीज जो कहानी में आवश्यक है, वह है जीवन के क्रियात्मक ढाँचे की उपस्थिति, वही कहानी के स्थापत्य में परिवर्तन लाता है और कथानक में भी। परंतु यह कहानी में सामाजिक वास्तविकता का तथ्य-निरुपण नहीं करता है, बल्कि उसका संकेत भर कर देता है। 'कथा का स्थापत्य सामाजिक सत्यों के तथ्य-निरुपण की छूट नहीं देता। तथ्य-निरुपण के लिए छोटी कहानियों में गुंजाइश ही नहीं रहती, क्योंकि छोटी कहानियाँ निबंधना-क्षेत्र (Space) में निश्चित या सीमित रहती है। हम काल की दिशा में ही यह कार्य कर सकते हैं, फलत: कथा में सामाजिक वास्तविकता का संकेत भर होता है।

चूँकि जीवन विविधताओं से भरा हुआ है, उसका कोई निश्चित नियम नहीं है, जीवन के कार्यात्मक रुप से सबसे अधिक नजदीक होने के कारण कहानी में शिल्पगत भिन्नताएँ बहुत ज्यादा होती है। इस संदर्भ में गोर्दो एवं एलेन टेट का मानना है, 'कथा दूसरी कलाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें मुख्य सरोकार जीवन की पद्धति से ही होता है। शायद यही कारण है कि हम उसके शिल्प की किसी पूर्व निर्धारित धारणा से स्वतंत्र होते हैं (ऐसी घोषणाओं से तो और भी अधिक), कथालेखन का कोई नियम नहीं होता, जैसे सफल जीवन का कोई निश्चित नियम नहीं होता, कथा की हर कृति, जैसा कि हर जीवन में होता है, एक न्यूनतम औसत होती है जिसका विश्लेषण मुश्किल है। कहानी के शिल्प के संदर्भ में गोर्दो एवं एलेन टेट की यह मान्यता किसी हद तक सत्य होने के साथ यह भी सही है कि समय के साथ बदलती सामाजिक संरचना के साथ विचार एवं अनुभूति की संरचना भी बदलती है, तदनुरुप शिल्प भी और इसका विश्लेषण किया जा सकता है। प्रेमचंद-युग से नई कहानी के, आगे नई कहानी से साठोत्तरी दौर की कहानी के शिल्प में भिन्नता है। फिर आज की विमर्श की कहानियों में शिल्प की अलग-अलग भंगिमाएँ दिखाई देती हैं।

सारत: यह कहा जा सकता है कि कहानी (Short story) उपन्यास की अनुगामी विधा नहीं है, बल्कि एक स्वतंत्र विधा है जिसका विकास लोक कथा या नीति कथा जैसे प्राचीन कथा रुपों से हुआ। इसके विकास के प्रारंभिक चरण में कथा वस्तु के इकहरेपन पर भिन्न-भिन्न तरीकों से जोर दिया गया, लेकिन आगे चलकर यह इकहरापन आवश्यक मानदंड नहीं रहा। अभिव्यंजना की दृष्टि से प्रारंभिक ब्यौरे और आदि-मध्य-अंत वाली संरचना में भी कालांतर में बदलाव आ गया।

ईदगाह (मुंशी प्रेमचंद)

रमजान के पूरे तीस रोजों के बाद ईद आयी है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभाव है। वृक्षों पर अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, यानी संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर में सुई-धागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर पर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना, दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं, लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे, आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी चिंताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवेयां खांगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस,-बारह, उसके पास बारह पैसे हैं। मोहनसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पंद्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीजें लांएगे-खिलौने, मिठाइयां, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या।

और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता क्या बीमारी है। कहती तो कौन सुनने वाला था? दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया, तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गए हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आएंगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई हैं, इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती हैं। हामिद के पॉव में जूते नहीं हैं, सिर परएक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियमतें लेकर आएंगी, तो वह दिल से अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे।

अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन, उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता, तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को? इस घर में उसका काम नहीं, लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने के क्या मतलब? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आये, हामिद की आनंद-भरी चितबन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मै सबसे पहले आऊँगा। बिल्कुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है! उसे कैसे अकेले मेले जाने दे? उस भीड़-भाड़ से बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो? नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्ही-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे? पैर में छाले पड़ जाएंगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद में ले लेती, लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घंटों चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे का ही तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिले थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी, इसी ईद के लिए। लेकिन कल ग्वालन

सिर पर सवार हो गई तो क्या करती? हामिद के लिए कुछ नहीं हे, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पांच अमीना के बटुवें में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार, अल्ला ही बेड़ा पर लगाए। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चुड़िहारिन सभी तो आएंगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी को आँखों नहीं लगता। किस-किस सें मुँह चुरायेगी? और मुँह क्यों चुराए? साल-भर का त्योंहार हैं। जिन्दगी खैरियत से रहें, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है– बच्चे को खुदा सलामत रखे, यें दिन भी कट जाएंगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नींचे खड़े होकर साथ वालों का इंतजार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं? हामिद के पैरो में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है? शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों और अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ो में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशान लगाता हैं। माली अंदर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फलाँग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लब घर है। इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे? सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच! उनकी बड़ी-बड़ी मूँछे हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर! हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिल्कुल तीन कौड़ी के। रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या। क्लब-घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुर्दो की खोपड़ियां दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अंदर नहीं जाने देते। और वहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछो-दाढ़ी वाले। और मेमें भी खेलती हैं, सच! हमारी अम्माँ को यह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सके। घुमाते ही लुढ़क जाएं।

महमूद ने कहा-हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोल-चलों, मनों आटा पीस डालती हैं। जरा-सा बैट पकड़ लेगी, तो हाथ काँपने लगेंगे! सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस

पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े, तो आँखों तक अँधेरी आ जाए।

महमूद–लेकिन दौड़तीं तो नहीं, उछल–कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन–हाँ, उछल–कूद तो नहीं सकतीं। लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, अम्माँ इतना तेज दौड़ी कि में उन्हें न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाइयों की दुकानें शुरू हुई। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता? देखो न, एक–एक दूकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिल्कुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया–ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जाएंगी?

मोहसिन ने कहा–जिन्नात को रुपये की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें चले जाएं। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में! हीरे–जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जाएं।

हामिद ने फिर पूछा–जिन्नात बहुत बड़े–बड़े होते हैं?

मोहसिन–एक–एक सिर आसमान के बराबर होता है जी! जमीन पर खड़ा हो जाए तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।

हामिद–लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे? कोई मुझे यह मंतर बता दे तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन–अब यह तो न जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत–से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी जाए चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम बता देगें। जुमराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला तब झख मारकर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरन्त बता दिया, मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबर दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबिल कवायद करते हैं। रैटन! फाय फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएं। मोहसिन ने प्रतिवाद किया-यह कानिसटिबिल पहरा देते हैं? तभी तुम बहुत जानते हों अजी हजरत, यह चोरी करते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जाते रहो!' पुकारते हैं। तभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामू एक थाने में कानिसटिबिल हैं। बरस रुपया महीना पाते हैं, लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम! मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं? हँसकर कहने लगे-बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले-हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएं। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा-यह लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला..अरे, पागल! इन्हें कौन पकड़ेगा! पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं, लेकिन अल्लाह, इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए, मामू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे! फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाए तो बरतन-भाँड़े आए।

हामिद-एक सौ तो पचास से ज्यादा होते है?

'कहाँ पचास, कहाँ एक सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आएं?

अब बस्ती घनी होने लगी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नजर आने लगी। एक से एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज की और ताकते, ताकते ही रह जाते और पीछे से हॉर्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आई। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है। चुनाचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजम बिछा हुआ है। और रोजेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ

जाजम भी नहीं है। नए आने वाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सबके सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं, और एक साथ खड़े हो जाते हैं, कई बार यही क्रिया होती हैं, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएं, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रिया, विस्तार और अनंतता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थीं, मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए हैं।

नमाज खत्म हो गई। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दूकान पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला हैं एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होगें, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट, छड़ो में लटके हुए हैं। एक पेसा देकर बैठ जाओं और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटो पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई जरा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। अधर दूकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधु। वह! कित्ते सुन्दर खिलौने हैं। अब बोलाजा ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कंधें पर बंदूक रखे हुए, मालूम होता है, अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसंद आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए हैं मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है! शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी अड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम हे। कैसी विद्वत्ता हे उसके मुख पर! काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पौथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे है। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौन

वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े तो चूर-चूर हो जाए। जरा पानी पड़े तो सारा रंग घुल जाए। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज पानी दे जाएगा साँझ-सबेरे।

महमूद-और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा कोई चोर आएगा, तो फौरन बंदूक से फैर कर देगा।

नूरे-और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी-और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निंदा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरे तो चकनाचूर हो जाएं, लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि जरा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते हैं, विशेषकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन किसी ने सोहन हलवा। मजे से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबकी और देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है!

हामिद को संदेह हुआ, ये केवल क्रूर विनोद हैं मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की और बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन-अच्छा, अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्लाह कसम, ले जा।

हामिद-रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं है?

सम्मी-तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगें?

महमूद-हमसे गुलाबजामुन ले जाओ हामिद। मोहमिन बदमाश है।

हामिद-मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन-लेकिन दिल मे कह रहे होगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद-इस समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएंगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खाएगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीजों की, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वे सब आगे बढ़ जाते हैं, हामिद लोहे की दुकान पर रुक जात हैं। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे ख्याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तबे से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे तो वह कितना प्रसन्न होगी! फिर उनकी ऊगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जाएगी। खिलौने से क्या फायदा? व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौने को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। यह तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जाएंगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हैं में सेंक लो। कोई आग माँगने आये तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाजार आएं और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं? रोज हाथ जला लेती हैं।

हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सबके सब शर्बत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते है, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करों। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खाएं मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही जबान चटोरी हो जाएगी। तब घर से पैसे चुराघ्गे और मार खाएंगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी जबान क्यों खराब होगी? अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी-मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौने पर कौन इन्हें दुआएं देगा? बड़ों की दुआं सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरंत सुनी जाती हैं। मैं भी इनसे मिजाज क्यों सहूँ? मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाते। आखिर अब्बाजान कभीं न कभी आएंगे। अम्मा भी ऑएगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा हूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह का सलूक किया जात है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं, तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सबके सब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हंसें! मेरी बला से! उसने दुकानदार से पूछा-यह चिमटा कितने का है?

दुकानदार ने उसकी और देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा–तुम्हारे काम का नहीं है जी!

'बिकाऊ है कि नहीं?'

'बिकाऊ क्यों नहीं है? और यहाँ क्यों लाद लाए हैं?'

तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?'

'छः पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक–ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दी। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानों बंदूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। जरा सुनें, सबके सब क्या–क्या आलोचनाएं करते हैं!

मोहसिन ने हँसकर कहा–यह चिमटा क्यों लाया पगले, इससे क्या करेगा?

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटकर कहा–जरा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर–चूर हो जाएं बच्चा की।

महमूद बोला–तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद–खिलौना क्यों नहीं है! अभी कन्धे पर रखा, बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ, तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएं, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नही कर सकतें मेरा बहादुर शेर है चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला–मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की और उपेक्षा से देखा–मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब–ढब बोलने लगी। जरा–सा पानी लग जाए तो खत्म हो जाए। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, अब पैसे किसके पास धरे हैं? फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने

की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमद, सम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया! दूसरे पक्ष से जा मिला, लेकिन मोहसि, महमूद और नूरे भी हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक और मिट्टी है, दूसरी और लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जाएं, जो मियाँ सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागे, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुंह छिपाकर जमीन पर लेट जाएं। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रूस्तमे-हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखे निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर कहा-अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता?

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा-भिश्ती को एक डांट बताएगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमुक पहुँचाई-अगर बचा पकड़ जाएं तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के पैरों पड़ेगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा-हमें पकड़ने कौन आएगा?

नूरे ने अकड़कर कहा-यह सिपाही बंदूकवाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा-यह बेचारे हम बहादुर रूस्तमे-हिंद को पकड़ेगें! अच्छा लाओ, अभी जरा कुश्ती हो जाए। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे। पकड़ेगें क्या बेचारे!

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई-तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा, लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरंत जवाब दिया-आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लैडियों की तरह घर में घुस जाएंगे। आग में वह काम है, जो यह रूस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।

महमूद ने एक जोर लगाया–वकील साहब कुरसी–मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बाबरचीखाने में जमीन पर पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजी कर दिया! कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने! चिमटा बावर्चीखाने में पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा, तो उसने धाँधली शुरू कीकृमेरा चिमटा बावर्चीखाने में नही रहेगा। वकील साहब कुर्सी पर बैठेगें, तो जाकर उन्हे जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खाल गाली–गलौज थी, लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गई। ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए मानो कोई धेलचा कानकौआ किसी गंडे वाले कनकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकलने वाली चीज है। उसको पेट के अन्दर डाल दिया जाना बेतुकी–सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रूस्तमे–हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन–तीन, चार–चार आने पैसे खर्च किए, पर कोई काम की चीज न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा? टूट–फूट जाएंगी। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों?

संधि की शर्ते तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा–जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने–अपने खिलौने पेश किए।

हामिद को इन शर्तो को मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी–बारी से सबके हाथ में गया, और उनके खिलौने बारी–बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोंछे–मैं तुम्हे चिढ़ा रहा था, सच! यह चिमटा भला, इन खिलौनों की क्या बराबर करेगा, मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसनि की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन–लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा?

महमूद–दुआ को लिये फिरते हो। उल्टे मार न पड़े। अम्मां जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने मिले?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब–कुछ करना था और उन पैसों के इस उपयों पर पछतावे की बिल्कुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रूस्तमें–हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दियें। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

ग्यारह बजे गाँव में हलचल मच गई। मेले वाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई–बहन में मार–पीट हुई। दोनों खूब रोए। उसकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो–दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अंत उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में खूँटियाँ गाड़ी गई। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो! कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जाएगी कि नहीं? बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगें मालूम नहीं, पंखे की हवा से या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्गलोक से मृत्युलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया! फिर बड़े जोर–शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों

चलें वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाए गए जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरह 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए, नूरे को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिये जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है।

महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिला गया है जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता हे। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रुपांतर चाहों, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे में?

'तीन पैसे दिये।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, चिमटा! 'सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?'

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा-तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैने इसे लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता हे और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना व्याग, कितना

सदभाव और कितना विवेक है! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा? इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गदगद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद कें इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएं देती जाती थी और आँसूं की बड़ी-बड़ी बूंदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

पाठशाला

(चंद्रधर शर्मा गुलेरी)

एक पाठशाला का वार्षिकोत्सव था। मैं भी वहाँ बुलाया गया था। वहाँ के प्रधान अध्यापक का एकमात्र पुत्र, जिसकी अवस्था आठ वर्ष की थी, बड़े लाड़ से नुमाइश में मिस्टर हादी के कोल्हू की तरह दिखाया जा रहा था। उसका मुँह पीला था, आँखें सफेद थीं, दृष्टि भूमि से उठती नहीं थी। प्रश्न पूछे जा रहे थे। उनका वह उत्तर दे रहा था। धर्म के दस लक्षण सुना गया, नौ रसों के उदाहरण दे गया। पानी के चार डिग्री के नीचे शीतलता में फैल जाने के कारण और उससे मछलियों की प्राण-रक्षा को समझा गया, चंद्रग्रहण का वैज्ञानिक समाधान दे गया, अभाव को पदार्थ मानने, न मानने का शास्त्रार्थ कर गया और इंग्लैंड के राजा आठवें हेनरी की स्त्रियों के नाम और पेशवाओं का कुर्सीनामा सुना गया।

यह पूछा गया कि तू क्या करेगा? बालक ने सिखा-सिखाया उत्तर दिया कि मैं यावज्जन्म लोकसेवा करूँगा। सभा 'वाह वाह' करती सुन रही थी, पिता का हृदय उल्लास से भर रहा था।

एक वृद्ध महाशय ने उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया और कहा कि जो तू इनाम माँगे, वही दें। बालक कुछ सोचने लगा। पिता और अध्यापक इस चिंता में लगे कि देखें, यह पढ़ाई का पुतला कौन-सी पुस्तक माँगता है।

बालक के मुख पर विलक्षण रंगों का परिवर्तन हो रहा था, हृदय में कृत्रिम और स्वाभाविक भावों की लड़ाई की झलक आँखों में दीख रही थी। कुछ खाँसकर, गला साफ कर नकली परदे के हट जाने से स्वयं विस्मित होकर बालक ने धीरे से कहा, 'लड्डू।'

पिता और अध्यापक निराश हो गए। इतने समय तक मेरी साँस घुट रही थी। अब मैंने सुख की साँस भरी। उन सब ने बालक की प्रवृत्तियों का गला

घोंटने में कुछ उठा नहीं रखा था, पर बालक बच गया। उसके बचने की आशा है, क्योंकि वह 'लड्डू' की पुकार जीवित वृक्ष के हरे पत्तों का मधुर मर्मर था, मरे काठ की आलमारी की सिर दुखाने वाली खड़खड़ाहट नहीं।

कोसी का घटवार

अभी खप्पर में एक-चौथाई से भी अधिक गेहूं शेष था। खप्पर में हाथ डालकर उसने व्यर्थ ही उलटा-पलटा और चक्की के पाटों के वृत्त में फैले हुए आटे को झाड़कर एक ढेर बना दिया। बाहर आते-आते उसने फिर एक बार और खप्पर में झांककर देखा, जैसे यह जानने के लिए कि इतनी देर में कितनी पिसाई हो चुकी हैं, परंतु अंदर की मिकदार में कोई विशेष अंतर नहीं आया था। खस्स-खस्स की ध्वनि के साथ अत्यंत धीमी गति से ऊपर का पाट चल रहा था। घट का प्रवेशद्वार बहुत कम ऊंचा था, खूब नीचे तक झुककर वह बाहर निकला। सर के बालों और बांहों पर आटे की एक हलकी सफेद पर्त बैठ गई थी।

खंभे का सहारा लेकर वह बुदबुदाया, ''जा, स्साला! सुबह से अब तक दस पंसेरी भी नहीं हुआ। सूरज कहां का कहां चला गया है। कैसी अनहोनी बात!''

बात अनहोनी तो है ही। जेठ बीत रहा है। आकाश में कहीं बादलों का नाम-निशान ही नहीं। अन्य वर्षों अब तक लोगों की धान-रोपाई पूरी हो जाती थी, पर इस साल नदी-नाले सब सूखे पडे हैं। खेतों की सिंचाई तो दरकिनार, बीज की क्यारियां सूखी जा रही हैं। छोटे नाले-गूलों के किनारे के घट महीनों से बंद हैं। कोसी के किनारे हैं गुसाईं का यह घट। पर इसकी भी चाल ऐसी कि लद्दू घोड़े की चाल को मात देती हैं।

चक्की के निचले खंड में छिच्छर-छिच्छर की आवाज के साथ पानी को काटती हुई मथानी चल रही थी। कितनी धीमी आवाज! अच्छे खाते-पीते ग्वालों के घर में दही की मथानी इससे ज्यादा शोर करती है। इसी मथानी का वह शोर होता था कि आदमी को अपनी बात नहीं सुनाई देती और अब तो भले नदी पार कोई बोले, तो बात यहां सुनाई दे जाय।

छप्प ..छप्प ..छप्प ..पुरानी फौजी पैंट को घुटनों तक मोड़कर गुसांई पानी की गूल के अंदर चलने लगा। कहीं कोई सूराख-निकास हो, तो बंद कर दे। एक बूंद पानी भी बाहर न जाए। बूंद-बूंद की कीमत है इन दिनों। प्रायः आधा फलांग

चलकर वह बांध पर पहुँचा। नदी की पूरी चौड़ाई को घेरकर पानी का बहाव घट की गूल की और मोड़ दिया गया था। किनारे की मिट्टी-घास लेकर उसने बांध में एक-दो स्थान पर निकास बंद किया और फिर गूल के किनारे-किनारे चलकर घट पर आ गया।

अंदर जाकर उसने फिर पाटों के वृत्त में फैले हुए आटे को बुहारकर ढेरी में मिला दिया। खप्पर में अभी थोडा-बहुत गेहूं शेष था। वह उठकर बाहर आया।

दूर रास्ते पर एक आदमी सर पर पिसान रखे उसकी और जा रहा था। गुसांई ने उसकी सुविधा का ख्याल कर वहीं से आवाज दे दी, ''हैं हो! यहां लंबर देर में आएगा। दो दिन का पिसान अभी जमा है। ऊपर उमेदसिंह के घट में देख लो।''

उस व्यक्ति ने मुड़ने से पहले एक बार और प्रयत्न किया। खूब ऊंचे स्वर में पुकारकर वह बोला,''जरूरी है, जी! पहले हमारा लंबर नहीं लगा दोगे?''

गुसांई होंठों-ही-होठों में मुस्कराया, स्साला कैसे चीखता है, जैसे घट की आवाज इतनी हो कि मैं सुन न सकूं! कुछ कम ऊंची आवाज में उसने हाथ हिलाकर उत्तर दे दिया, ''यहां जरूरी का भी बाप रखा है, जी! तुम ऊपर चले जाओ!''

वह आदमी लौट गया।

मिहल की छांव में बैठकर गुसांई ने लकड़ी के जलते कुंदे को खोदकर चिलम सुलगाई और गुड़-गुड़ करता धुआं उडाता रहा

खस्सर-खस्सर चक्की का पाट चल रहा था।

किट-किट-किट-किट खप्पर से दाने गिराने वाली चिड़िया पाट पर टकरा रही थी।

छिच्छर-छिच्छर की आवाज के साथ मथानी पानी को काट रही थी। और कहीं कोई आवाज नहीं। कोसी के बहाव में भी कोई ध्वनि नहीं। रेती-पाथरों के बीच में टखने-टखने पत्थर भी अपना सर उठाए आकाश को निहार रहे थे। दोपहरी ढलने पर भी इतनी तेज धूप! कहीं चिरैया भी नहीं बोलती। किसी प्राणी का प्रिय-अप्रिय स्वर नहीं।

सूखी नदी के किनारे बैठा गुसांई सोचने लगा, क्यों उस व्यक्ति को लौटा दिया? लौट तो वह जाता ही, घट के अंदर टच्च पड़े पिसान के थैलों को देखकर। दो-चार क्षण की बातचीत का आसरा ही होता।

कभी-कभी गुसांई को यह अकेलापन काटने लगता है। सूखी नदी के किनारे का यह अकेलापन नहीं, जिंदगी-भर साथ देने के लिए जो अकेलापन उसके द्वार पर धरना देकर बैठ गया है, वही। जिसे अपना कह सके, ऐसे किसी प्राणी का स्वर उसके लिए नहीं। पालतू कुत्ते-बिल्ली का स्वर भी नहीं। क्या ठिकाना ऐसे मालिक का, जिसका घर-द्वार नहीं, बीबी-बच्चे नहीं, खाने-पीने का ठिकाना नहीं ..।

घुटनों तक उठी हुई पुरानी फौजी पैंट के मोड़ को गुसांई ने खोला। गूल में चलते हुए थोड़ा भाग भीग गया था। पर इस गर्मी में उसे भीगी पैंट की यह शीतलता अच्छी लगी। पैंट की सलवटों को ठीक करते-करते गुसांई ने हुक्के की नली से मुंह हटाया। उसके होठों में बांएं कोने पर हलकी-सी मुस्कान उभर आई। बीती बातों की याद गुसांई सोचने लगा, इसी पैंट की बदौलत यह अकेलापन उसे मिला है ..नहीं, याद करने को मन नहीं करता। पुरानी,बहुत पुरानी बातें वह भूल गया है, पर हवलदार साहब की पैंट की बात उसे नहीं भूलती।

ऐसी ही फौजी पैंट पहनकर हवलदार धरमसिंह आया था, लॉन्ड्री की धुली, नोकदार, क्रीजवाली पैंट! वैसी ही पैंट पहनने की महत्त्वाकांक्षा लेकर गुसांई फौज में गया था। पर फौज से लौटा, तो पैंट के साथ-साथ जिंदगी का अकेलापन भी उसके साथ आ गया।

पैंट के साथ और भी कितनी स्मृतियां संबद्ध हैं। उस बार की छुट्टियों की बात ..

कौन महीना? हां, बैसाख ही था। सर पर क्रास खुखरी के क्रेस्ट वाली, काली, किश्तीनुमा टोपी को तिरछा रखकर, फौजी वर्दी वह पहली बार एनुअल-लीव पर घर आया, तो चीड़ वन की आग की तरह खबर इधर-उधर फैल गई थी। बच्चे-बूढे, सभी उससे मिलने आए थे। चाचा का गोठ एकदम भर गया था, ठसाठस्स। बिस्तर की नई, एकदम साफ, जगमग, लाल-नीली धारियोंवाली दरी आंगन में बिछानी पडी थी लोगों को बिठाने के लिए। खूब याद है, आंगन का गोबर दरी में लग गया था। बच्चे-बूढे, सभी आए थे। सिर्फ चना-गुड या हल्द्वानी के तंबाकू का लोभ ही नहीं था, कल के शर्मीले गुसांई को इस नए रुप में देखने का कौतूहल भी था। पर गुसांई की आँखें उस भीड में जिसे खोज रही थीं, वह वहां नहीं थी।

नाला पार के अपने गांव से भैंस के कटरा को खोजने के बहाने दूसरे दिन लछमा आई थी। पर गुसांई उस दिन उससे मिल न सका। गांव के छोकरे ही

गुसांई की जान को बवाल हो गए थे। बुढ्ढे नरसिंह प्रधान उन दिनों ठीक ही कहते थे, आजकल गुसांई को देखकर सोबनियां का लडका भी अपनी फटी घेर की टोपी को तिरछी पहनने लग गया है। दिन-रात बिल्ली के बच्चों की तरह छोकरे उसके पीछे लगे रहते थे, सिगरेट-बीडी या गपशप के लोभ में।

एक दिन बडी मुश्किल से मौका मिला था उसे। लछमा को पात-पतेल के लिए जंगल जाते देखकर वह छोकरों से कांकड के शिकार का बहाना बनाकर अकेले जंगल को चल दिया था। गांव की सीमा से बहुत दूर, काफल के पेड के नीचे गुसांई के घुटने पर सर रखकर, लेटी-लेटी लछमा काफल खा रही थी। पके, गदराए, गहरे लाल-लाल काफल। खेल-खेल में काफलों की छीना-झपटी करते गुसांई ने लछमा की मुठ्ठी भींच दी थी। टप-टप काफलों का गाढा लाल रस उसकी पैंट पर गिर गया था। लछमा ने कहा था, ''इसे यहीं रख जाना, मेरी पूरी बांह की कुर्ती इसमें से निकल आएगी।''वह खिलखिलाकर अपनी बात पर स्वयं ही हंस दी थी।

पुरानी बात - क्या कहा था गुसांई ने, याद नहीं पडता ..तेरे लिए मखमल की कुर्ती ला दूंगा, मेरी सुवा! या कुछ ऐसा ही।

पर लछमा को मखमल की कुर्ती किसने पहनाई होगी - पहाड़ी पार के रमुवां ने, जो तुरी-निसाण लेकर उसे ब्याहने आया था?

''जिसके आगे-पीछे भाई-बहिन नहीं, माई-बाप नहीं, परदेश में बंदूक की नोक पर जान रखने वाले को छोकरी कैसे दे दें हम?'' लछमा के बाप ने कहा था।

उसका मन जानने के लिए गुसांई ने टेढे-तिरछे बात चलवाई थी।

उसी साल मंगसिर की एक ठंडी, उदास शाम को गुसांई की यूनिट के सिपाही किसनसिंह ने क्वार्टर-मास्टर स्टोर के सामने खड़े-खड़े उससे कहा था, ''हमारे गांव के रामसिंह ने जिद की, तभी छुट्टियां बढानी पड़ीं। घ्स साल उसकी शादी थी। खूब अच्छी औरत मिली है, यार! शक्ल-सूरत भी खूब है,एकदम पटाखा! बडी हंसमुख है। तुमने तो देखा ही होगा, तुम्हारे गांव के नजदीक की ही है। लछमा-लछमा कुछ ऐसा ही नाम है।''

गुसांई को याद नहीं पडता, कौन-सा बहाना बनाकर वह किसनसिंह के पास से चला आया था, रम-डे थे उस दिन। हमेशा आधा पैग लेने वाला गुसांई से उस दिन पेशी करवाई थी - मलेरिया प्रिकॉशन न करने के अपराध में। सोचते-सोचते गुसांई बुदबुदाया, ''स्साला एडजुटेन्ट!''

गुसांई सोचने लगा, उस साल छुट्टियों में घर से बिदा होने से एक दिन पहले वह मौका निकालकर लछमा से मिला था।

''गंगनाथज्यू की कसम, जैसा तुम कहोगे, मैं वैसा ही करूंगी!'' आँखों में आंसू भरकर लछमा ने कहा था।

वर्षों से वह सोचता आया है, कभी लछमा से भेंट होगी, तो वह अवश्य कहेगा कि वह गंगनाथ का जागर लगाकर प्रायश्चित जरूर कर ले। देवी-देवताओं की झूठी कसमें खाकर उन्हें नाराज करने से क्या लाभ? जिस पर भी गंगनाथ का कोप हुआ, वह कभी फल-फूल नहीं पाया। पर लछमा से कब भेंट होगी, यह वह नहीं जानता। लड़कपन से संगी-साथी नौकरी-चाकरी के लिए मैदानों में चले गए हैं। गांव की और जाने का उसका मन नहीं होता। लछमा के बारे में किसी से पूछना उसे अच्छा नहीं लगता।

जितने दिन नौकरी रही, वह पलटकर अपने गांव नहीं आया। एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन का वालंटियरी ट्रांसफर लेने वालों की लिस्ट में नायक गुसांईसिंह का नाम ऊपर आता रहा - लगातार पंद्रह साल तक।

पिछले बैसाख में ही वह गांव लौटा, पंद्रह साल बाद, रिजर्व में आने पर। काले बालों को लेकर गया था, खिचड़ी बाल लेकर लौटा। लछमा का हठ उसे अकेला बना गया।

आज इस अकेलेपन में कोई होता, जिसे गुसांई अपनी जिंदगी की किताब पढ़कर सुनाता! शब्द-शब्द, अक्षर-अक्षर कितना देखा, कितना सुना और कितना अनुभव किया है उसने ..।

पर नदी किनारे यह तपती रेत, पनचक्की की खटर-पटर और मिहल की छाया में ठंडी चिलम को निष्प्रयोजन गुड़गुड़ाता गुसांई। और चारों और अन्य कोई नहीं। एकदम निर्जन, निस्तब्ध, सुनसान।

एकाएक गुसांई का ध्यान टूटा।

सामने पहाड़ी के बीच की पगडंड़ी से सर पर बोझा लिए एक नारी आकृति उसी और चली आ रही थी। गुसांई ने सोचा वहीं से आवाज देकर उसे लौटा दे। कोसी ने चिकने, काई लगे पत्थरों पर कठिनाई से चलकर उसे वहां तक आकर केवल निराश लौट जाने को क्यों वह बाध्य करे। दूर से चिल्ला-चिल्लाकर पिसान स्वीकार करवाने की लोगों की आदत से वह तंग आ चुका था। इस कारण आवाज देने को उसका मन नहीं हुआ। वह आकृति अब तक पगडंडी छोडकर नदी के मार्ग में आ पहुँची थी।

चक्की की बदलती आवाज को पहचान कर गुसांई घट के अंदर चला गया। खप्पर का अनाज समाप्त हो चुका था। खप्पर में एक कम अन्न वाले थैले को उलटकर उसने अन्न का निकास रोकने के लिए काठ की चिड़ियों को उलटा कर दिया। किट-किट का स्वर बंद हो गया। वह जल्दी-जल्दी आटे को थैले में भरने लगा। घट के अंदर मथानी की छिच्छर-छिच्छर की आवाज भी अपेक्षाकृत कम सुनाई दे रही थी। केवल चक्की ऊपर वाले पाट की घिसटती हुई घरघराहट का हल्का-धीमा संगीत चल रहा था। तभी गुसांई ने सुना अपनी पीठ के पीछे, घट के द्वार पर, इस संगीत से भी मधुर एक नारी का कंठस्वर, ''कब बारी आएगी, जी? रात की रोटी के लिए भी घर में आटा नहीं है।''

सर पर पिसान रखे एक स्त्री उससे यह पूछ रही थी। गुसांई को उसका स्वर परिचित-सा लगा। चौंककर उसने पीछे मुड़कर देखा। कपड़े में पिसान ढीला बंधा होने के कारण बोझ का एक सिरा उसके मुख के आगे आ गया था। गुसांई उसे ठीक से नहीं देख पाया, लेकिन तब भी उसका मन जैसे आशंकित हो उठा। अपनी शंका का समाधान करने के लिए वह बाहर आने को मुड़ा, लेकिन तभी फिर अंदर जाकर पिसान के थैलों को इधर-उधर रखने लगा। काठ की चिड़ियां किट-किट बोल रही थीं और उसी गति के साथ गुसांई को अपने हृदय की धड़कन का आभास हो रहा था।

घट के छोटे कमरे में चारों और पिसे हुए अन्य का चूर्ण फैल रहा था, जो अब तक गुसांई के पूरे शरीर पर छा गया था। इस कृत्रिम सफेदी के कारण वह वृद्ध-सा दिखाई दे रहा था। स्त्री ने उसे नहीं पहचाना।

उसने दुबारा वे ही शब्द दुहराए। वह अब भी तेज धूप में बोझा सर पर रखे हुए गुसांई का उत्तर पाने को आतुर थी। शायद नकारात्मक उत्तर मिलने पर वह उलटे पांव लौटकर किसी अन्य चक्की का सहारा लेती।

दूसरी बार के प्रश्न को गुसांई न टाल पाया, उत्तर देना ही पड़ा, ''यहां पहले ही टीला लगा है, देर तो होगी ही।'' उसने दबे-दबे स्वर में कह दिया।

स्त्री ने किसी प्रकार की अनुनय-विनय नहीं की। शाम के आटे का प्रबंध करने के लिए वह दूसरी चक्की का सहारा लेने को लौट पड़ी।

गुसांई झुककर घट से बाहर निकला। मुडते समय स्त्री की एक झलक देखकर उसका संदेह विश्वास में बदल गया था। हताश-सा वह कुछ क्षणों तक उसे जाते हुए देखता रहा और फिर अपने हाथों तथा सिर पर गिरे हुए आटे को झाडकर एक-दो कदम आगे बढा। उसके अंदर की किसी अज्ञात शक्ति ने जैसे

उसे वापस जाती हुई उस स्त्री को बुलाने को बाध्य कर दिया। आवाज देकर उसे बुला लेने को उसने मुंह खोला, परंतु आवाज न दे सका। एक झिझक, एक असमर्थता थी, जो उसका मुंह बंद कर रही थी। वह स्त्री नदी तक पहुँच चुकी थी। गुसांई के अंतर में तीव्र उथल-पुथल मच गई। इस बार आवेग इतना तीव्र था कि वह स्वयं को नहीं रोक पाया, लडखड़ाती आवाज में उसने पुकारा, ''लछमा!''

घबराहट के कारण वह पूरे जोर से आवाज नहीं दे पाया था। स्त्री ने यह आवाज नहीं सुनी। इस बार गुसांई ने स्वस्थ होकर पुनः पुकारा, ''लछमा!''

लछमा ने पीछे मुड़कर देखा। मायके में उसे सभी इसी नाम से पुकारते थे, यह संबोधन उसके लिए स्वाभाविक था। परंतु उसे शंका शायद यह थी कि चक्कीवाला एक बार पिसान स्वीकार न करने पर भी दुबारा उसे बुला रहा है या उसे केवल भ्रम हुआ है। उसने वहीं से पूछा, ''मुझे पुकार रहे हैं, जी?

गुसांई ने संयत स्वर में कहा, ''हां, ले आ, हो जाएगा।''

लछमा क्षण-भर रूकी और फिर घट की और लौट आई।

अचानक साक्षात्कार होने का मौका न देने की इच्छा से गुसांई व्यस्तता का प्रदर्शन करता हुआ मिहल की छांह में चला गया।

लछमा पिसान का थैला घट के अंदर रख आई। बाहर निकलकर उसने आंचल के कोर से मुंह पोंछा। तेज धूप में चलने के कारण उसका मुंह लाल हो गया था। किसी पेड़ की छाया में विश्राम करने की इच्छा से उसने इधर-उधर देखा। मिहल के पेड़ की छाया में घट की और पीठ किए गुसांई बैठा हुआ था। निकट स्थान में दाड़िम के एक पेड की छांह को छोड़कर अन्य कोई बैठने लायक स्थान नहीं था। वह उसी और चलने लगी।

गुसांई की उदारता के कारण ऋणी-सी होकर ही जैसे उसने निकट आते-आते कहा, ''तुम्हारे बाल-बच्चे जीते रहें, घटवारजी! बड़ा उपकार का काम कर दिया तुमने! ऊपर के घट में भी जाने कितनी देर में लंबर मिलता।''

अजाज संतति के प्रति दिए गए आशीर्वचनों को गुसांई ने मन-ही-मन विनोद के रुप में ग्रहण किया। इस कारण उसकी मानसिक उथल-पुथल कुछ कम हो गई। लछमा उसकी और देखें, इससे पूर्व ही उसने कहा, ''जीते रहे तेरे बाल-बच्चे लछमा! मायके कब आई?''

गुसांई ने अंतर में घुमड़ती आंधी को रोककर यह प्रश्न इतने संयत स्वर में किया, जैसे वह भी अन्य दस आदमियों की तरह लछमा के लिए एक साधारण व्यक्ति हो।

दाडिम की छाया में पात-पतेल झाडकर बैठते लछमा ने शंकित दृष्टि से गुसांई की और देखा। कोसी की सूखी धार अचानक जल-प्लावित होकर बहने लगती, तो भी लछमा को इतना आश्चर्य न होता, जितना अपने स्थान से केवल चार कदम की दूरी पर गुसांई को इस रुप में देखने पर हुआ। विस्मय से आँखें फाडकर वह उसे देखे जा रही थी, जैसे अब भी उसे विश्वास न हो रहा हो कि जो व्यक्ति उसके सम्मुख बैठा है, वह उसका पूर्व-परिचित गुसांई ही है।

''तुम?'' जाने लछमा क्या कहना चाहती थी, शेष शब्द उसके कंठ में ही रह गए।

''हां, पिछले साल पल्टन से लौट आया था, वक्त काटने के लिए यह घट लगवा लिया।'' गुसांई ने ही पूछा, ''बाल-बच्चे ठीक हैं?''

आँखें जमीन पर टिकाए, गरदन हिलाकर संकेत से ही उसने बच्चों की कुशलता की सूचना दे दी। जमीन पर गिरे एक दाड़िम के फूल को हाथों में लेकर लछमा उसकी पंखुड़ियों को एक-एक कर निरुद्देश्य तोडने लगी और गुसांई पतली सींक लेकर आग को कुरेदता रहा।

बातों का क्रम बनाए रखने के लिए गुसांई ने पूछा, ''तू अभी और कितने दिन मायके ठहरने वाली है?''

अब लछमा के लिए अपने को रोकना असंभव हो गया। टप-टप-टप, वह सर नीचा किए आंसूं गिराने लगी। सिसकियों के साथ-साथ उसके उठते-गिरते कंधों को गुसांई देखता रहा। उसे यह नहीं सूझ रहा था कि वह किन शब्दों में अपनी सहानुभूति प्रकट करे।

इतनी देर बाद सहसा गुसांई का ध्यान लछमा के शरीर की और गया। उसके गले में चरेऊ (सुहाग-चिह्न) नहीं था। हतप्रभ-सा गुसांई उसे देखता रहा। अपनी व्यावहारिक अज्ञानता पर उसे बेहद झुंझलाहट हो रही थी।

आज अचानक लछमा से भेंट हो जाने पर वह उन सब बातों को भूल गया, जिन्हें वह कहना चाहता था। इन क्षणों में वह केवल-मात्र श्रोता बनकर रह जाना चाहता था। गुसांई की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि पाकर लछमा आंसूं पोंछती हुई अपना दुखड़ा रोने लगी, ''जिसका भगवान नहीं होता, उसका कोई नहीं होता। जेठ-जेठानी से किसी तरह पिंड छुडाकर यहां माँ की बीमारी में आई थी, वह भी मुझे छोड़कर चली गई। एक अभागा मुझे रोने को रह गया है, उसी के लिए जीना पड़ रहा है। नहीं तो पेट पर पत्थर बांधकर कहीं डूब मरती, जंजाल कटता।''

''यहां काका-काकी के साथ रह रही हो?'' गुसांई ने पूछा।

''मुश्किल पडने पर कोई किसी का नहीं होता, जी! बाबा की जायदाद पर उनकी आँखें लगी हैं, सोचते हैं, कहीं मैं हक न जमा लूं। मैंने साफ-साफ कह दिया, मुझे किसी का कुछ लेना-देना नहीं। जंगलात का लीसा ढो-ढोकर अपनी गुजर कर लूंगी, किसी की आँख का कांटा बनकर नहीं रहूंगी।''

गुसांई ने किसी प्रकार की मौखिक संवेदना नहीं प्रकट की। केवल सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से उसे देखता-भर रहा। दाड़िम के वृक्ष से पीठ टिकाकर लछमा घुटने मोड़कर बैठी थी। गुसांई सोचने लगा, पंद्रह-सोलह साल किसी की जिंदगी में अंतर लाने के लिए कम नहीं होते, समय का यह अंतराल लछमा के चेहरे पर भी एक छाप छोड़ गया था, पर उसे लगा, उस छाप के नीचे वह आज भी पंद्रह वर्ष पहले की लछमा को देख रहा है।

''कितनी तेज धूप है, इस साल!'' लछमा का स्वर उसके कानों में पड़ा। प्रसंग बदलने के लिए ही जैसे लछमा ने यह बात जान-बूझकर कही हो।

और अचानक उसका ध्यान उस और चला गया, जहां लछमा बैठी थी। दाड़िम की फैली-फैली अधढंकीं डालों से छनकर धूप उसके शरीर पर पड़ रही थी। सूरज की एक पतली किरन न जाने कब से लछमा के माथे पर गिरी हुई एक लट को सुनहरी रंगीनी में डूबा रही थी। गुसांई एकटक उसे देखता रहा।

''दोपहर तो बीत चुकी होगी,'' लछमा ने प्रश्न किया तो गुसांई का ध्यान टूटा, ''हां, अब तो दो बजने वाले होंगे,'' उसने कहा, ''उधर धूप लग रही हो तो इधर आ जा छांव में।'' कहता हुआ गुसांई एक जम्हाई लेकर अपने स्थान से उठ गया।

''नहीं, यहीं ठीक है,'' कहकर लछमा ने गुसांई की और देखा, लेकिन वह अपनी बात कहने के साथ ही दूसरी और देखने लगा था।

घट में कुछ देर पहले डाला हुआ पिसान समाप्ति पर था। नंबर पर रखे हुए पिसान की जगह उसने जाकर जल्दी-जल्दी लछमा का अनाज खप्पर में खाली कर दिया।

धीरे-धीरे चलकर गुसांई गुल के किनारे तक गया। अपनी अंजुली से भर-भरकर उसने पानी पिया और फिर पास ही एक बंजर घट के अंदर जाकर पीतल और अलमुनियम के कुछ बर्तन लेकर आग के निकट लौट आया।

आस-पास पड़ी हुई सूखी लकडियों को बटोरकर उसने आग सुलगाई और एक कालिख पुती बटलोई में पानी रखकर जाते-जाते लछमा की और मुंह कर

कह गया, ''चाय का टैम भी हो रहा है। पानी उबल जाय, तो पत्ती डाल देना, पुडिया में पड़ी है।''

लछमा ने उत्तर नहीं दिया। वह उसे नदी की और जाने वाली पगडंडी पर जाता हुआ देखती रही।

सड़क किनारे की दुकान से दूध लेकर लौटते-लौटते गुसांई को काफी समय लग गया था। वापस आने पर उसने देखा, एक छः-सात वर्ष का बच्चा लछमा की देह से सटकर बैठा हुआ है।

बच्चे का परिचय देने की इच्छा से जैसे लछमा ने कहा, ''इस छोकरे को घडी-भर के लिए भी चैन नहीं मिलता। जाने कैसे पूछता-खोजता मेरी जान खाने को यहां भी पहुँच गया है।''

गुसांई ने लक्ष्य किया कि बच्चा बार-बार उसकी दृष्टि बचाकर माँ से किसी चीज के लिए जिद कर रहा है। एक बार झुंझलाकर लछमा ने उसे झिड़क दिया, ''चुप रह! अभी लौटकर घर जाएंगे, इतनी-सी देर में क्यों मरा जा रहा है?''

चाय के पानी में दूध डालकर गुसांई फिर उसी बंजर घट में गया। एक थाली में आटा लेकर वह गूल के किनारे बैठा-बैठा उसे गूंथने लगा। मिहल के पेड की और आते समय उसने साथ में दो-एक बर्तन और ले लिए।

लछमा ने बटलोई में दूध-चीनी डालकर चाय तैयार कर दी थी। एक गिलास, एक एनेमल का मग और एक अलमुनियम के मैसटिन में गुसांई ने चाय डाल कर आपस में बांट ली और पत्थरों से बने बेढंगे चूल्हे के पास बैठकर रोटियां बनाने का उपक्रम करने लगा।

हाथ का चाय का गिलास जमीन पर टिकाकर लछमा उठी। आटे की थाली अपनी और खिसकाकर उसने स्वयं रोटी पका देने की इच्छा ऐसे स्वर में प्रकट की कि गुसांई न, न कह सका। वह खड़ा-खड़ा उसे रोटी पकाते हुए देखता रहा। गोल-गोल डिबिया-सरीखी रोटियां चूल्हे में खिलने लगीं। वर्षों बाद गुसांई ने ऐसी रोटियां देखी थीं, जो अनिश्चित आकार की फौजी लंगर की चपातियों या स्वयं उसके हाथ से बनी बेडौल रोटियों से एकदम भिन्न थीं। आटे की लोई बनाते समय लछमा के छोटे-छोटे हाथ बड़ी तेजी से घूम रहे थे। कलाई में पहने हुए चांदी के कड़े जब कभी आपस में टकरा जाते,तो खन्-खन् का एक अत्यंत मधुर स्वर निकलता। चक्की के पाट पर टकराने वाली काठ की चिडियों का स्वर कितना नीरस हो सकता है, यह गुसांई ने आज पहली बार अनुभव किया।

किसी काम से वह बंजर घट की और गया और बडी देर तक खाली बर्तन-डिब्बों को उठाता-रखता रहा।

वह लौटकर आया, तो लछमा रोटी बनाकर बर्तनों को समेट चुकी थी और अब आटे में सने हाथों को धो रही थी।

गुसांई ने बच्चे की और देखा। वह दोनों हाथों में चाय का मग थामे टकटकी लगाकर गुसांई को देखे जा रहा था। लछमा ने आग्रह के स्वर में कहा, ''चाय के साथ खानी हों, तो खा लो। फिर ठंडी हो जाएंगी।''

''मैं तो अपने टैम से ही खाऊंगा। यह तो बच्चे के लिए ..'' स्पष्ट कहने में उसे झिझक महसूस हो रही थी, जैसे बच्चे के संबंध में चिंतित होने की उसकी चेष्टा अनधिकार हो।

''न-न, जी! वह तो अभी घर से खाकर ही आ रहा है। मैं रोटियां बनाकर रख आई थी,'' अत्यंत संकोच के साथ लछमा ने आपत्ति प्रकट कर दी।

''अैं'', यों ही कहती है। कहां रखी थीं रोटियां घर में?'' बच्चे ने रूआंसी आवाज में वास्तविक व्यक्ति की बातें सुन रहा था और रोटियों को देखकर उसका संयम ढीला पड गया था।

''चुप!'' आँखें तरेरकर लछमा ने उसे डांट दिया। बच्चे के इस कथन से उसकी स्थिति हास्यास्पद हो गई थी, इस कारण लज्जा से उसका मुंह आरक्त हो उठा।

''बच्चा है, भूख लग आई होगी, डांटने से क्या फायदा?'' गुसांई ने बच्चे का पक्ष लेकर दो रोटियां उसकी और बढा दीं। परंतु माँ की अनुमति के बिना उन्हें स्वीकारने का साहस बच्चे को नहीं हो रहा था। वह ललचाई दृष्टि से कभी रोटियों की और, कभी माँ की और देख लेता था।

गुसांई के बार-बार आग्रह करने पर भी बच्चा रोटियां लेने में संकोच करता रहा, तो लछमा ने उसे झिडक दिया, ''मर! अब ले क्यों नहीं लेता? जहां जाएगा, वहीं अपने लच्छन दिखाएगा!''

इससे पहले कि बच्चा रोना शुरू कर दें, गुसांई ने रोटियों के ऊपर एक टुकड़ा गुड़ का रखकर बच्चे के हाथों में दिया। भरी-भरी आँखों से इस अनोखे मित्र को देखकर बच्चा चुपचाप रोटी खाने लगा, और गुसांई कौतुकपूर्ण दृष्टि से उसके हिलते हुए होठों को देखता रहा।

इस छोटे-से प्रसंग के कारण वातावरण में एक तनाव-सा आ गया था, जिसे गुसांई और लछमा दोनों ही अनुभव कर रहे थे।

स्वयं भी एक रोटी को चाय में डुबाकर खाते-खाते गुसांई ने जैसे इस तनाव को कम करने की कोशिश में ही मुस्कराकर कहा, ''लोग ठीक ही कहते हैं, औरत के हाथ की बनी रोटियों में स्वाद ही दूसरा होता है।''

लछमा ने करूण दृष्टि से उसकी और देखा। गुसांई हो-होकर खोखली हंसी हंस रहा था।

''कुछ साग-सब्जी होती, तो बेचारा एक-आधी रोटी और खा लेता।'' गुसांई ने बच्चे की और देखकर अपनी विवशता प्रकट की।

''ऐसी ही खाने-पीने वाले की तकदीर लेकर पैदा हुआ होता तो मेरे भाग क्यों पडता? दो दिन से घर में तेल-नमक नहीं है। आज थोड़े पैसे मिले हैं,आज ले जाऊंगी कुछ सौदा।''

हाथ से अपनी जेब टटोलते हुए गुसांई ने संकोचपूर्ण स्वर में कहा, ''लछमा!''

लछमा ने जिज्ञासा से उसकी और देखा। गुसांई ने जेब से एक नोट निकालकर उसकी और बढाते हुए कहा, ''ले, काम चलाने के लिए यह रख ले,मेरे पास अभी और है। परसों दफ्तर से मनीआर्डर आया था।''

''नहीं-नहीं, जी! काम तो चल ही रहा है। मैं इस मतलब से थोड़े कह रही थी। यह तो बात चली थी, तो मैंने कहा,'' कहकर लछमा ने सहायता लेने से इन्कार कर दिया

गुसांई को लछमा का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। रूखी आवाज में वह बोला, ''दु:ख-तकलीफ के वक्त ही आदमी आदमी के काम नहीं आया, तो बेकार है! स्साला! कितना कमाया, कितना फूंका हमने इस जिंदगी में। है कोई हिसाब! पर क्या फायदा! किसी के काम नहीं आया। इसमें अहसान की क्या बात है? पैसा तो मिट्टी है स्साला! किसी के काम नहीं आया तो मिट्टी, एकदम मिट्टी!''

परन्तु गुसांई के इस तर्क के बावजूद भी लछमा अडी रही, बच्चे के सर पर हाथ फेरते हुए उसने दार्शनिक गंभीरता से कहा, ''गंगनाथ दाहिने रहें, तो भले-बुरे दिन निभ ही जाते हैं, जी! पेट का क्या है, घट के खप्पर की तरह जितना डालो, कम हो जाय। अपने-पराये प्रेम से हंस-बोल दें, तो वह बहुत है दिन काटने के लिए।''

गुसांई ने गौर से लछमा के मुख की और देखा। वर्षों पहले उठे हुए ज्वार और तूफान का वहां कोई चिह्न शेष नहीं था। अब वह सागर जैसे सीमाओं में बंधकर शांत हो चुका था।

रुपया लेने के लिए लछमा से अधिक आग्रह करने का उसका साहस नहीं हुआ। पर गहरे असंतोष के कारण बुझा-बुझा-सा वह धीमी चाल से चलकर वहां से हट गया। सहसा उसकी चाल तेज हो गई और घट के अंदर जाकर उसने एक बार शंकित दृष्टि से बाहर की और देखा। लछमा उस और पीठ किए बैठी थी। उसने जल्दी-जल्दी अपने नीजी आटे के टीन से दो-ढाई सेर के करीब आटा निकालकर लछमा के आटे में मिला दिया और संतोष की एक सांस लेकर वह हाथ झाड़ता हुआ बाहर आकर बांध की और देखने लगा। ऊपर बांध पर किसी को घूमते हुए देखकर उसने हांक दी। शायद खेत की सिंचाई के लिए कोई पानी तोड़ना चाहता था।

बांध की और जाने से पहले वह एक बार लछमा के निकट गया। पिसान पिस जाने की सूचना उसे देकर वापस लौटते हुए फिर ठिठककर खडा हो गया, मन की बात कहने में जैसे उसे झिझक हो रही हो। अटक-अटककर वह बोला, ''लछमा ..।''

लछमा ने सिर उठाकर उसकी और देखा। गुसांई को चुपचाप अपनी और देखते हुए पाकर उसे संकोच होने लगा। वह न जाने क्या कहना चाहता है,इस बात की आशंका से उसके मुंह का रंग अचानक फीका होने लगा। पर गुसांई ने झिझकते हुए केवल इतना ही कहा, ''कभी चार पैसे जुड़ जाएं, तो गंगनाथ का जागर लगाकर भूल-चूक की माफी मांग लेना। पूत-परिवार वालों को देवी-देवता के कोप से बचा रहना चाहिए।'' लछमा की बात सुनने के लिए वह नहीं रुका।

पानी तोड़ने वाले खेतिहार से झगड़ा निपटाकर कुछ देर बाद लौटते हुए उसने देखा, सामने वाले पहाड़ की पगडंडी पर सर पर आटा लिए लछमा अपने बच्चे के साथ धीरे-धीरे चली जा रही थी। वह उन्हें पहाड़ी के मोड तक पहुँचने तक टकटकी बांधे देखता रहा।

घट के अंदर काठ की चिड़ियां अब भी किट-किट आवाज कर रही थीं, चक्की का पाट खिस्सर-खिस्सर चल रहा था और मथानी की पानी काटने की आवाज आ रही थी, और कहीं कोई स्वर नहीं, सब सुनसान, निस्तब्ध।

❐❐❐